UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186540

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—707—25-1-81—10,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H170·4 S25J Accession No. OG·H6379

Author (स्वामी), सत्येंद्र

Title ज्ञान के सोपान

This book should be returned on or before the date last marked below

ज्ञान के उद्यान में

[IN THE GARDEN OF KNOWLEDGE]

लेखक

श्री स्वामी सत्यदेव परिव्राजक

रचयिता

'स्वतन्त्रता की खोज में', 'विचार-स्वातंत्र्य के प्रांगण में',
'अनन्त की ओर', 'संजीवनी बूटी', 'पाकिस्तान—
एक मृगतृष्णा', 'लहमुन बादशाह', इत्यादि।

"Like a taper, one should melt in pursuit of knowledge. This is thy duty, even if thou has to travel over the whole earth."

—*Sheikh Saadi*

पुस्तक मिलने का पता

स्वामी सत्यदेव परिव्राजक

सत्य ज्ञान प्रकाशन

ज्वालापुर (उत्तर प्रदेश)

नवीन संस्करण

मूल्य ३)

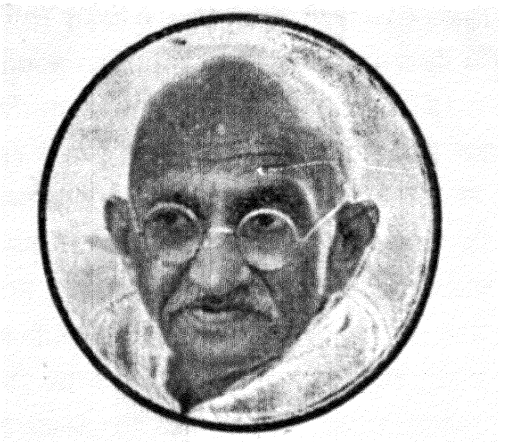
प्रकाशक
स्वामी सत्यदेव परिव्राजक
सत्यज्ञान प्रकाशन
ज्वालापुर (उत्तर प्रदेश)

सर्वाधिकार सुरक्षित

अप्रैल, १९५४

मुद्रक
न्यू इण्डिया प्रेस
कनाट सर्कस
नई दिल्ली

पुराय-स्मृति



परम श्रद्धेय तात !

आप तो चले गए, परन्तु आपकी अमर यश-सुरभि दिग्दिगन्तरों में फैल रही है । निःसन्देह आप युग-प्रवर्तक थे, और आपने सभ्य संसार के लोगों को नवीन विचारधारा की ओर मोड़ दिया। यह आपका 'गांधी-युग' भगवान् बुद्ध के बाद विश्व में शान्ति लाने के लिए महान् प्रकाश-स्तम्भ का काम करेगा । मैं बड़ी श्रद्धा और स्नेह से आपके पवित्र चरणों में अपनी यह कलाकृति पहले की तरह (सन् १९३६ में) सादर समर्पित करता हूँ ।

पुस्तक-परिचय

यह पुस्तक पहली बार सितम्बर सन १९३५ में छपी थी। इसे मेरे प्रेमी पाठकों ने बहुत पसन्द किया था। इसकी १००० प्रतियां जब निकल गईं तो मुझे दूसरा संस्करण निकालने में कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इच्छा रहते हुए भी दूसरा संस्करण जल्दी न निकल सका। दृष्टिहीनता की वजह से मेरा उत्साह ज़रा मन्द सा होगया, क्योंकि प्रूफ देखने का काम मैं नहीं कर सकता था।

सन् १९४७ के अगस्त मास में जब ईश्वर की कृपा से देश स्वाधीन हुआ और हम लोग अपने घर के मालिक बन गये तो बालक-बालिकाओं के हाथों में चरित्र-संगठन करने वाली पुस्तकें देने की आवश्यकता हुई। तब मेरी इस "ज्ञान के उद्यान में" नामक प्रसिद्ध पुस्तक का प्रकाशित कराना अत्यन्त आवश्यक हो गया। यह युग राष्ट्र-निर्माण का है। इस ग्रन्थ में कर्तव्य-परायण नागरिक बनाने के लिए बड़े सुन्दर ४० निबन्ध दिये गये हैं, जिन्हें पढ़कर विद्यार्थियों को राष्ट्र-धर्म की शिक्षा मिलती है। "शिक्षा का आदर्श" नाम की एक छोटी-सी पुस्तक बहुत वर्ष हुए मैंने लिखी थी। उसे भी इसमें सम्मिलित कर दिया गया है, जिससे शिक्षाप्रेमी अध्यापक-अध्यापिकाएँ मेरे विचारों से पूरा लाभ उठा सकें। चरित्र का व्यापक स्वरूप समझाने की पूर्ण चेष्टा की गई है और कौमें कैसे उठा करती हैं, इस महत्वपूर्ण प्रश्न की मीमांसा भी की गई है। यदि किसी प्रकार यह मेरी पुस्तक स्कूलों और पाठशालाओं में पाठ्य पुस्तक बन जाये तो अवश्य ही इसके द्वारा राष्ट्र की महती सेवा हो सकेगी।

मुझे आशा है कि यह मेरा ग्रन्थ हिन्दी-साहित्य की उपयोगी सेवा करेगा और इसके द्वारा देशवासी राष्ट्र को शक्तिशाली बनाने की सामग्री पा सकेंगे।

नई देहली
अप्रैल, १९५४

निवेदक
सत्यदेव परिव्राजक

विषय-सूची

चरित्र-संगठन-कुञ्ज

१.	पहला पुष्प	: उद्यान का सौन्दर्य	३
२.	दूसरा पुष्प	: चरित्र-संगठन-स्रोत	६
३.	तीसरा पुष्प	: वर्तमान अशान्ति का मुख्य कारण	१०
४.	चौथा पुष्प	: आत्मा की आन्तरिक उत्कण्ठा	१६
५.	पाँचवाँ पुष्प	. जीवन का स्वरूप	२०
६.	छठा पुष्प	: जीवन-स्फूर्ति	२३
७.	सातवाँ पुष्प	. जीने का मोह	२६
८.	आठवाँ पुष्प	जीने का अधिकार किसको ?	३४
९.	नवाँ पुष्प	उत्थान-पथ पर (१)	४०
१०.	दसवाँ पुष्प	. उत्थान-पथ पर (२)	४७
११.	ग्यारहवाँ पुष्प	शक्तियों की जागृति	५७
१२.	बारहवाँ पुष्प	: आत्म-विश्वास	६०
१३.	तेरहवाँ पुष्प	: प्रेम-सन्देश	६४
१४.	चौदहवाँ पुष्प	: हिम्मत करो	६६
१५.	पन्द्रहवाँ पुष्प	: कर्तव्य-पालन	७०
१६	सोलहवाँ पुष्प	: व्यभिचारी कौन है ?	७३
१७.	सत्रहवाँ पुष्प	: पाप की चरम सीमा	७८
१८.	अट्ठारहवाँ पुष्प	: धर्म का यथार्थ स्वरूप	८१
१९.	उन्नीसवाँ पुष्प	: शुद्ध विचार के तीन शत्रु	९०
२०.	बीसवाँ पुष्प	: राष्ट्र-शक्ति-स्रोत	९४
२१.	इक्कीसवाँ पुष्प	: राष्ट्र-धर्म	९९

२२. बाईसवाँ पुष्प : राष्ट्रशक्ति का जीवन-रस १०७
२३. तेईसवाँ पुष्प : राष्ट्रों का उत्थान ११४
२४. चौबीसवाँ पुष्प : शिक्षा का आदर्श १२८
२५. पच्चीसवाँ पुष्प : जीवित जाति के चिन्ह १९५
२६. छब्बीसवाँ पुष्प : कौमे कैसे उठा करती है २००
२७. सत्ताईसवाँ पुष्प : यात्रा-स्फूर्ति २१२

बाग़ की बहार

२८. अट्ठाईसवाँ पुष्प : लुनेता मे हवाखोरी २१७
२९. उन्तीसवाँ पुष्प : नई दुनिया से पुरानी दुनिया मे २२२
३०. तीसवाँ पुष्प : योरुप मे मेरा प्रथम पर्यटन २३२
३१. इकतीसवाँ पुष्प : अल्मोड़ा के शिखर पर २४४
३२. बत्तीसवाँ पुष्प : पार्टी-पालिटिक्स के पाप २४९
३३. तेतीसवाँ पुष्प : गढ़वाल के गिरिशृङ्गो पर २५५
३४. चौतीसवाँ पुष्प : अपनी डायरी मे से कुछ २८४
३५. पैंतीसवाँ पुष्प : महापुरुष के दर्शन २८९
३६. छत्तीसवाँ पुष्प : परिव्राजक के अनुभव ३००
३७. सैंतीसवाँ पुष्प : कला सम्बन्धी कुछ स्वतन्त्र विचार ३०८
३८. अठतीसवाँ पुष्प : प्राणिमात्र से मनुष्य की सगोत्रता ३२१
३९. उन्तालीसवाँ पुष्प : सत्यज्ञान-विवेचना ३३२
४०. चालीसवाँ पुष्प : आम्र वृक्ष के नीचे ३३७

ज्ञान के उद्यान में

चरित्र-संगठन-कुञ्ज

The aim of knowledge is Truth,
And Truth is a need of the soul.

—*Lessing*

He who would make a real progress in knowledge must dedicate his age as well as his youth—the latter growth as well as the first fruits—at the altar of Truth.

—*Bishop Berkeley*

ज्ञान के उद्यान में

पहला पुष्प

उद्यान का सौन्दर्य

ससार एक उद्यान है। प्रभु ने इसमे भिन्न-भिन्न प्रकार के सुन्दर पदार्थ उत्पन्न किये है। जिस ओर दृष्टि दौडाइये, प्राकृतिक विभिन्नता हमे विस्मित करती है। प्रातःकाल जिस समय भगवान् भास्कर अपनी सुनहरी रश्मियो को वन-उपवनो में फैलाते है तो कैसे रंग-बिरंगे फूल जंगल की शोभा को बढाते है ! वृक्षों के पत्ते और गाने वाले पक्षियो का कलरव कैसा प्यारा मालूम होता है ! किसी भी ज्ञान के प्यासे को वहाँ काफ़ी सामग्री अध्ययन करने के लिए मिल जाती है। वनस्पति-शास्त्र के मर्मज्ञ वर्षों अपनी जीवनियाँ जंगलो में बिता देते है, परन्तु तिस पर भी वे नही अघाते। उनके अन्वेषणों से भरे हुए ग्रन्थ पुस्तकालयों में विद्यार्थियो के हृदयों को पुलकित करते है और जिज्ञासु उनका आनन्द लेता हुआ सृष्टिकर्त्ता को लाख बार धन्यवाद देता है कि जिसने इस उद्यान को ऐसा खूबसूरत बनाया है।

श्री गोस्वामी तुलसीदास जी ने बिल्कुल सत्य कहा है—

सकल पदारथ हैं जग माहीं।
कर्महीन नर पावत नाहीं॥

प्रभु ने तो संसार को स्वर्ग-रूप में बनाया है, जिसमें किसी भी चीज की कमी नहीं। स्वर्ग सातवें आसमान पर नही है, वह मरने के बाद नहीं

मिलता, उसे ढूँढने के लिए किसी दूसरे लोक में जाने की आवश्यकता नही, और न वह किसी पीर-पैगम्बर की सिफारिश से ही प्राप्त होता है; वह तो है हमारे अपने उद्योग का फल—जिसे हम इसी संसार में अपने पुरुषार्थ से पा सकते है।

सचमुच प्रभु का यह उद्यान सौन्दर्य से परिपूर्ण है। मानव-समाज भी इसका पूरा आनन्द उठा सकता है, यदि वह अपने नागरिकों को चरित्रवान् बना दे। जैसे बाग मे पुष्प अपनी शोभा बढातें है, जैसे फलदार वृक्ष अपने मधुर फलो से ससार की तृप्ति करते है, इसी प्रकार समाज के चरित्रवान् नर-नारी अपने चारो ओर अमृत की वर्षा करते है। गुलाब का फूल अपनी मीठी महक के द्वारा सब को बुलाता है, रजनीगन्धा अपनी सुखद सुरभि से सबको आकर्षित करती है, इसी प्रकार चरित्रवान् मनुष्य अपने सद्गुणों से अपने यश को फैलाता है। बर्फ से ढकी हुई हिमालय की चोटियाँ अत्यन्त दूर होने पर भी बहुत नज़दीक मालूम होती है। इसी प्रकार सच्चरित्र नागरिक समाज में बर्फानी चोटियों की तरह दूर से चमकते हुए ऐसे प्रतीत होते है मानो वे हमारे अत्यन्त निकट है। उनके सम्पर्क में आने वाले सभी लोग उन्हें अपने अत्यन्त नज़दीक बोध करते हैं।

मानव-समाज में सच्चरित्र नर-नारियाँ निस्सन्देह सुख का आगार है। उन्ही के कारण समाज में शान्ति फैलती है और प्रत्येक सदस्य अपने अधिकार को प्राप्त करता है। स्वाभाविक विकास होने के लिए सच्चरित्रता एक अमोघ साधन है। जिन जातियों ने अपने नागरिको के चरित्र-बल को बढ़ाने का प्रयत्न निरन्तर जारी रक्खा, वे विश्व में अमर कीर्त्ति पा गईं। सन्त सुकरात के कारण यूनान का यश भुवन में विख्यात होगया। चरित्रवान् जार्ज वाशिंगटन सयुक्त राज्य अमरीका के बच्चो के लिए प्रकाश-स्तम्भ बन गया और उसकी जीवन-स्फूर्ति से प्रत्येक जाति के नवयुवक शिक्षा ग्रहण करते है। इसी प्रकार हमारे देश के लोकनायक बाल गंगाधर तिलक के बलिदान की गाथा भारतवर्ष के बच्चो को

उत्थान-पथ दिखलाती है और वर्तमान युग के महापुरुष महात्मा गान्धीजी का चरित्र-बल सारे संसार को ज्ञान-पथ की ओर ले जाता है।

ओहो ! चरित्र में कितनी महान् शक्ति है ! जातियाँ तोपों और बन्दूकों से बलशाली नही होती, बडी-बड़ी फौजें उन्हें प्रभावशाली नहीं बनातीं, और नाही साइन्स के आविष्कार उनकी कीर्त्ति को फैलाते है ! जो जाति चरित्रवान् नर-नारी उत्पन्न करती है, जिसमें धीमान्, दृढव्रती, सत्यवक्ता और न्यायशील सदस्य उत्पन्न होते है, वही जाति—वही राष्ट्र—उन्नत मुख किये साभिमान अपनी सस्कृति का प्रसार करती है। इसलिए वे मनुष्य धन्य है जो अपनी सारी शक्ति, अपना मस्तिष्क और अपना सर्वस्व होमकर समाज के बच्चो को जीवन-पथ दिखलाते है, उनमें सच्चरित्रता भरते है, उन्हे नीरोग विचार देते है और जनता की भाषा में ऐसे ग्रन्थ लिखते है जो अन्धकार का नाश कर ज्ञान का प्रकाश करते है। ऐसी ही जाति का जीवन सार्थक है, क्योकि उसी के पास सबसे बड़ी सम्पत्ति है।

अच्छा, उस सच्चरित्रता का स्वरूप क्या है ? वह कौन-सा ऐसा स्रोत है जिसका निर्मल जल पान कर हम चरित्रवान् हो सकते है ? सच्चरित्रता के उस सुन्दर स्वरूप, उसके सुखद स्रोत के विषय में हम अगले पुष्प में बतलायेंगे। संसार के इस लावण्यमय उद्यान को हम कैसे सुरम्य बना सकते है, यही एक महान् प्रश्न है। हमने अपने ही पापो से इसे नरकमय बनाया हुआ है, अपने ही स्वार्थ से इसे दुर्गन्ध-युक्त कर दिया है। वह कौन सा स्रोत है जिसके विमल जल को लेकर हम अपना परित्राण कर सकते है और इसी पृथ्वी पर ईश्वरीय राज्य ला सकते है ? सच्चरित्रता के इस अत्यन्त उपयोगी विषय पर अब हम प्रकाश डालते है।

> God Almighty first planted a garden. And, indeed, it is the purest of human pleasures.
>
> —*Francis Bacon*

दूसरा पुष्प

चरित्र-संगठन-स्रोत

चरित्र की उस महान् शक्ति का स्रोत कौन-सा है ? जार्ज वाशिंगटन, अब्राहम लिंकन, जॉन स्टुअर्ट मिल, नैपोलियन बोनापार्ट, प्रिन्स बिस्मार्क, जोज़फ मेज़िनी, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि महापुरुषों ने सच्चरित्रता के उस ब्रह्मास्त्र की प्राप्ति कहां से की थी ? ये प्रश्न हैं जिन पर विचार करना परमावश्यक है । प्राचीनकाल के आर्यों ने सच्चरित्रता का स्रोत माता को बतलाया है और गृहस्थाश्रम को सात्विक गुणों का आगार कहकर उसकी बडी प्रशंसा की है । वे मानते थे कि जिस राष्ट्र ने अपने गृहस्थाश्रम का जितना अधिक सुधार किया है, उसी पैमाने में वहां के नर-नारी सद्गुणो से विभूषित हो जाते हैं । इसीलिए महर्षि मनु ने यहां तक कह डाला कि जहां नारियों की पूजा होती है वहीं देवता निवास करते है । विदेशी लेखकों ने उसी को Home Power अर्थात् गृह-शक्ति कहकर उसकी प्रतिष्ठा की है । आज भारतवर्ष की अवनति का मुख्य कारण यही है कि यहां गृह-शक्ति की महत्ता को अनुभव नही किया गया । हमारी जनता विवाह-सम्बन्ध के आदर्श को समझती नहीं और उस सम्बन्ध से जो फूल खिलते है उनका मूल्य नही जानती । प्रकृति ने जो हमारे अन्दर काम-वासना उत्पन्न की है उसकी तृप्ति तथा घर में हमारी सेवा करने वाली एक दासी, यही भावना हम लोगो के मन में स्त्री के प्रति बसी रहती है । यह सत्य है कि हमारे समाज में कुछ सुसंस्कृत घर अपवाद स्वरूप भी है, लेकिन वे बहुत थोडे । इसी-लिए हम पिछले एक हजार वर्षों से अपनी सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओ को हल नही कर सके, क्योंकि हमने गृहस्थाश्रम के सर्वोत्कृष्ट

प्रभाव को कभी भी हृदयङ्गम नहीं किया। हमने इस बात को नहीं समझा कि बच्चे की शिक्षा विदुषी माता द्वारा ही हो सकती है और वही उसे संसार-संग्राम के योग्य बना सकती है। जीवन के वे पहले कुछ वर्ष संस्कार-धारण के होते हैं, जब बच्चा केवल नकल करता है। अपने इर्द-गिर्द के वातावरण को वह आसानी से पकड़ लेता है और जो कुछ उसके बडे-बूढे, नौकर-चाकर और पड़ौसी करते हैं उन्हीं को वह अपने लिए भी हितकर समझता है। सोचने का मादा तो वयस्क होने पर ही आता है, किन्तु पहले वर्ष केवल अनुयायी होने के ही होते हैं। जो सस्कार इन पहले वर्षो में बच्चो पर पड़ जाते हैं वे बुढ़ापे तक साथ जाते हैं और अमिट हो जाते हैं।

इसीलिए आर्य-जाति के महापुरुषो ने जब अपने गुरुकुल स्थापित किये थे, जब वे अपने शिशुओ को वानप्रस्थी कुलो मे विद्याध्ययन के लिए भेजते थे, तो वहां ऋषि-पत्नियां ही उन्हें उत्तम शिक्षा देती थी। जब वे बड़े हो जाते थे तब उनका अध्ययन-कार्य ऋषियो द्वारा होता था। यही कारण था कि आर्य-जाति ने उस काल में बडे ऊचे दर्जे के दार्शनिक, शक्तिशाली क्षत्रिय, तेजस्वी ब्राह्मण और त्यागी महापुरुष पैदा किये थे। सच्चरित्रता का स्रोत है माता। जिस घर में पढ़ी-लिखी माता है, वही घर धन्य है। वहां से जो सन्तान बाहर आयेगी वह राष्ट्र के आदर्श को पूर्ण करेगी। योरुप की जातियो ने भी इस सत्य सिद्धान्त को भली प्रकार समझा है, इस कारण शताब्दियो के अनुभव के बाद वे भी आज इस परिणाम पर पहुची हैं कि बच्चे के पहले पाँच-सात वर्ष जीवन में सबसे अधिक कीमती होते है। योरुप की उन्नतिशील जातियो ने अपने बच्चो की शिक्षा स्त्रियो के हाथो मे दे दी है और वहां सभी प्रारम्भिक स्कूल अच्छी अध्यापिकाओ द्वारा सुशासित होते हैं। वे अध्यापिकायें मनोविज्ञान की सहायता से शिक्षा के सुलभ तरीके निकालती है और प्राकृतिक नियमों के अनुसार इन शिशुओं का विकास करती हैं। रोमन कैथोलिक ईसाई भी अपने मठों में छोटे बच्चो को भिक्षुणियों

के सुपुर्द कर देते हैं और आज शताब्दियों से उनके यहां की शिक्षा की धाक सारी दुनिया पर पड़ी हुई है ।

अतएव यदि हम चाहते हैं कि हमारा राष्ट्र उन्नत हो, हम संसार की सभ्य जातियों के मुकाबले में खड़े हो जायें, हमारा कूड़ा-कचरा निकल जाये और हम में श्रेष्ठतम संस्कृति का विकास हो, तो हमें अपने घरों को सुधारना चाहिए । हमें ऐसी शिक्षा का प्रबन्ध करना चाहिए जिसके द्वारा हम सदाचारिणी, धर्मात्मा और सुगृहिणी देवियां पैदा कर सकें। हमारे बच्चे अपने प्रारम्भिक वर्षों को अनाचारी नौकरों की संगत में खर्च न करें, बल्कि सुशिक्षिता माता के प्रभाव में रहकर सच्चरित्रता को धारण करें । धनी लोग अपने घरों में जिन आदमियों को नौकर रखते हैं, बहुधा बच्चे उनके द्वारा बिगड़ जाते है। हम मूर्खतावश यह समझते है कि छः महीनो का बच्चा कुछ भी नही समझ सकता, एक वर्ष की लड़की कोई बुरा संस्कार पकड नहीं सकती; इसी प्रकार तीन-चार वर्ष के बच्चे को हम अबोध मानकर उसके सामने सब प्रकार की कुचेष्टायें कर बैठते हैं। निस्सन्देह बच्चे अबोध होते है, पर उनकी इन्द्रियां संस्कारों को बड़ी जल्दी पकडती हैं । बच्चे की पहली मुस्कराहट से ही उसकी शिक्षा का समय प्रारम्भ हो जाता है। बहुत से व्यभिचारी माता-पिता अपने पाँच-छः महीने के शिशुओ के सामने ऐसे दुष्कर्म करते रहते हैं जो आगे चलकर उस बच्चे के जीवन को नाश करने वाले बन जाते है । जिन्हें हम बिल्कुल साधारण बातें समझते है, जो घटनायें हमारे लिए बिल्कुल मामूली है, वे ही उन बच्चो के लिए बड़े नतीजे पैदा करती हैं ।

स्वर्गीय पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर अपनी माता के पुण्यप्रताप से ही इतने बड़े दिग्गज विद्वान् हुए थे । उसी विदुषी माता के उपदेश से उन्होंने विधवाओ के उद्धार का संकल्प किया और हिन्दू-समाज में अमर-कीर्त्ति प्राप्त की । जितने भी महापुरुष संसार मे हुए है, उन सबकी महत्ता का स्रोत 'माता' इस शब्द में छिपा हुआ है । नये-नये आवि-

ष्कारों के भूखे भले ही अपनी स्त्रियों को राजनीति के पचड़ो में डाल दें, भले ही उन्हें पापी पेट के मायाजाल में फँसा दें, भले ही वे स्वतन्त्रता-युग की आड़ लेकर नारियों को पुरुषो के मुकाबिले में खड़ा करने की डींग हाँकें, परन्तु जब इस आँधी-तूफान की मिट्टी निकल जायगी, आकाश निर्मल होगा और सूर्यदेव चमकेंगे, तो इन्हें अपनी भूलें मालूम होगी । वे फिर उसी सत्य को ग्रहण करेंगे जिसे शताब्दियों से संसार की उन्नत जातियों ने अपने अनुभव से सीखा है । नारी का स्वराज्य घर में है; वही वहाँ की रानी है और उसी के द्वारा राष्ट्रो का उत्थान हो सकता है ।

यहाँ पर यह प्रश्न उठ सकता है कि क्यों फिर सभ्य मनुष्य बहक जाते हैं ? क्यों आज स्त्रियो को घरों की देवी न बनाकर राजनीतिक हलचलों में खीचे लिए जा रहे है ? क्यो आज घरो को बिगाड़ कर होटलों की प्रतिष्ठा बढ़ाई जा रही है ? और क्यो युवा लड़कियों के हृदयो में आर्थिक स्वतन्त्रता के साँप ने घर कर लिया है, जिसके कारण वे नौकरियो के लिए दौड़ी जा रही है ? सच्चरित्रता के इस पवित्र विषय में पूर्णतया प्रवेश करने से पहले हम इन प्रश्नो पर प्रकाश डालना अपना कर्त्तव्य समझते है । अतएव आइये, पहले बीसवी सदी की इस अशान्ति के कुछ कारणो की पड़ताल कर ले; तभी अपनी लेखनी को आगे बढायेंगे ।

The mother's heart is the child's school room.
—Henry Ward Beecher

Men are what their mothers made them.
—Emerson

The future destiny of the child is always the work of the mother.
—Napolean Bonaparte

तीसरा पुष्प

वर्तमान अशान्ति का मुख्य कारण

भारतवर्ष आज नवीन युग में प्रवेश कर रहा है । इस नवीन युग का उत्पादक योरुप है । जब से हमारा सम्बन्ध योरुप की सभ्य जातियों से हुआ है, तभी से हम वहाँ की शिक्षा और संस्कृति से प्रभावित होते जा रहे हैं । योरुपीय जाति का भारतवर्ष मे शासन रहा है, इस कारण स्वाभाविक ही इस देश का शिक्षित समुदाय, जिसकी रोटी अधिकारियों की कृपा पर निर्भर रहती है, योरुपीय प्रभाव से प्रभावित हुए बिना रह नही सकता था । बहुत सी बातें तो शासको को खुश करने के लिए अपनाई जाती है और बाक़ी धीरे-धीरे खुला स्थान पाकर स्वयं प्रवेश कर गई हैं । हमारे घर हमारी सन्तान को किसी प्रकार की उच्च शिक्षा नही देते, इसलिए भी स्कूलो कौर कालिजो मे पढे हुए लड़को पर विदेशी वातावरण का ही असर होना स्वाभाविक था । ऐसी परिस्थिति में हमारे देश के लोग विवेक-शून्य होकर नकलची बनने में लग गए हैं । उन्होंने बिना किसी सोच-विचार के, अपने समाज और देश के जल-वायु को ध्यान में न रखकर, योरुप वालो की नकल करना प्रारम्भ कर दिया है और जब नकल के विषैले फल हिन्दी-समाज को चखने पड़ते है तो फिर योरुप को बुरी तरह से कोसा जाता है । यही कारण है कि हमारे देश में आज अशान्ति की लहरें उठ रही है और बहुत से लोग हमसे यह पूछते है कि वे अपनी सन्तान को क्या पढावें, लड़कियों को किस प्रकार की शिक्षा दें ?

इतना ही नही बल्कि जब से हमारे यहाँ राजनीतिक जागृति हुई है तब से हम इस क्षेत्र में भी योरुप वालो की बुरी तरह से नकल करने

लगे हैं । स्त्रियो को राजनीति-क्षेत्र में लाकर हम उनके द्वारा अपनी समस्यायें हल करवाने के प्रयत्न में लग गए हैं । प्रगतिवाद के नशे में चूर कुछ बहके हुए लोग औरो के पद-चिह्नो पर चलकर गृहस्थाश्रम का नाश करने पर उतारू होगए हे और वे यह खुले तौर पर कहते हे कि गृहस्थाश्रम एक प्रकार का जेल है । वह रूढिवाद सिखलाता है, वही पुरानी दकियानूसी बातो का केन्द्र है, इसलिए स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध अटूट न होकर उसे स्वच्छन्दता का रूप धारण करना चाहिए ताकि वर्तमान युग के सभी आविष्कारो का मज़ा हम लोग ले सकें । वे यह भी कहते हे कि बच्चो को पालने की जो मुसीबत है उसे राष्ट्र को देकर, मातृ-स्नेह नामक जो जगलीपन की निशानी है उसे हटाकर, बिलकुल स्वतन्त्र होकर इस ससार में विचरना चाहिए । कुछ लोग ऐसे है जो 'सुगृहिणी' शब्द को निकम्मा सिद्ध करने के लिए होटलो मे भोजन कर अपने फुर्सत के समय को सिनेमाओ में लगाना चाहते हे ताकि जीवन का आनन्द मिल सके । इस प्रकार स्त्री को गृह-शक्ति मानकर उसके द्वारा नागरिको को सच्चरित्र बनाने का जो आदर्श मानव-समाज ने लाखो वर्षों के अनुभव के बाद सीखा था, उसका वे मूलोच्छेद करना चाहते हे । समाज की ऐसी हलचल और अशान्ति को दूर करने का उपाय क्या है ? ससार के इन बहके हुए प्रगतिवादियो और सिनेमा के शौकीनों को हम किस प्रकार ठीक मार्ग पर ला सकते है जिससे व्यथित मनुष्य का हृदय शान्त हो और स्त्रियो की क्षुभित इन्द्रियाँ आध्यात्मिक सुख लाभ करें ? इस विकट प्रश्न पर हमने विचार करना है ।

सच बात यह है कि योरुप वालो ने अपनी सस्कृति और सभ्यता की आधार-शिला गलत सिद्धान्त पर रखी है । वे लोग यह मानते हे कि आवश्यकताओ की वृद्धि सभ्यता की जननी है और उसी के द्वारा जीवन-संग्राम में तेज़ी आती है, जिसकी सहायता मे सक्षम मनुष्यों को ही जीवन-दान मिलता है और निकम्मे आलसी नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हे । इसी आधार-शिला के कारण पैसे ने योरुपीय जीवन में बड़ा ऊँचा दर्जा

पाया है और समाज को उसकी होड़ ने पागल बना दिया है। क्योंकि योरुपीय समाज शिक्षित है, वह सच्चरित्रता के गुणों को समझता है, इस कारण उन सद्गुणों को तत्काल तिलांजलि देना उसके लिए शक्य नही, पर जीवन की होड़ उसे पैसा कमाने पर मजबूर करती है। मगर पैसा आसानी से पैदा हो नहीं सकता, उसके लिए करना पड़ता है मकर-फरेब। तब अत्यन्त लाचार होकर योरुपीय समाज के सुशिक्षित मनुष्य को अपने मस्तिष्क को विकृत करना पड़ता है और सच्चरित्रता के अर्थों की पवित्रता को बिगाडना पड़ता है। कुछ लोग इससे भी आगे बढकर रोटी के मोह में ऐसे फँस गए हे कि अपने पुरुखो की लाखों वर्षों की कमाई पर टनों मिट्टी डालकर नई सभ्यता और संस्कृति का आविष्कार करने चले है और पागलो की तरह दुनिया को यह सिखलाते है कि जब तक उनकी शैली के विचार वाले सब लोग नही हो जाते—जब तक संसार में बोल्शेविक स्टेट स्थापित नहीं होती—तब तक संसार में सुख और शान्ति नहीं फैल सकती।

इस प्रकार जितना तूफान आज दुनियां में रोटी के सम्बन्ध में उठा है वह केवल इस ग़लत आधार-शिला के कारण ही है। चाहिए तो यह था कि मनुष्य जीवन की आवश्यकताओं को कम कर ज्ञान-प्राप्ति के साधन की वृद्धि करता, जीवन में सयम लाकर ज्ञानप्राप्ति के आविष्कारों के लाभ को सबके लिए सहल बना देता; लेकिन यह न कर सभ्य समाज आज जीवन में आवश्यकताओं की वृद्धि को ही सर्वतोमुखी उन्नति का मूल कारण समझ बैठा है, जिसकी वजह से उसका लाखो वर्षों का संग्रह किया हुआ खज़ाना लुटा जा रहा है और जो आविष्कार उसने अत्यन्त परिश्रम और अध्यवसाय के साथ किए है वे अपना भयंकर स्वरूप दिखला कर उसके हृदय को व्यथित कर रहे है। अतएव सबसे पहिले पूर्वीय संस्कृति की सर्वोपरि शिक्षा—आत्म-संयम और जीवन में आवश्यकताओं की कमी—का महत्व हमारे पाठकों को समझ लेना चाहिये, क्योंकि इसी पर सच्चरित्रता का सारा आधार है। हम

सामाजिक सदस्यों को तभी सच्चरित्रता का उपदेश कर सकते हैं जब पहले रोटी की विषम समस्या का हल उनके सामने रख दें । अतएव जीवन में आवश्यकताओं की कमी का समाज पर क्या प्रभाव पड़ता है, इस पर थोड़ा विचार करते है ।

मनुष्य एक पशु है । उसमें पशुपन का सभा बात मोजूद हे । शिक्षा द्वारा उस पशुपन का नाश कर जो व्यक्ति देवी गुणो को पकडता है, उसे ही हम मनुष्य कहते है । पशु अपने सारे समय को भोजन के प्रयत्न में खर्च करता हे और पक्षी भी दिन-रात उसी धुन मे रहते हे । जब मनुष्य पशुपन के इस स्वभाव को छोड़ कर इन्द्रिय-सयम करता है, तब उसकी आवश्यकताए कम होने लगती है और ज्यो-ज्यो उसमे इस गुण की वृद्धि होती चली जाती है त्यो-त्यो उसके पास अवकाश की अधिकता होने लगती है; साथ ही धन-सग्रह करने की बीमारी उससे कोसों भागने लगती है । यह उसी अवस्था मे सम्भव है कि जब पुरुष जिस पैमाने में आत्म-सयम करे उसी के अनुसार वह ज्ञान की वृद्धि भी करता जाए । यदि वह केवल अपनी आवश्यकताओं को कम करता है और ईश्वरीय ज्ञान की वृद्धि नही करता, तो वह या तो आलसी हो जायेगा या महाकजूस । भारतवर्ष मे यही हुआ है । हम लोगो को आत्म-सयम की शिक्षा देते है, जीवन की आवश्यकताओ को घटाना सिखलाते है, लेकिन उसी पैमाने मे ज्ञान-सचय करने के साधन पैदा नही करते । परिणामस्वरूप हम बनियापन की बीमारी मे डूब गए है । योरुप ने जीवन की आवश्यकताओ को बढ़ाया है और उसी पैमाने में साइन्स की उन्नति भी की है, इस कारण वहाँ विद्या देवी अपने पूर्ण सौन्दर्य के साथ नाचने लगी है । विविध दिशाओ में उन्नति करने वाला योरुपीय समाज अपनी पहली भूल के कारण रोटी की भयङ्कर समस्या में फँस गया है, जिसकी वजह से समाज के सभी सदस्यों को पैसा कमाने का ज्वर-सा चढ़ गया है, क्योकि बिना पैसे के जीवन की आवश्यकताए पूरी नहीं हो सकती । उसी भूल का विषैला फल गृहस्थाश्रम का नाश है । होटलों

में भोजन करने से कम खर्च पड़ता है; गृहस्थ बांधने में पैसे की बड़ी जरूरत है। वह पैसा कहाँ से पैदा हो ? जब सारा समाज पैसा कमाने की धुन में लग जाये तो मनुष्यों का मनुष्यपन नष्ट क्यों न होने लगे और सच्चरित्रता के सद्गुणों का विकृत स्वरूप क्यों न हो जाये ? इङ्गलैण्ड को अपने कल-कारखानो की खातिर हिन्दुस्तान की जरूरत थी; अपना पक्का माल बेचने के लिए उसे हिन्दुस्तान की मण्डी चाहिए थीं; अपनी बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उसे हिन्दुस्तान का सोना दरकार था; तब फिर वह हिन्दुस्तान को कैसे छोड़ता ? सच्चरित्रता की कसौटी को समझता हुआ भी एक अंग्रेज अपनी निजी आवश्यकताओ तथा अपने देश की जरूरतों के कारण साम्राज्यवादी बन जाता है और उसी कसौटी से वह नैतिक गुणों की व्याख्या करने लगता है। क्या इसमें उसका कोई दोष है ? बिल्कुल नही। दोष है केवल उसकी उस आधारशिला का जो उसे आवश्यकताओ की अधिकता के सिद्धान्त को सिखलाती है।

इसी प्रकार योरुपीय समाज की रमणियाँ जब अपने जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने में दिक्कत देखती है तो वे मनुष्य की तरह जीवन-संग्राम में उतरती है। वैसे ही मकर-फरेब कर उन्हें भी अपनी नौकरियो की रक्षा करनी पड़ती है और राजनीतिक क्षेत्र मे आकर ख्याति-लाभ तथा पैसा बटोरने का चाव पूरा करना पड़ता है। योरुप का सुशिक्षित सभ्य समाज अपनी पहली भूल के कारण ही ऐसी सब व्याधियों में फँसा हुआ है और वही भूल सर्वव्यापक होकर सारे संसार को अशान्त कर रही है।

भारतवर्ष को भी आज यही बीमारी लग गई है। पढ़े-लिखे लोग योरुप के नकलची बन कर अपनी जरूरतें बढा रहे हैं। लेकिन यहाँ पैसा पैदा करने के साधन बहुत थोड़े है। ऐसी अवस्था में शिक्षित समुदाय यदि रिश्वत और अनाचार की ओर चला जा रहा है तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? हमारा योरुप को कोसना व्यर्थ है। योरुप तो अपनी भूल

से निकलने का मार्ग तलाश कर ही लेगा; मूर्ख तो हम ही लोग हैं जो अपने पास विद्यमान सुन्दर सुसंस्कृत उपाय को छोड़कर दूसरों की नक़ल करने में लगे हुए हैं। योरुप के पास तो थोड़ी जन-संख्या है। उसके पास बड़े-बड़े उपनिवेश हैं। वह सुशिक्षित और पुरुषार्थी है। वह अपनी बीमारी का इलाज अवश्य ही तलाश कर लेगा, परन्तु उसकी भूल के चक्कर में पड़कर न तो हम दीन के रहेंगे और न दुनिया के। हमें बहुत शीघ्रता से अपनी भूल समझ लेनी चाहिए और आर्यों की सर्वोत्कृष्ट संस्कृति की आधारशिला का आदर कर उसी पर योरुप के सद्गुणों की पेबन्द लगाना उचित है; तब हम न केवल अपने आपको ही बचा लेंगे बल्कि सारे संसार को शान्ति-पथ दिखलायेंगे।

जब हम किसी काम को अपने सिद्धांतानुकूल, आत्मा की ध्वनि के अनुसार, करते हैं तो हमें उसके करने में कितना सुख मिलता है! इसके विपरीत जब किसी काम को करने से भय और आतंक की उत्पत्ति होती है तो वे काम हमारे जीवन में अशांति पैदा करते हैं। संसार की वर्तमान अशांति के कारण राष्ट्रों के वे कुटिल राजनीतिक ढंग हैं जिनके द्वारा वे दूसरे राष्ट्रों को धोखा देकर अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। अतएव यदि हम अपने जीवन में शांति के इच्छुक हैं तो हमें अपनी आत्मा की ध्वनि के अनुसार अपना आचार बनाना चाहिए।

—स्वामी सत्यदेव परिव्राजक

चौथा पुष्प

आत्मा की आन्तरिक उत्कण्ठा

यह व्यापारिक युग है । चारो ओर कल-कारखाने बनाकर पक्का माल तैयार करने का भूत जातियों पर सवार है । व्यापार की होड़ में सब राष्ट्रो के पूजीपति अपने पैसे का मायाजाल फैलाकर तृष्णा का अत्यन्त क्षुभित वातावरण उत्पन्न कर रहे है । योरुपीय समाज सभ्यता की अपनी ग़लत आधार-शिला के कारण व्यवसाय के भयकर भँवर में फँस गया है । पहले जिस व्यापारिक युग का उसने बड़ी प्रसन्नता से स्वागत किया था, उसी के विषैले फलो के परिणाम को देखकर आज उसके चिन्ताशील विद्वान् अत्यन्त व्याकुल हो उठे है । संसार में आर्थिक संकट का तूफान खड़ा होगया है । उसी के कारण आज चारों ओर "रोटी! रोटी!!" की हाय-तोबा मच रही है । ऐसी अवस्था में यदि जनता के नेता पुकार-पुकार कर यह कहने लग जायें—"रोटी की समस्या ही संसार की मुख्य समस्या है", तो इसमें आश्चर्य ही क्या है, क्योकि एक भूल से दूसरी भूल पैदा होती है और वह होती है बड़ी विकट । एक उलझन से दूसरी उलझन और दूसरी से तीसरी—इस प्रकार उलझनों का जङ्गल बनकर हमारी विवेकिनी बुद्धि का ह्रास कर देता है ।

अतएव हमें सबसे पहले मनुष्य की स्वाभाविक स्थिति पर विचार करना चाहिए । हमारे आश्रम में एक छोटा-सा कुत्ता है, जिसे हमने बड़े प्रेम से पाला है । जब हम उसे जंजीर से बाँध देते है तो वह व्याकुल होकर चिल्लाने लगता है । हम उसे रोटी देते है, दूध देते है, पीने के लिए ठण्डा जल देते है, और समय-समय पर पुचकारते भी है; तिस पर भी वह अशान्त हो उठता है और जञ्जीर से छूटने के लिए भड़क

उद्योग करता है। तब हम सोचने लगते है कि क्या जीवन में रोटी का ही प्रश्न मुख्य है ? यदि रोटी का प्रश्न ही सबसे महान् समस्या होती तो यह पशु रोटी पाकर शान्त हो जाता और चुपचाप बैठ जाता। इस पशु की अवस्था का अध्ययन करने से पता चलता है कि हमारे जीवन में रोटी मुख्य वस्तु नही, इससे भी बढ़कर एक दूसरी वस्तु है जिसके लिए हमारी आत्मा लालायित रहती है।

जिन दिनों 'होम-रूल लीग' का आन्दोलन चल रहा था, तो भारत सरकार ने उस आन्दोलन की नेत्री स्वर्गीया देवी 'ऐनी बीसेन्ट' को मद्रास के अत्यन्त नीरोग स्थान में नज़रबन्द कर दिया था, जहाँ पर उनके सुख के सभी साधन जुटा दिये गये थे। भोजन की कोई कमी नही थी, पर्याप्त रूप में फल भी मिलते थे; तिस पर भी उनकी आत्मा छटपटा रही थी और वे वहाँ बीमार होगईं।

महात्मा गांधी जी के 'सत्याग्रह-युद्ध' के दिनों में देश के बडे-बड़े नेता जेलो में डाल दिये गये। वहाँ वे 'ए' क्लास में रखे गये थे। खाने-पीने के लिए उन्हें काफी मिलता था। फल भी टोकरियो मे भरे हुए आ जाते थे। खाने की किसी प्रकार की शिकायत नही थी। लेकिन तो भी उनकी आत्मा वहाँ पर बेचैन थी। पं० मोतीलाल जी नेहरू, प० जवाहरलाल जी नेहरू, ला० लाजपतराय जी, श्री देशबन्धु चितरंजनदास आदि भारत के माननीय नेता जेलो में रोटी के दु.ख के कारण दु:खी नही थे। सरकार उन्हे खाने को तो काफी देती थी। लेकिन आत्मा की उस अनादिकाल की लालसा, उसकी उस आन्तरिक उत्कण्ठा—स्वतन्त्रता महारानी—के अभाव से उन्हें वहाँ किसी प्रकार का भी सुख-बोध नही होता था।

इसलिए वर्तमान काल का रोटी का प्रश्न अस्वाभाविक परिस्थितियों का अस्वाभाविक परिणाम है। आत्मा की उत्कण्ठा तो स्वतन्त्रता खोज रही है। उसे किस प्रकार पूर्ण स्वाधीनता मिले, यही सबसे बड़ी समस्या है। इसी तथ्य को समझ कर आर्य लोगों ने अपने समाज को अध्यात्मवाद की शिक्षा दी थी और आत्मा की अनुभूति का रास्ता

बताया था। वे कहते थे कि संयमी पुरुष ही स्वतन्त्रता सुख को समझ सकता है। जितना अधिक तुम अपनी आवश्यकताओं को बढ़ाओगे, जितना अधिक तुम प्राकृतिक भोगों की खोज करोगे, जितने अधिक पैमाने में तुम अपनी इन्द्रियो को विषयों की ओर दौड़ाओगे, उतना ही अधिक तुम स्वाधीनता से दूर हटते जाओगे। उन्होंने इसीलिए आत्म-संयम का मार्ग बतलाकर जीवन की आवश्यकताओं को कम करने का उपदेश दिया, ताकि मनुष्य धन-संग्रह करने की बीमारी से ग्रसित न हो जाय। उन्होंने समाज में उन्हीं लोगों को आदरणीय स्थान दिया जो सर्वोत्कृष्ट ज्ञान का संग्रह तो करें, किन्तु अपने नित्य के जीवन की आवश्यकताओ पर अपना कब्जा जमा लें। जब मनुष्य मे ज्ञान की लालसा बढने लगती है तो उसका हृदय उस ज्ञान को बाँटने के लिए आतुर हो उठता है। जब उसकी आवश्यकतायें बढ़ने लगती है तो उसका हृदय संकुचित होकर दूसरो से राग-द्वेष करने लगता है। इसी लिये हमारे यहाँ के विद्वानो ने ज्ञान-संचय करने को ही जीवन का श्रेष्ठतम आदर्श माना। जो ज्ञान-सचय करने पर अपने जीवन को बलिदान करता है, स्वाभाविक ही उसे अपनी जरूरतें कम करनी पड़ती है, ताकि उसे अधिक से अधिक अवकाश मिल सके और वह आजादी से अपने मस्तिष्क को ज्ञान की खोज में खर्च कर सके। इसी आधार-शिला पर उन्होने अपनी संस्कृति की नीव रक्खी थी और बड़ी सुगमता से आर्थिक प्रश्न का हल तलाश कर लिया था। इतना ही नही बल्कि उन्होने सच्चरित्रता का दरवाजा खोलकर उसके मार्ग की सभी बाधाओ को दूर कर दिया।

आज हम अपने देश के लोगो के सामने उसी आधारशिला का आश्रय लेकर चरित्र-संगठन के गुणो का बखान करेंगे। योरुप के संस्कृति-प्रेमी अपनी सारी शक्तियों को अपनी समस्यायों के हल करने में लगा रहे हैं। रूस में जो विकृत ढङ्ग से सामाजिक समस्याओं को हल करने का प्रयत्न हो रहा था उसका दुष्परिणाम भी दुनिया के सामने

आ रहा है। हमें इस विषय में योरुप की नकल न कर, वहां की सभ्यता और संस्कृति को कोसना छोड़कर, अपने सद्गुण मिलाकर वर्त्तमान युग की जरूरतों के अनुसार अपनी सन्तान का चरित्र बनाना चाहिए। आत्मा की आन्तरिक उत्कण्ठा स्वाधीनता के लिए है। आत्मा की यह हार्दिक इच्छा है कि उसे प्रभु का अनन्त ज्ञान मिले। उस अनन्त ज्ञान की प्राप्ति का एकमात्र साधन शरीर है। शरीर की रक्षा इस ढग से होनी चाहिए कि जिससे इसका पूर्ण विकास हो। इसकी जरूरते तो बहुत कम है; हम इसे थोड़े से परिश्रम से ही नीरोग रख सकते हैं और इसे आत्मिक उन्नति का सर्वोत्कृष्ट साधन बना सकते है। जब सारा समाज इस आदर्श को समझ कर अपनी शिक्षा की व्यवस्था इसी की सिद्धि के लिए करेगा तो रोटी के प्रश्न की विषमता शीघ्र ही दूर हो जायेगी और हम विकास के स्वाभाविक मार्ग पर चलने लगेंगे। ससार में जो आज दुःखद दृश्य दिखलाई देते है, वे सब मिट जायेंगे और मनुष्य मनुष्य का मित्र बनकर अनन्त का अन्वेषण करने लगेगा। ज्ञान-प्राप्ति की लालसा ही मनुष्य को मनुष्य के साथ प्रेम करना सिखला सकती है; वही स्पृहा मनुष्य को चरित्रवान् बना सकती है और उसी के सहारे यह संसार स्वर्ग बन सकता है। सच्चरित्रता का वह स्वरूप हमने पाठको को दिखलाना है, उसके भिन्न-भिन्न अंगो का वर्णन करना है और उसके सब पहलुओ पर विचार कर अपने समाज को पूर्ण विकास का रास्ता बतलाना है; अतएव हम अगले पुष्पो मे चरित्र- सगठन के भिन्न-भिन्न अंगों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेगे।

●

आत्मा की आन्तरिक उत्कंठा यह है कि उसे उत्तरोत्तर नवीन ज्ञान की प्राप्ति हो। उसमें रचना की साध बड़ी ज़बरदस्त है। इसलिए जो लोग अपने जीवन का लक्ष्य ज्ञान-प्राप्तिबनाते है उनका आत्मा सदा प्रसन्न रहता है।

—देवदूत

पाँचवाँ पुष्प

जीवन का स्वरूप

हम अपने जीवन को क्या समझते है, इस पर आज गम्भीरता से विचार करने का समय आ गया है। हम लोगो में स्पष्ट विचार करने की आदत न होने के कारण बहुत से भ्रमात्मक विचार हमारे समाज में फैले हुए है। बहुत से ऐसे शब्दो का प्रयोग हम अपनी भाषा में करते है जिन्हें हम समझते नहीं। यह संसार मिथ्या है, हमारे सामने जो कुछ है वह सब माया है, ससार नाशवान् है, यह दुनिया चन्दरोज़ा है, आखिर हमें मिट्टी में मिल जाना है—इन सब वाक्यों का क्या अर्थ है ? क्या वे लोग जो इस प्रकार के वाक्य काम में लाते है, उनका उच्चारण करते है, उनके अर्थ भली प्रकार समझते है ? हमारा ख्याल यह है कि इस प्रकार के वाक्यो का प्रयोग करनेवाले, सामने आई हुई किसी कठिन परीक्षा के विरुद्ध अपने मन को सान्त्वना देने के लिए ऐसे वाक्यों का प्रयोग कर विरोधी वातावरण पैदा करने का यत्न करते हैं। मानव-स्वभाव आसान रास्ता ढूढता है; वह कठिनाइयों से भागता है और आराम-तलबी से जीना चाहता है। जिस समय भारतीय समाज अत्यन्त विकट अवस्था में पड़ गया था, जब निराशा की तरंगो मे समाज डूबने लगा था, जब भयकर विपत्तिया मुह बाये भारतीय समाज को निगलना चाहती थी, उस समय वीरता से उन कठिनाइयों का सामना न कर हमारे कायर नेताओं ने जीवन-सम्बन्धी निराशा की फिलासफी की रचना की थी—एक इस प्रकार की शराब बनाई थी जिसके पी लेने से जीवन के दुःख भयदायक न हो और कष्ट आसान हो जाएँ। क्या हमें उसमें सफलता हुई है ?

सचमुच हमने जीवन के स्वरूप का ग़लत चित्र अपने सामने खींच रक्खा है। हमारा कोई भी आचार्य क्यों न हो, वह कैसा ही बड़े से बड़ा क्यों न हो, उसे हम कैसी ही श्रद्धा से क्यों न देखते हों—वह चाहे स्वामी शंकराचार्य हो या भक्त कबीर, कोई हो—जिस किसी ने भी हमें यह शिक्षा दी कि 'संसार मिथ्या है और जीवन स्वप्न-मात्र है' उसने सचमुच हमारे समाज के प्रति बड़ा भारी पाप-कर्म किया है।

जीवन सत्य है, मिथ्या नहीं। जीवन के छोटे-से-छोटे काम अपना परिणाम उत्पन्न करते हैं। परिवर्त्तन और नाश, ये दो अलग-अलग अवस्थाएँ हैं, इन्हें मिलाइये नहीं। जिस वस्तु का नाश हो जाता है उसका अन्त हो जाता है। क्या परिवर्त्तन को नाश कहना सत्य है? जीवन में परिवर्त्तन होता है; मृत्यु परिवर्त्तन का नाम है, नाश का नहीं। जब कोई मनुष्य मर जाता है और हम उसे जला देते हैं, तो क्या उसके जीवन का नाश हो जाता है? कदापि नहीं। हमारे समाज ने जीवन को नाशवान् समझ कर विकास के सभी मार्ग बन्द कर लिये हैं। यदि जीवन मिथ्या है, तो हम इसके लिए उद्योग क्यों करें? यदि कोई हमारा घर लूटने के लिए आवे तो हम उसके साथ क्यों लड़ें? लड़ाई सत्य के लिए की जाती है, मिथ्या के लिये नहीं। हिन्दू-समाज के बच्चों में 'जीवन सत्य है', 'जीवन एक संग्राम है', 'संसार एक पाठशाला है, जहाँ हम शिक्षा ग्रहण करने के लिए आये हैं'—इस प्रकार के विचारों को भरने की आवश्यकता है। हम जीवन में तभी दिलचस्पी ले सकते हैं, तभी उसके लिए कठिनाइयाँ सह सकते हैं जब हमको संसार के सत्य होने का पाठ पढाया जाये। हम आज भेड़-बकरी, गाय-बैल की तरह किसी भी बलवान् व्यक्ति द्वारा हँकाये जा सकते हैं। हमारी जनता की बड़ी संख्या ऐसी ही है जैसे कि पशुओं का झुण्ड, जिसे थोडे से चरवाहे भी हाँक सकते हैं।

ऐसी हीन अवस्था हमारी इसीलिए है क्योंकि हम इस जीवन को

चन्दरोज़ा, नाशवान् चीज़ समझते हैं और इसीलिये हम अपने अधिकारों की कीमत नहीं समझ सकते। जब हम यह कहते हैं—'करे करावे आप ही आप, इस मानस के कुछ नहीं हाथ'—तो क्या हम अपने जीवन के उत्साह की जड़ नहीं काट देते ? आज इस प्रकार के हज़ारों भजन, वाक्य और कहावतें हमारी जनता में प्रचलित हैं जो हमारी शक्तियों को घुन लगा रही हैं। सैकड़ों-हज़ारों वर्षों से हमारा अधःपतन हो रहा है, क्या कभी हम बैठकर गम्भीरता से उस पर विचार करते हैं ? मामूली दुकानदार भी जब एक धन्धे में एक ढंग से सफलता प्राप्त नहीं करता, तो वह दूसरा ढंग सोचने लगता है। लेकिन हम शताब्दियों से बराबर अपने पुराने ढर्रों से अपनी जीवन-यात्रा में पराजय पर पराजय पा रहे हैं, लेकिन कभी भी उसे सुधारने, उन्नत करने का नाम नहीं लेते। ऐसा क्यों है ?

यह इसीलिये है कि हमारे जन-साधारण ने जीवन के स्वरूप का स्पष्ट दर्शन नहीं किया और न हमारे आचार्य ही हमें इस विषय में ठीक पथ दिखलाते हैं। जब तक आदर्श स्पष्ट न हो, सामग्री नहीं जुटाई जा सकती। अतएव हम अपने देश-बन्धुओं से सविनय निवेदन करते हैं कि जीवन को सत्य और संसार को नित्य समझ कर उसके एक-एक मिनट को मूल्यवान् जानें। संसार तभी तक दुःखदायी है जब तक कि हम जीवन के स्वरूप को सत्य और शिव नहीं समझते। हमारे में कभी भी निर्भयता नहीं आ सकती, जब तक कि हमें जीवन के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान न हो। सब प्रकार के बोदे विचार, झूठे वैराग्य, क़िस्मत की फ़िलासफी और दासता से सने हुए भक्ति-मार्ग के कीटाणुओं को अपने मस्तिष्क से निकाल कर जीवन के स्वरूप का दिव्य दर्शन कीजिए; तब आपको एक नया ही अनुभव मिलेगा और संसार के पदार्थ अपने हृदय की बातें बतायेंगे।

●

छठा पुष्प

जीवन-स्फूर्ति

मार्च का महीना था। सूर्यदेव उदय हो चुके थे। कनखल के उस पार गङ्गा जी के किनारे खड़ा हुआ मैं जीवन के इस महान् प्रश्न पर विचार कर रहा था। सोचते-सोचते स्नान करने के लिए जल में पाँव रक्खा। सुन्दर गोल-गोल पत्थर जल की धारा में पड़े मुस्कुरा रहे थे। एक दो को उठाकर मैंने देखा। सुन्दर, गोल-गोल, गले में शुभ्र यज्ञोपवीत पहरे साक्षात् शालिग्राम ! आहा ! इन्होंने ऐसी मनोहारिणी मूर्त्ति कहाँ से पाई ? क्या जन्म धारण करते समय ही इनका ऐसा सौन्दर्य था ?

कदापि नहीं। हिमालय के ये पुत्र हैं। अपने बाल्यकाल में इनके शरीर टेढ़े-मेढ़े थे। बहुत सी नोकें निकली हुई थीं। किसी के साथ मिल कर बैठ नहीं सकते थे। वाणी में रस नहीं था। जिसको छूयें, जिससे बोलें, उसी के साथ सिर-फुटौवल हो। पिता हिमालय जीवन का रहस्य जानते हैं। उन्होंने इनको संसाररूपी गङ्गा के धारा-प्रवाह में छोड़ दिया। इस प्रवाह में क्यों ठोकरें खाईं; सैंकड़ों संग्राम किए; खूब रगड़े गए। परिणाम क्या हुआ ?

आज ये पूज्य शालिग्राम बनकर हमको जीवन का रहस्य बतला रहे हैं। जीवन क्या है ?—इस महान् प्रश्न का उत्तर दे रहे हैं। इनकी घोषणा यह है—"यदि अपने जीवन को सार्थक करना चाहते हो तो अपने घरों से निकल कर संसार के प्रवाह में घुस जाओ; ठोकरों से मत डरो; बाधाओं को देखकर मत घबराओ; मुसीबतो का सामना करो। स्मरण रखो, इसी से तुम्हें जीवन का सच्चा सुख मिल सकता है।"

अपने घर के किसी सड़े कोने में पड़े रहने वाले कूप-मण्डूक जीवन

की सार्थकता क्या समझ सकते हैं ! संसार की मुसीबतों से डरने वालों के लिए जीवन नरकसम है। वे किसी के साथ मिलकर बैठ नही सकते। ईर्ष्या-द्वेष उनको घेरे रहते है। सुन्दर महल उनको काट खाने को दौड़ता है। अपने ही मित्र उनको शत्रु बोध होते हैं और शत्रु मित्र जान पड़ते है। जीवन के संग्राम में विजय प्राप्त किए बिना मनुष्य के सद्गुणो का विकास नहीं हो सकता। महात्मा जार्ज वाशिङ्गटन की आज संसार कभी भी पूजा न करता, यदि वे संग्राम में खम ठोक कर खड़े न होते। राज-भवन में सोने वाला कुमार शाक्य संसार के महान् पुरुषों में अग्रगण्य क्यों है ? इसलिए कि उसने सर्व प्रकार के कष्टों पर विजय प्राप्त की थी। यदि वह राजप्रासादों का कीड़ा बना रहता, ठोकरें न खाता, भोग-विलास में जीवन व्यतीत कर देता, तो दुनिया उसका नाम तक भी न सुनती।

उठो, जीवन के रहस्य को समझो। जीवन खाने पीने के लिए नहीं है, जीवन भोग विलास के लिए नहीं है, जीवन इन्द्रिय-सुख के लिए नहीं है, जीवन शास्त्रार्थ करने के लिए नहीं है। अपने जीवन के उद्देश्य को समझो। देखो, अवसर हाथ से निकला जा रहा है। जीवन-संग्राम में डट जाओ। परमात्मा के सिपाही बनो। किसी से भय मत करो। निर्भय होकर बाधाओं, कष्टों, मुसीबतो का सामना करो। स्मरण रखिए, अग्नि में तपाये बिना स्वर्ण शुद्ध नही होता। फिर जीवन की अग्नि से क्यो भय करते हो ? यह तुम्हारी निर्बलताओं को जला देगी; तुम्हारी अप्राकृतिक बुराइयों को दूर कर देगी; तुम में धैर्य्य, सन्तोष, क्षमा, दया, शम के दैविक गुणो का विकास करेगी। तुम कुन्दन हो जाओगे; दैवी तेज आ जायेगा; कठिन से कठिन कार्य तुमको आसान मालूम होगा।

आज मर्य्यादापुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी की प्रशंसा क्यो करते हो ? केवल इसलिए कि उन्होंने कर्तव्य-पालन के लिए कष्ट सहन किये थे। राजर्षि भीष्म के गुण बार-बार क्यों बखान करते हो ? इसलिए कि

उन्होंने अपने व्रत के पालनार्थ अति कठिन ब्रह्मचर्य व्रत का सेवन किया। सती-साध्वी सीता आदर्श महिला क्यों होगई ? महलों में रहने से नही, बल्कि इसलिए कि उसने अपने जीवन के संग्राम में विजय प्राप्त कर अक्षय कीर्ति लाभ की थी। जीवन कर्मक्षेत्र है, इसका रहस्य कर्मवीर ही जान सकते हैं। आलसी, निकम्मे, प्रारब्ध के दास, खुशामदी और कायर कीड़ों की भांति पैदा होते है और उन्हीं की तरह मर जाते हैं। उनका जीवन जीवन नहीं है।

जो दशा एक व्यक्ति की है वही जातियों की हुआ करती है। जाति मनुष्यों का एक समुदाय है। जैसी दशा मनुष्यों की होती है, वैसी ही दशा उनकी जाति की होती है। भारत आज पैंतीस करोड़ व्यक्तियों का एक समुदाय है। क्या भारत जाति अपने स्वाभाविक जीवन का आनन्द ले रही है ? बिल्कुल नही। भारत में आज कितने है जो जीवन के मर्म को समझते हैं ? करोड़ो है जो नित्यप्रति शालिग्राम की पूजा करते है, पर उन्होंने उस शालिग्राम से कुछ भी शिक्षा ग्रहण नही की। जरा से कष्ट से घबरा जाते है। "आत्मा अमर है",—यह सिद्धान्त उनका वेद-वाक्य है, पर कर्तव्यपालनार्थ यदि जरा भी दुःख पहुँचता है तो वे जान लेकर भागते हैं। वे नकलची है। बड़ो की नकल करते है, पर नकल असल नहीं हो सकती। आग में पड़कर उनका असली स्वरूप प्रगट हो जाता है।

इसलिए यदि अपना तथा जाति का जीवन सार्थक करना चाहते हो तो सच्चे शालिग्राम बनने के लिए तैयार हो जाओ। अपना झूठा भय छोड़कर इसकी सत्यता को धारण करो। ससार के सामने सीधा खडे होना सीखो। बाधाओ से चार-चार आँखे करो। जो दुःख आज तुमको है वे काफूर हो जायेगे। जो जीवन आज भार मालूम देता है, वही आनन्दमय हो जायेगा। दैवी गुणो का आविर्भाव होगा और अनन्त प्रभु की गोद में खेलोगे। बिना जीवन-सग्राम मे विजय प्राप्त किए आप मोक्ष-सुख के अधिकारी नही बन सकते। बस यही जीवन है; यही आनन्द है।

बाधा बाधा करत है, रे मूरख ! नादान।
बाधा का वध बिन किये, क्या पायेगा मान ॥

सातवाँ पुष्प

जीने का मोह

जिस समय हम मानव-समाज में फैले हुए अत्याचारों पर गम्भीर दृष्टि डालते है और अन्य प्राणियों के घोर जीवन-संग्राम की करुणा-जनक कथायें पढते हैं, तब हम आश्चर्य-चकित होकर यह कहने लगते है कि इस दुनिया में इतना अन्याय क्यों है। जो लोग ईश्वर को मानते हैं वे तो किसी न किसी प्रकार झूठे-सच्चे तर्क-वितर्क करके अपनी तसल्ली कर लेते हैं और लोक-परलोक के असंख्य जन्मों का तानाबाना बुन कर जगत् में फैले हुए दुःख-सुख की मीमांसा करके अपना मन सन्तुष्ट कर लेते है; परन्तु जो ईश्वर को नही मानते, जो वस्तुस्थिति का सीधा, सच्चा और सरल उत्तर चाहते है, वे अंधेरे में टटोलते रह जाते है और उनके मुह से अनायास यही निकलता है—"यह संसार सक्षम प्राणियों के लिए है। इसमें धूर्त्त, बेईमान और चालाक आदमियों के लिए ही स्थान है। ईश्वर पर विश्वास करना केवल ढकोसला है।"

हमारी अधिकांश मूर्ख जनता भाग्य के गढ़े में गिरकर अत्याचारों के दुःखों को भूलने का प्रयत्न करती है, लेकिन किसी की समझ में कोई बात नही आती और कवि भटक-भटक कर कहने लगता है—

पड़े भटकते हैं लाखों दाना,
करोड़ों पंडित हज़ारों स्याने;
जब आख़िरकार खूब देखा,
खुदा की बातें खुदा ही जाने।

पर वह खुदा क्या वस्तु है, कवि स्वयं भी इस उलझन से नही

निकल सका। गोलमोल बात कहकर रह गया। इस प्रकार न जाने कब से संसार में फैले हुए घोर पापों के कारणों को समझने का प्रयत्न मनुष्य ने किया और कैसे-कैसे महात्मा, मसीहा और पैगम्बर, ऋषि-महर्षि और साधु-सन्त अपनी अपनी फिलासफी लेकर आये और चले गये, लेकिन समस्या अभी तक ज्यों-की-त्यों बनी हुई है।

असल में बात यह है कि जीवन के आदर्श को स्पष्टरूप से समझने का प्रयत्न नही किया गया। मनुष्य और पशु में कहाँ भेद प्रारम्भ होता है, इसकी मीमांसा नहीं की गई। धर्म और अधर्म के पचड़ों में फँस कर असली प्रश्न से लोग दूर हट गये और दया तथा अहिंसा के घने जङ्गल में ऐसे फँसे कि असली प्रश्न का रूप ही बदल गया।

यहाँ हम स्पष्ट रूप से इस प्रश्न को उपस्थित करते है। विचारने की सबसे पहली वस्तु है जीवनादर्श। जीवनादर्श ईश्वर-प्राप्ति नही, मोक्ष की लालसा नहीं, स्वर्ग की सैर नहीं, निर्वाण-सुख का लेना नही; बल्कि जीवनादर्श अनन्त ज्ञान की खोज करना है। हमारे सामने जो यह असीम ब्रह्माण्ड है, जिसके विषय में चिन्तन करते हुए माथा चकराने लगता है, उसी के विषय में हमें जानना है। कोई-कोई यह कहते है कि जिसने यह बनाया है वही जान लिया जाय तो बाकी सब आसानी से समझ में आ सकता है, अर्थात् इस ब्रह्माण्ड के रचने वाले ईश्वर को जान लेने से हमें सब वस्तुओं का ज्ञान हो जायेगा। हमारा निवेदन यह है कि आज तक ऐसी एक शक्ति को कोई नहीं जान पाया जिसकी सहायता से वह हमें असख्य तारागणों के विषय मे बतला सके। बेपर की बात उड़ा देना दूसरी बात है। कुछ लोगों ने अपने स्वप्नों के अनुभवो को बतला कर इस बात को सिद्ध करना चाहा है कि उनकी आत्मा उड़कर एक लोक से दूसरे लोक को चली गई, लेकिन उनके अनुभवों की सत्यता का कोई प्रमाण हमे नही मिल सकता। संक्षेप में हमारा कहना यह है कि आज तक किसी भाषा के साहित्य में इस पृथ्वी को छोड़कर अन्य लोको के विषय में प्रामाणिक वृत्तान्त नहीं मिलता। हाँ, गपोड़ो से भरे हुए ग्रन्थ सैकड़ों

मिलते हैं।

अच्छा, तो सबसे पहिली बात हमने यह तय की है कि जीवनादर्श अनन्त ज्ञान की खोज करने में है और प्रत्येक प्राणी को जीने का अधिकार तभी मिल सकता है जब वह इसकी खोज में आगे पग बढ़ाने का प्रयत्न करे। जीने का मोह एक व्याधि है, जिसके कारण पशु और मानव समाज में घोर अत्याचार दिखाई देते हैं। आदर्श को न समझने के कारण सभी पशु अत्याचार को सिर झुकाकर सहन कर लेते हैं। इसी प्रकार मानव-संमाज में यह जीने का मोह ही है जो सारे पापो की खान है। हम दूसरो की गुलामी इसीलिए सहन कर रहे हैं क्योकि हम मे जीने का मोह सिर से पैर तक भरा हुआ है। हम अन्धे हैं, लंगड़े-लूले हैं, व्याधि से ग्रस्त हे, और पागलखाने में बन्द है, तो भी हममें जीने का मोह विद्यमान है। जमीन पर रेंग कर चलते हुए हम दूसरो से पैसे की भीख माँगते हैं, ताकि हमारा पापी पेट भरे और हम जीते रहें। व्याधि से हम पीड़ित हैं, तो भी जीने का मोह हमसे चिपटा हुआ है। हम रोज झिड़कियाँ सहते है, भयंकर अपमानजनक भर्त्सना सुनते है और अपने सामने अपने स्त्री-बच्चो पर अत्याचार होते हुए देखते है, लेकिन तिस पर भी हम हाथ नही उठाते, क्योकि हममें जीने का मोह विद्यमान हे। पीरो; पैगम्बरों और धर्मोपदेशको ने हमें यह बतलाया है कि अपाहिजों और मिस्कीनों को खिलाना चाहिए, क्योकि इसमें बड़ा पुण्य है। पर हम इसे महापाप समझते है, क्योकि यह तरीका केवल उनके जीवन के दुःखों को लम्बा करने का है। हाँ, यदि हम किसी कला, संगीत अथवा शिक्षा के द्वारा उन्हें जीवनादर्श की ओर ले जा सकते है तो बेशक उन्हें जीने का अधिकार मिल सकता है। सिद्धान्त यह है कि या तो हम स्वयं अनन्त ज्ञान की खोज करने वाले यात्री बने अथवा उन यात्रियों के इस अन्वेषण में साधन-स्वरूप हो। जीना केवल जीने के लिए नितान्त अनुचित है।

उस अनन्त ज्ञान की खोज करने वाले यात्री के पास कैसे साधन होने

चाहिएं ? यह बात ध्रुव सत्य है कि 'शरीरमाद्य खलु धर्मसाधनम्', अर्थात् सबसे पहले आवश्यक साधन जीवन-यात्रा के लिए शरीर है। शरीर अत्यन्त नीरोग, बलिष्ठ और फुर्तीला होना चाहिए। उसमें सोचने का माद्दा भरपूर हो। जिनके पास शरीर-रूपी साधन है वही इस यात्रा पर चल सकते है। अतएव वे सब सिद्धान्त, सभी दार्शनिक विचार और महा-पुरुषो द्वारा कहे हुए सभी उपदेश रद्दी की टोकरी में फेंकने लायक है जो शरीर को घृणा की दृष्टि से देखना सिखाते है। जो फिलासफी शरीर की अवहेलना सिखलाती है और उसे गन्दा, मिट्टी और अनित्य कहकर उसका निरादर करना सिखाती है, वह फ़िलासफ़ी किसी प्रकार भी मानव-समाज के लिए हितकर नही है। संसार में दो ही वंशो के लोग ऐसे हुए है जिन्होने शरीर की महत्ता को भली प्रकार समझा था— एक तो प्राचीनकाल के आर्य लोग और दूसरे यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक। आर्यों ने जीवन के सौन्दर्य की उपासना की थी और वे अपने देवी-देवताओ से सुख-भोग के पदार्थ तथा अच्छी बुद्धि माँगा करते थे। उनमे अपना विशाल राष्ट्र बनाने की उत्कण्ठा थी और वे जीवन के आनन्द को भोगना पाप नही समझते थे। जीवन की चार अवस्थाए कर उन्होने अपनी गम्भीर बुद्धिमत्ता का परिचय दिया और सभी प्रकार की समस्याओ का हल सोचने का ार खोल दिया। यूनानी लोग भी जीवन के आदर्श को समझते थे। वे सौन्दर्य के पुजारी थे। ऊचे दर्जे की व्यायामशालाओ का उन्होने आविष्कार किया था और शरीर के पूर्ण विकास के साधन उन्होने हृदयगम कर लिए थे। शिक्षा किस प्रकार की होनी चाहिए, यह बात वे भली प्रकार जानते थे। सब प्रकार की कलायें मानव-मस्तिष्क के लिए कितनी आवश्यक है, इससे वे खूब परिचित थे। जीवन का अत्यन्त उदार आदर्श रखकर उन्होंने अनन्त ज्ञान की खोज करने का मार्ग ढूढ निकाला था। इसी कारण अपने काल में उनकी उन्नति सर्वतोमुखी हुई। आर्य लोग भी अनन्त ज्ञान की तलाश में तल्लीन होगये थे, परन्तु उन्होंने अध्यात्ममार्ग पकड़ा और उसी के द्वारा ब्रह्माण्ड

के गूढ़ तत्वों के समझने में यत्नशील हुए। इस प्रकार इस पृथ्वी पर दो धारायें अनन्त ज्ञान की खोज के लिए बहीं। यूनान से निकली हुई धारा योरुप की शस्यदा भूमि में पहुँची और वहाँ उसने अद्‌भुत चमत्कार कर दिखलाया। चार-पाँच सौ वर्षों के अन्दर ही उस धारा के विज्ञान-सलिल ने योरुप के मस्तिष्क को स्वतन्त्र कर दिया और वहाँ प्रकृति के इस अद्‌भुत खज़ाने के रत्नों की खोज करने वाले सैकडों यात्री कार्यक्षेत्र में निकल पड़े। यह सच है कि झूठी राष्ट्रीयता ने उनके अन्वेषणों का नाजायज़ फायदा उठाकर संसार में दुःखद सामग्री भी उत्पन्न कर दी है, परन्तु यह बात भी निर्विवाद है कि वहाँ के यात्री आज पचभूतों को वश में करके नित्य नये आश्चर्यजनक आविष्कार मानव-समाज के सामने रख रहे हैं।

जो धारा प्राचीन काल के आर्यों के मस्तिष्क से निकली वह आगे चलकर सूखने लगी, क्योंकि उसमें शरीर का दुरुपयोग तथा उसका अनादर करने वाले सिद्धान्त मिल गये। निस्सन्देह बौद्धकाल में मस्तिष्क को स्वतन्त्र करने की भारी चेष्टा की गई, परन्तु जीवन के आनन्द का पूर्ण दर्शन बौद्ध फिलासफी मे मौज़ूद न था। अपने एकांगीपन के कारण बोधिवृक्ष के मूल से निकली हुई वह धारा भी अत्यन्त गँदली हो गई और उसमें अध.पतन के सभी सामान मिल गये। परिणामस्वरूप यूनान की वैज्ञानिक धारा के सामने आज वह हाथ जोडे हुए भिखारिन बनकर खड़ी है और अपनी सड़ान को दूर करने के लिए विज्ञान के ताज़ा जल की भिक्षा माँग रही है, ताकि उसका कूड़ा-कचरा साफ हो जाये और वह जीवनादर्श की ओर चल सके।

जीने का अधिकार किसको है ? उसको नही जिसमे जीवन का मोह है। जीने के मोह के कारण ही प्राचीन आर्यों के इन वंशजो ने शताब्दियो तक गुलामी के डडे सहे हैं, अत्याचार और अपमान सहे है, क्योंकि जीवन का मोह एक भयङ्कर व्याधि है, जिससे निकले बिना मानव-स्वरूप के दर्शन नहीं हो सकते। पशु और मनुष्य में धर्म और

अधर्म के कारण भेद नही; भेद केवल वहीं प्रारम्भ होता है, जहाँ मनुष्य जीने के मोह को छोड़कर जीवनादर्श की ओर मुँह करता है। संसार के जितने स्त्री-पुरुष जीवन के मोह में फँसे हुए कालयापन कर रहे हैं वे सब पशुओं की गणना में हैं। उनमें और पशुओं में रत्ती भर भेद नहीं है। जिस समय कोई स्त्री और पुरुष जीने के मोह की निद्रा को भंग कर चैतन्य होकर आँखें खोलता है तब उसका स्वरूप बदल जाता है, जगत् के सभी पदार्थ उसके लिए नव सन्देश देने वाले हो जाते हैं और वह आह्लाद से भर जाता है। तब वह देखता है कि सचमुच यह जगत् स्वर्ग है और इसमें अन्याय केवल तभी तक है जब तक जीने का मोह स्त्री-पुरुषो में विद्यमान है। जीने के मोह में डूबे हुए, अत्याचारियो के पांवो के तले रौंदे जानेवाले इन स्त्री-पुरुषो को जीने का क्या अधिकार है ?

हाँ, जीने का मोह क्यो हममे ओत-प्रोत है ? यह इसीलिए कि हम यह नही जानते कि शरीर भी ऐसा ही परिवर्तनशील है जैसा कि पानी का भाप बनना। जिसको यह ज्ञान नहीं है वह निरा पशु है। प्रत्येक पशु केवल अनन्त ज्ञान की खोज करने वाले यात्री की सहायतार्थ जीता है, और कोई दूसरा लक्ष्य उसके जीने का नही। यदि उत्तरी ध्रुव का रहने वाला कोई अनन्त ज्ञान का यात्री माँस खाकर, पशुओ को मारकर अपनी यात्रा का पथ सुगम करता है, तो इसमें पाप के लिए कहाँ गुजायश है ? हमने जीने के मोह को नई परिभाषा देकर एक गलत सिद्धान्त का प्रचार दुनिया में कर दिया है और वह ग़लत सिद्धांत अहिंसा का है। अहिंसा का यह अर्थ नही है कि मनुष्य मांस न खाये या किसी का वध न करे, बल्कि उसका यह अर्थ है कि क्या उसने वह हिंसा का कार्य निपट स्वार्थ के लिए किया है या मानव-समाज मे नये ज्ञान की वृद्धि करने के लिए उसे साधन बनाया है। जिस समय हम अपने आदर्श को स्पष्ट कर लेंगे और वह अपनी पूर्ण ज्योति में हमारे सामने खड़ा हो जायेगा, बस दूसरे थोथे और लचर विचार धुन्ध की तरह काफूर हो

जायेंगे । हम केवल थोथी बातों में अपना समय नष्ट कर रहे हैं और कल्पना के घोड़े दौड़ा कर जन्म-जन्मान्तरो की कहानियाँ गढ़ रहे हैं। यह जीने का मोह इसीलिए है क्योंकि हमने अनन्त ज्ञान की खोज का पथ छोड़ दिया है, ज्ञान की पिपासा हममेसे निकल गई है, प्रभु के ब्रह्माण्ड की ओर कभी हम देखते नही—देखते है केवल पेट को और उस पेट से निकले हुए अपने बच्चों को। सबसे अधिक जीने का मोह आज हिन्दुओ में ही है—वे हिन्दू जो अध्यात्मवाद की डींग हांकते है पर यह नहीं देखते कि उनका वह स्रोत प्रायः सूख-सा गया है। जिनमें जीने का थोड़ा सा भी मोह साधारण आदर्श के लिए दूर हो जाता है, वे भी ऐसे काम कर दिखलाते है कि दर्शक चकित रह जाते है। पर जो अनन्त ज्ञान की खोज करने के लिए उद्यत हो, जो निःस्वार्थ भाव से ज्ञान की वृद्धि करने पर तुले हुए हो और जो उसी में आनन्द मानते हो, ऐसे अलौकिक पुरुष जीने का मोह त्यागकर ससार के हजारों नर-नारियो के पथ-प्रदर्शक बनते है।

अब यहाँ यह प्रश्न उठता है कि जीने का मोह कैसे दूर किया जाय। उत्तर मे निवेदन यह है कि यह कार्य साम्प्रदायिकता को नष्ट किये बिना नही हो सकता । साम्प्रदायिकता के विरुद्ध घोर आन्दोलन होना चाहिए और समाज को भेद-भाव से भरी हुई धर्मान्धता से निकालना चाहिए । जब मस्तिष्क दासता से मुक्त हो जाता है तब उसमें नीरोग विचार भरे जा सकते है। यूनानियो के दार्शनिक विचारों ने सबसे बडा पुण्य का कार्य यही किया कि योरुपवालो को धर्मान्धता के जाल से निकल दिया और उनमे विचार-स्वातन्त्र्य के बीजवपन कर दिये। प्राचीनकाल के आर्य लोग भी मेधा अर्थात् बुद्धि की भीख अपने देवी-देवताओ से माँगा करते थे, क्योकि मस्तिष्क की गुलामी सबसे बड़ी गुलामी है; उससे मुक्त हुए बिना कोई नया विचार मन में आ ही नही सकता। प्रचलित धर्म-अधर्म के विचार, आचार-अनाचार के नियम और प्रमाण-वाद के सिद्धान्त तभी छलनी में छाने जा सकते हैं, जब हम मिथ्या

विश्वासों से निकल जायँ । अतएव सबसे पहले हमारा काम यह है कि हम साम्प्रदायिकता की ईंट से ईंट बजा दें । जब जनसाधारण इन कैदखानों से निकलकर एक दूसरे से मिलेंगे तभी उनमें नये कानून बनाने और नये आदर्श कायम करने की योग्यता आ सकेगी ।



पाँच क्लेशों का वर्णन करते हुए हमारे आचार्यों ने अभिनिवेश अर्थात् जीने के मोह को महान् क्लेश माना है । इसी के कारण बड़े-बड़े विद्वान् मृत्यु के समय विचलित हो जाते हैं और अपने पांडित्य को जनसाधारण की तरह भूल कर जीने की ममता में फंस जाते हैं । ऋषि-मुनियों ने इसी कारण इसके त्याग को बड़ा ऊँचा दर्जा दिया है, क्योंकि इस प्रकार की सिद्धियाँ जीने का मोह त्यागने से ही मनुष्य को प्राप्त हो सकती हैं ।

—स्वामी सत्यदेव

आठवाँ पुष्प

जीने का अधिकार किसको ?

संयुक्त राज्य अमरीका की साऊथ डकोटा रियासत मे मै एक किसान के खेत पर काम करने के लिए गया। मैने कभी भी इस प्रकार का कार्य पहले नही किया था। इसलिए जब मजदूरो के कपड़े पहन कर मै काम करने के लिए तैयार हुआ तो खेत के मालिक ने बड़े प्रेम से मुझे समझा कर कहा—"इस खेत मे, जहाँ आप काम करेगे, बहुत से निकम्मे पौधे जम गए है; वे मकई की खेती को नुकसान पहुचावेगे, अतएव आप कृपा कर सब से पहले इन्हे उखाड़ कर फेक दीजिए, जिससे वे जमने न पावें।"

मै ऐसे पौधों को नही पहचानता था। इसलिए बड़ी नम्रता से बोला—"महाशय, आप एक बार खेत मे चल कर मुझे उन पौधो के दर्शन करा दें और कृपया यह भी समझा दे कि वे मक्का की खेती को नुकसान कैसे पहुँचाते है ?"

खेत का मालिक मुझे साथ लेकर खेत की ओर चला और वहाँ पहुँच कर उसने कुदाली से उन पौधो को उखाड कर बतलाया और मुझे समझाने लगा—

"देख नवयुवक, ये पौधे इस खाद को खा जायँगे जो मै मक्का की खेती के लिए इस भूमि में डालूँगा। वे केवल खाद ही नही खावेगे बल्कि मक्का की बढती को रोक देगे और उसके भोजन को स्वयं डा जावेगे। ऐसी अवस्था में इनका उखाड देना ही कल्याणकारी है, ताकि मेरी खेती खूब फूले और फले।"

मै काम मे लग गया। मेरा मस्तिष्क भी गहरे विचार में डूब गया।

मै खेत मे काम तो कर रहा था लेकिन मेरे दिमाग में विचारों की बाढ़ आ गई थी। मै सोचने लगा कि ससार में कितने मनुष्य और स्त्री इन निकम्मे पौधो की तरह जिन्दगी बसर कर रहे है। वे दूसरों का भोजन चट कर जाते है और समाज को निर्बल बनाते है। लाखो भिखमगे, अन्धे, लगड़े-लूले और अपाहिज है, जिनसे रत्तीभर भी समाज का कोई काम नहीं होता। हजारो हट्टे-कट्टे मुस्टण्डे फकीर, साधु, वैरागी आदि है जो न तो समाज की कोई सेवा करते है और न अपने हिस्से का अन्न ही पैदा करते है। वे धोखा-धड़ी मे पेट पालते है और इस प्रकार दूसरे ईमानदार, परिश्रमी मजदूरो का भाग खा जाते है। सैकडो हजारों भङ्गड़ी, चरसी, गंजेडी और शराबी है जिनका चौबीस घण्टे यही धन्धा है कि वे राष्ट्र के धन को नशों में फूँक दे। इसी प्रकार व्यभिचार के मद मे चूर हजारो व्यक्ति ऐसे है जो बीमार निर्बल सन्तान उत्पन्न कर समाज का कचरा बढाते है। हजारो ऐसे स्त्री-पुरुष भी है जो ऐसी व्याधियो से ग्रस्त है जिनका इलाज कभी नही हो सकता और जो उन बीमारियों के कीटाणुओ को पीढ़ी दर पीढी अपनी सन्तान को दे जाते है। इस भाँति संसार के इस विशाल क्षेत्र मे जो सुन्दर पदार्थ प्रभु ने हमे भोगने के लिए दिये है उनका पचास फी सदी भाग बिलकुल निकम्मे लोगों के लिए खर्च होता है और बाकी पचास फी सदी ही उनके हिस्से में आता है जिनके बूते पर समाज आगे बढता है और वश की वृद्धि होती है।

क्या हमने कभी गम्भीरता से इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर विचार किया है ? सैकडो प्रकार के आचार्य, सन्त और धर्माचार्य भिन्न-भिन्न देशो मे पैदा हुए और उन्होंने थोथे सिद्धान्तो का प्रचार कर समाज के इन निकम्मे पौधों की रक्षा करने का उपदेश जनता को दिया। कभी किसी ने भी उस साधारण किसान से इस विषय में शिक्षा ग्रहण न की। दूसरे जन्मों के सब्ज़ बाग दिखला कर और स्वर्ग-नरक का मायाजाल रचकर उन्होने जनता को ऐसा बना दिया कि आज तक ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्न पर समाज-सुधारकों ने अपनी सारी शक्ति लगा कर कुछ परिणाम उत्पन्न

करने की कोशिश नहीं की। संसार मे रोटी का हाहाकार मचा हुआ है और सदा मचा रहेगा। आबादी की बढती होने से शक्तिशाली राष्ट्र दूसरे निर्बल देशो पर बलपूर्वक कब्ज़ा करने का यत्न करते रहेंगे, ताकि उनकी आबादी को बसने का स्थान मिले। इसी जद्दोजहद मे वे समाज के बलिष्ठ सैनिको को युद्धो में जुझा कर उन्हें तबाह कर देते है। और उनकी विजय का भोग करने वाले कौन होते है ? अधिकतर वही निकम्मे पौधे जिनका धन्धा केवल समाज के परिश्रमी लोगो का भोजन चट करना है। यदि परस्पर युद्ध करने के बजाय, अपने बलिष्ठ सैनिको की हत्या करने के स्थान पर, प्रत्येक वर्ष निकम्मे पौधों का नाश किया जाय तो ससार में कभी रोटी का हाहाकार न मचे और इस प्रकार आगे बढने वाले वशो को उन्नति करने का अवसर मिले। जो काम एक साधारण किसान कर सकता है उसे बड़े-बडे धर्माचार्य, विद्वान् और राजनीतिज्ञ नही कर सके। इसमें क्या रहस्य है ? इसके अन्दर यही बात काम कर रही है कि मनुष्य-समाज के उन निकम्मे पौधो को हम स्त्री और पुरुष समझ कर उनकी रक्षा करते है और दया-दान का ढकोसला रचकर हम इनकी संख्या-वृद्धि करते है। अन्ध-विश्वास ने हमारी बुद्धि पर इतना पर्दा डाल दिया है कि हम ऐसी स्पष्ट बात को भी नही देख सकते।

ज़रा सोचिये, अच्छी नस्ल का घोड़ा पैदा करने के लिए हम कितना प्रयत्न करते है। हमें अच्छे गाय और बैल चाहिये, इसके लिए कितनी प्रयोगशालाये बनती है। लेकिन अफ़सोस ! मानव-समाज में अच्छी नस्ल के स्त्री-पुरुष पैदा करने का कोई यत्न नही किया जाता। यहाँ आकर हम मिथ्याविश्वासो के जङ्गल में भटकने लगते है। भला सोचिये तो सही कि निर्बल, व्याधिग्रस्त और वीर्यहीन स्त्री-पुरुषो को विवाह कर निकम्मे बच्चे पैदा करने का क्या अधिकार है ? हमारे इर्द-गिर्द चारों तरफ ऐसे निकम्मे झाड़-झंखाड़ खड़े है और नये उगते चले जा रहे हैं जो दूसरो का भोजन हज्म कर समाज को बदले में लाभ देने के बजाय

भारी हानि पहुँचाते हैं। क्या इन्हें जीने का अधिकार है ? क्यों वे पृथ्वी के भू-भागों को घेर कर मुफ्त की गन्दगी बढ़ावें ? जिस प्रकार किसान अपनी खेती की रक्षा करता है, उसे हानिकारक कीडो से बचाता है, उसे निकम्मे पौधों से दूर रखता है और सदा बड़ी सावधानी से अधिक-से-अधिक बलिष्ठ अनाज पैदा करने का यत्न करता है, उसी प्रकार हमें भी करना चाहिये; तभी मनुष्य-समाज उन्नति के पथ पर चल सकेगा, अन्यथा नहीं।

आप पूछेंगे कि ऐसे निकम्मे, भंगडी-चरसी-गंजेडी, व्यभिचारी-बदमाश, नपुसक और व्याधिग्रस्त स्त्री-पुरुषों के साथ क्या करना चाहिए ? मेरी सम्मति में जो सलूक हम निकम्मे पौधों के साथ करते है, वही हमें ऐसे स्त्री-पुरुषों के साथ भी करना चाहिये। तभी वंश बलवान होगा और सुन्दर मस्तिष्क रखने वाले सदस्यो की वृद्धि होगी, जो प्रभु के अनन्त ज्ञान में से अच्छी-अच्छी बातें निकाल सकेंगे। दया और करुणा बडे अच्छे गुण है, परन्तु तभी तक जब तक कि उनका उपयोग नीरोग और बलिष्ठ बीजो के साथ किया जाता है। भारतवर्ष में तो करीब साठ फी सदी सख्या उन स्त्री-पुरुषो की होगी जो भारतमाता पर भाररूप है, जिनके अन्दर से केवल बुराई के कीटाणु निकलते रहते है, जो विवाह कर भारी पाप करते है और रोगी सन्तान की वृद्धि कर भारतीय प्रजा के साथ बडा अत्याचार करते है। ईश्वर ने जो पदार्थ हमें दिए है, वे उन्ही के भोग करने के निमित्त है जो ससार के ज्ञान की वृद्धि करें और अपनी उपयोगिता से समाज को उन्नत बनावें। ऐसे स्त्री और पुरुष जिनसे समाज को हानि ही हानि है, जीने का कोई अधिकार नहीं रखते। वीर स्पार्टन लोगों ने अपनी समृद्धि के दिनो मे ऐसा ही किया था; तभी वे ऊँचे दर्जे के नीरोग और शक्तिशाली स्त्री-पुरुषो को उत्पन्न कर सके थे। वश की वृद्धि और उसकी उन्नति का प्रश्न बडे महत्व का है। जो कपोल-कल्पित धर्मो और झूठे आडम्बरो में फसकर तीर्थों पर मगर पालते है, वृन्दावन में कछुओं को हजारों मन आटा खिलाते है और

हनुमान के नाम पर बन्दरो का सितम सहते है, ऐसे अज्ञानी लोग दया और करुणा इन शब्दो का अर्थ भला क्या समझ सकते है ! वे धन की खातिर दूसरों के मकान नीलाम करा लेंगें; दुधमुंहे बच्चो को उनकी झोंपड़ियो से निकाल कर उन पर कब्ज़ा कर लेंगे; विधवाओं पर भारी जुल्म करेंगे और नारी-जाति के अधिकारो का कभी भी आदर नही करेगे—ऐसे ही लोग दया-धर्म में फस कर पशु-पक्षियों के लिए तो बड़े धर्मात्मा बन जाते है परन्तु समाज के उत्थान के प्रश्न पर कभी विचार नही करते। अतएव हम बड़ी नम्रता से अपने पाठको से पूछते है कि क्या आपने कभी इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर ध्यान दिया है ? यदि नही दिया, तो कृपा कर अब दीजिये। भारतवासियो को तो बहुत शीघ्र इस कूडे-कचरे को साफ करना ही होगा, नही तो उनकी आबादी उन्हें इस पर मजबूर करेगी; यहाँ घरेलू युद्ध हो जायेंगे; दिन-दहाड़े डाके पड़ेंगे और व्याधियाँ अपना टैक्स वसूल करेगी।

संक्षेप मे हमारा निवेदन यह है कि आज संसार के चिन्ताशील विद्वानो को इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर विचार करना ही होगा। वे यु बन्द करना चाहते है, यह बहुत ही अच्छी बात है। युद्धों मे तो समाज का सर्वश्रेष्ठ तरुण दल ही मारा जाता है, निकम्मे पौधे तो मजे में पलते रहते है, लेकिन यदि संसार में शान्ति लाने की इच्छा है, यदि रोटी के प्रश्न का हल भली प्रकार करना है, यदि अनन्त ज्ञान की खोज करने के लिए योग्य स्त्री-पुरुषों को मैदान में खडा करना है और यदि इस ससार को स्वर्ग बनाने की इच्छा है तो आपको वैज्ञानिक ढंग से संसार के इस विशाल क्षेत्र में उगने वाले पौधों की छाँट करनी होगी। जिन भद्दे कानूनो पर आज हम चल रहे हैं उन्हें हटा कर समाज के लिए नये कानून बनाने होगे और जिन बातों को हम आज धर्म समझ रहे है उन्हें मिथ्या विश्वासों के गढ़े में ढकेल देना होगा। यदि हम ऐसा नही करेंगे तो फिर प्रकृति तो करेगी ही, परन्तु उससे मानव-समाज की उन्नति शताब्दियों के लिए रुक जाएगी, जैसा कि पीछे होता आया है। यदि बौद्धकाल के उत्तम गुणो से विभूषित

समाज आगे चलकर झूठी दया और अहिंसा के मोह में न फँस जाता और व्यर्थ के भिक्षुवाद की महत्ता को न बढाता—केवल शक्तिशाली और योग्य स्त्री-पुरुषों को ही समाज मे स्थान देता, तो कभी भी उसके लाखों भिक्षु मुसलमानो द्वारा गाजर-मूली की तरह न काट दिये जाते और न बसे हुए नगर उजाड़ दिये जाते। प्रकृति के नियम अटल है। वे किसी का लिहाज नही करते। शताब्दियों का किया हुआ त्यागी बौद्ध भिक्षुओ का काम इसीलिए मिट्टी में मिल गया कि उन्होने अपने विहारों में निकम्मे पौधों की अत्यन्त वृद्धि कर ली। यही दशा सदा से होती चली आई है। इस कारण मै मानव-समाज को चेतावनी देकर यह कहता हूँ कि आपको अभी से अपने खेत में फैले हुए निकम्मे पौधो को ठिकाने लगाने का कुछ प्रबन्ध सोचना चाहिये, ताकि यह रोटी का प्रश्न हल हो जाय और समाज अपने आदर्श की ओर चल सके।

Why are we here for ? It is the eternal question facing us from millions of years. Are we here to eat, drink and be merry ? Sages reply in negative. They declare that we must contribute our quota in the treasure of knowledge and wisdom Then and then alone our right to life is justified.

—*Swami Satya Dev*

नवाँ पुष्प

उत्थान-पथ पर (१)

ईश्वर ने अपनी इस अद्भुत सृष्टि मे नाना प्रकार के पदार्थ रचे है। हम किसी ओर भी दृष्टिपात करें, हमारी बुद्धि विस्मय से भरे बिना नहीं रह सकती। यदि हम किसी नदी तट पर चले जाते है तो हम वहाँ अपने इर्द-गिर्द भाँति-भाँति के नैसर्गिक पदार्थों को पाते है जिनके विषय में हम कुछ भी नहीं जानते। हजारो मील लम्बा अगाध जल से भरा हुआ समुद्र अपने गर्भ में कैसे-कैसे आश्चर्यजनक पदार्थ रखता है जिनके विषय में हमारा ज्ञान शून्य के बराबर है। इसी प्रकार रात्रि के समय निर्मल आकाश में चमकते हुए असख्य तारागण के विषय मे भी हम कुछ नही जानते। रोज रात के समय दूध-धारा नभ को सुशोभित करती हुई बहती चली जाती है और हमें उसके रहस्य का कुछ भी पता नही चलता।

ऐसा क्यों है ? सत्य बात तो यह है कि मनुष्य ने अभी तक अपने मस्तिष्क का यथायोग्य उपयोग करना नहीं सीखा। वह अपनी आंख, नाक, कान आदि साधनों का भली प्रकार उपयोग नही करता। हजारो वर्षो से वह केवल सिर झुकाकर प्राकृतिक चमत्कारो को नमस्कार करता चला आया है। उसने निरीक्षण का कठिन मार्ग छोड़कर अन्ध-विश्वास के आसान मार्ग को पकड़ना उचित समझा है। कुछ पुस्तको को ज्ञान का आगार समझकर वह उन्ही के मन्त्र, सिपारे और उक्तियाँ रटने मे ज्ञान की चरम सीमा समझ बैठा है। ईश्वर के विषय में स्वतन्त्र विचार न कर वह दूसरों के बतलाए हुए श्लोको को बराबर हृदयङ्गम करने में ही अपना कल्याण माने हुए है। जीवन-सम्बन्धी झगड़े उसने इतने बढा लिए है कि उसे दूसरी किसी बात की फुरसत ही नही रह गई है। इसीलिए आज

लाखों वर्ष बीत जाने पर भी हम यह नही जानते कि चन्द्रलोक की बनावट कैसी है और सूर्य मे कौन-सी शक्ति काम कर रही है। इन पदार्थों को देवता समझकर हम अब तक इनकी पूजा करते रहे और कभी भी जान पर खेलकर अनन्त ज्ञान की खोज करने का उद्योग नही किया। हमारे पूर्वज जिन ग्रन्थों को लिख गये हे, जिन दर्शनों को रच गये है और जिन स्मृतियों को बना गये हे, आज सैकड़ों वर्ष बीत जाने पर भी हम उन्हीं को बराबर तोते की तरह रटते चले जा रहे है। हमें कोई अधिकार नहीं कि हम उनके विरुद्ध अपनी सम्मति भी दे सकें। नई स्मृति और नया दर्शन लिखना तो दूर रहा। यदि कोई विद्वान् बडी हिम्मत करके अपने स्वतन्त्र निरीक्षण और अध्ययन द्वारा नया दर्शन अथवा स्मृति लिख डाले, तो हम उसकी निन्दा कर उसके ग्रन्थ को रद्दी की टोकरी में फेंक देते है। अन्ध-विश्वास ने हमें आज कैसा पंगु बना रखा है! जाति का मस्तिष्क सिवाय पिष्टपेषण के दूसरे काम का रह ही नही गया। तो अब करना क्या चाहिए?

आइये, अब हम अनन्त ज्ञान की खोज करने वाले यात्री बनें और उन्नति-पथ पर आरूढ हो। हमे किसी इलहामी किताब से कोई मतलब नही और न किसी पीर-पैगम्बर से ही कोई काम है। हमे अपने निजी अनुभव द्वारा ज्ञान-संचय करना चाहिए; इस विशाल पथ पर आँख-कान खोल कर, चैतन्य होकर चलना चाहिए और अपने निरीक्षण द्वारा अनुभव प्राप्त करना चाहिए। दूसरो के अनुभवो से लाभ अवश्य उठाइये, परन्तु उन्हे वेदवाक्य समझकर अपनी अक्ल मे ताला न लगाइये। आज से स बात का दृढ व्रत कीजिए कि आप सदा अपने फुरसत के समय को ज्ञान-सचय में खर्च करेगे। इर्द-गिर्द की पहाड़ियो, नदी-नालो और वन-उपवनो मे विचरिये, लेकिन आँख-कान खोल कर और अपनी नोट-बुक, कैमरा तथा पेन्सिल के साथ। जो चीज आपके सामने आये वह बचकर न निकल जाये। आप उसका निरीक्षण भली प्रकार कीजिए। यदि उसमे कोई चुभती हुई अजीब बात दिखाई पड़े, कुछ नवीनता हो तो फौरन उसे

अपनी नोट-बुक मे कैद कीजिए। कोई वृक्ष आपके सामने से ऐसा न गुज़र जाये जिसे आप दुबारा मुलाकात के समय पहचान न सके। उसके पत्तो, फूलों और फलों की जानकारी होनी आवश्यक है। कोई पक्षी किसी टहनी पर बैठा हुआ चहकता हो तो उसका नाम-धाम जानिये और अपने कैमरे मे उसका घोसला बनाइये। इसी प्रकार उद्यान के पुष्पो से परिचय प्राप्त कीजिये। उनके नाम, गुण और योवनकाल के विषय में आपको ज्ञान होना चाहिए। नदी के किनारे एकान्त मे बैठकर अपनी इस दुनिया के निवासियों के विषय में विचार कीजिए जो आपको राग-द्वेष से छुड़ाकर अनन्त ज्ञान की उपलब्धि में सहायता देगे।

निःसन्देह निरीक्षण ही ज्ञान-संचय करने का साधन है। ठीक निरीक्षण के न होने से आज कितना अज्ञान, कितनी गलतफहमियाँ और कितने भ्रम हम मे फैले हुए है! वृक्षो के तने हमें भूत की तरह डरावने लगते है, भूचाल हमें भयभीत करता है और हम दूसरो की बतलाई हुई मिथ्या बातों पर विश्वास कर उनके कारणो के समझने का प्रयत्न नही करते। प्रत्येक देश की अधिकांश प्रजा आजकल केवल विश्वास के आधार पर अपना मज़हब, धर्म अथवा मत स्थिर किए हुए है। अखबारो मे जो कुछ छपता है उसे लोग तत्काल निगल जाते है और कभी भी अपनी बुद्धि लगाकर लिखी हुई बातों पर तर्क नही करते। फलस्वरूप प्रजा भेड़ो की तरह अपने स्वार्थी नेताओं के पीछे गढे में गिरती चली जाती है। अच्छे से अच्छे कानून उनका उद्धार नही कर सकते। उनमें स्वतन्त्र सोचने की आदत है ही नही, क्योंकि उन्होने कभी स्वय निरीक्षण करना नही सीखा और न कभी वे मज़हबी बातो पर तर्क ही करते है। प्रारम्भ से ही उन्हे अन्ध-विश्वास की शिक्षा दी जाती है। उनके गुरु, पादरी, मौलवी-मुल्ला, पंडित और धर्मोपदेशक उन्हें आँखे मूँदकर अपने पीछे चलने की तालीम देते है। कितना मिथ्या विश्वास, कितनी भ्रमपूर्ण बातें, कितने नाशकारी रिवाज और कितने थोथे सम्प्रदाय आज दुनियां में मौजूद है, जिनके जाल में फँसे हुए करोड़ो नर-नारी अपना समय और शक्ति, धन और बुद्धि,

व्यर्थ मे ही खो रहे है ! आज उनकी दयनीय दशा को देखकर हमे कितनी व्यथा होती है ! यह सब इसीलिए कि प्रजा को स्वय निरीक्षण करने की योग्यता नहीं कराई जाती । कोई भी सम्प्रदाय क्यो न हो, उसका आचार्य कैसा ही बुद्धिमान् क्यों न घोषित किया जाय, परन्तु जब आप उसके विचारो को जाकर सुनेंगे तो आपको वहाँ अन्धी भावुकता और बेतुके मोजजो (Miracles) के सिवाय कुछ सुनने को नही मिलेगा और उपस्थित श्रोता बडी श्रद्धा से उन असम्भव बातो को निगलते चले जायँगे । प्राचीनता की चट्टान, बाप-दादाओ की पुरानी बाते, मजहब की श्रेष्ठता का अभिमान, शहीदो की कथाये, धर्म-सस्थापको के बलिदानो की बातें, पीर-पैगम्बरो और उनके चेलो की जोशीली कहानियाँ, सम्प्रदाय के रहस्यपूर्ण गपोड़े और उनके द्वारा भक्तजनो को मिलने वाली सुखद शान्ति—इस प्रकार की उल्टी-सीधी कथा-कहानियाँ सुनाकर मूढ स्त्री-पुरुषो को आज अविद्या के अन्धकारपूर्ण गर्त में गिराया जाता है । यह केवल एशिया के देशो मे ही नही बल्कि योरुप और अमेरिका मे भी इसी प्रकार की मूर्खतापूर्ण कपोल-कल्पित बातो द्वारा प्रजा को ठगा जाता है । यह सब इसीलिए है कि हमारी शिक्षा-प्रणाली रट्टू और उपाधियाँ वितरण करने वाली मशीन है । हमें स्वतन्त्र सोचना सिखाया ही नही जाता और जो स्वतन्त्र सोचने का अभ्यासी है उसे अपने से भिन्न जानकर लोग उसे भला-बुरा कहते है । अतएव उन्नति-पथ पर चलने वाले मुसाफिर को प्रमाणवाद, इलहामवाद और पैगम्बरवाद के बन्धनो को काटकर अपने आपको स्वतन्त्र करना होगा और स्वय निरीक्षण करके ज्ञान की उपलब्धि करने की आदत डालनी होगी । जिन बातो को आज बडे-बड़े विद्वान् मानते है, आप उन्हें अपने मस्तिष्क मे धर लीजिए, पर सदा अपनी भावना यही रखिये कि जब कभी भी उन कथनो के विरुद्ध आपको कोई अनुभव मिलेगा तो आप फौरन उस सत्य के ग्रहण करने के लिए तैयार रहेंगे । संसार का सुविख्यात विद्वान् गणितज्ञ आइन्स्टाइन आज अपने स्वतन्त्र निरीक्षण के बल पर ही विद्वज्जगत् के सामने एक नई चीज़

रख सका है और लब्धप्रतिष्ठ सर आइज़क न्यूटन के सिद्धान्तों का खंडन कर सका है । यदि वह भी प्राचीनता का पुजारी होता और पूर्वजों की भिक्षा का भिखारी होता तो आज उसे यह यश कदापि प्राप्त न होता ।

अतएव अनन्त ज्ञान की खोज करनेवाले यात्री से हमारा नम्र निवेदन है कि वह अपने सब प्रकार के मिथ्या विश्वासों को मिटाकर नया जन्म धारण करे और प्रतिज्ञा कर ले कि वह जिज्ञासु बनकर प्रभु के रचे हुए इस उद्यान मे वस्तुओ की स्वतंत्र खोज करेगा और अपने से भिन्न दृष्टि-बिन्दु रखने वाले स्त्री-पुरुष के साथ कभी द्वेष न करेगा; क्योंकि एक ही समय, एक ही चीज़ को कई आदमी भिन्न-भिन्न पहलुओ से देख सकते है और उनमें मतभेद हो सकता है । दूसरे यात्रियों के साथ आप अपने अनुभूत विचारों को मिलाइये, आपस में मुकाबिला कीजिये, तोलिये और मापिये । यह सब कुछ करने का आपको अधिकार है, परन्तु प्रेम और विनय के साथ । ससार का सारा दुःख मिट जाय यदि हम स्वतन्त्र निरीक्षण करने का अधिकार सबको दें और फिर एक दूसरे के साथ सहयोग कर संसार-यात्रा पर चलें । रोटी का प्रश्न जीवन में साधनमात्र है । उसमे सबका साझा है । परन्तु असली चीज अनन्त ज्ञान की खोज है, जो स्वतन्त्र निरीक्षण किये बिना नही हो सकती । किताबों को पढिये, किन्तु उनके कीडे न बनिये । असली किताब हमारी आँखो के सामने प्रकृति माता ने रक्खी है । जरा उसके पन्ने उलटिये तो सही, और देखिये, कैसा दिव्य ज्ञान आपको प्राप्त होता है । फुरसत का समय जंगलों में बिताइये । छुट्टियों के दिनो में पहाडो की सैर कीजिये । अधिक समय न मिले तो रोज दो-तीन घटे इर्द-गिर्द के ग्रामों में जाइये अथवा अपने नगर की सामाजिक समस्याओ का अध्ययन कीजिए । छोटी से छोटी वस्तु से भी कुछ न कुछ सीखा जा सकता है । शहर के बाग़ में प्रभात के समय वृक्षों और पौधों को जाकर देखिये, जब निशा का अन्त होकर भास्कर का उदय होता है । निशा की निस्तब्ध प्रकृति में प्रभात होते ही कैसा जीवन आ जाता है ! यह प्रभात ? आपके जीवन में ऐसे प्रभात का समय कैसे

आवे ? तभी, जब अविद्या की निशा का अन्त हो। परन्तु जो अनन्त ज्ञान की खोज में जागरूक है उसके जीवन मे सदा ही प्रभात है। वह सोता नहीं। गीता के उस श्लोक की तरह जिसमे यह कहा गया है कि जो सब प्राणियो के लिए निशा है, अनन्त ज्ञान की खोज करने वाले के लिए वह प्रभात है और जिन विषैली बातो में फँसे हुए प्राणी अपने आपको जागृत समझते है, यात्री के लिए वह निशावत् है।

निरीक्षण करने का यह अभ्यास बालकपन से ही पड़ना चाहिए। हम आज अपने बच्चों को प्रारम्भ मे ही ऐसी बाते सिखा देते है जिनसे उनकी निरीक्षण करने की इन्द्रिय मारी जाती है। जब आप प्रारम्भ से ही बच्चो को यह सिखला दे कि चन्द्र और सूर्य देवता हैं, अग्नि और पवन देवता है तथा भूचाल पृथ्वी के शेषनाग के फन पर ठहरे हुए होने के कारण होता है, तो आप किस प्रकार आशा कर सकते है कि आपके बच्चो मे निरीक्षण करना आ सकता है ? यदि आप अपनी सन्तान को प्रारम्भ से ही अजील, वेद अथवा कुरान का ईश्वरकृत होना बतलाते है और साथ ही साथ पुराणो की कथाएँ और पैगम्बरों के मोजज़े पढ़ाते है, तो क्या कभी यह सम्भव है कि बडे होने पर आपके बच्चे स्वतन्त्र विचारना सीख सके ? कृपाकर बच्चो के मस्तिष्क को ऐसी बोझल बातों से न लादिये। इन सिद्धान्तो को पण्डितो और मौलवियों के अखाड़े के लिए रहने दीजिए। मुसलमान लोग अपने बच्चो को प्रारम्भ से कुरान पढ़ाकर कितना बडा आघात उनके मस्तिष्क पर करते है ! इसी प्रकार ईसाई धर्म के नशे मे चूर पादरी लोग छोटे-छोटे बच्चो को बाईबल की अनहोनी और बेतुकी बाते पढ़ाकर उनका कितना समय नष्ट करते है ! बच्चे निरीक्षण करने के योग्य नहीं रहते, क्योंकि पहले से ही उनका मस्तिष्क फरज़ी बातो से भर जाता है। जिसे हम धार्मिक शिक्षा कहते है वह असल में अन्धविश्वास की जननी है, जिसके कारण संसार की उन्नति में भयकर बाधाएँ उपस्थित हुई है। बच्चों को वस्तुओ का ज्ञान कराइये, पशु-पक्षी और वनस्पति का परिचय दिलाइये तथा बुद्धि का

स्वतन्त्र उपयोग करना सिखाइये। बच्चे जब बड़े होंगे, वे स्वयं मजहबों का मुकाबला कर उनके गुण-दोषों को परख लेंगे। आपका काम उन्हें पक्के हिन्दू, पक्के मुसलमान और पक्के ईसाई बनाना नहीं, बल्कि अच्छे नागरिक बनाना है। उन्हें इस प्रकार की शिक्षा दीजिए जिससे वे स्वतन्त्र निरीक्षण करना सीखें और भले-बुरे का ज्ञान उन्हें आवे। शिष्टाचार और विनय उन्हें सिखलाइये, सेवा और बलिदान का भाव भरिये, परन्तु भूलकर भी वे जटिल सिद्धान्त जो आज विद्वानों को भी चकित कर रहे हैं उनके मस्तिष्क में न ठूँसिये। अपनी बालक-बालिका को अपने साथ घुमाने के लिए ले जाइये और वहीं रास्ते में, नदी-तट पर, वृक्ष के नीचे अथवा खेत के किनारे उन्हें प्राकृतिक पदार्थों का निरीक्षण कराइये। यहीं से उनकी सच्ची शिक्षा प्रारम्भ होती है। मृत्युपर्यन्त उन्हें बराबर विद्यार्थी रहने की भावना से ओतप्रोत रहना चाहिए, ताकि वे प्रभु के अनन्त ज्ञान में से अमूल्य पदार्थ पा सकें। नित्य नया ज्ञान मिलना चाहिए। एक आदमी बचपन से पाँच वक्त नमाज पढ़ता हुआ अथवा सन्ध्या करता हुआ मृत्यु के समय वैसा ही नमाजी और सन्ध्या करने वाला होकर मरे तो इसमें कोई बड़प्पन नहीं। ऐसे मनुष्य ने अपनी सारी ज़िन्दगी खो दी। धन्य जीवन उन्हीं का है जो समाज को आगे बढ़ाते हैं, ज्ञान का भंडार भरते हैं और प्रकृति के रहस्यों का उद्घाटन कर अनन्त ज्ञान की ओर मनुष्य-समाज को ले जाते हैं। यह महान कार्य स्वतन्त्र निरीक्षण द्वारा ही हो सकता है। ज्ञान की वृद्धि का यही पथ है। जब तक हम प्रचलित शिक्षा-प्रणाली और धार्मिक बातों में पूरी क्रान्ति कर प्रकृति-माता के चरणों में बैठने का अभ्यास नहीं करेंगे, उससे शिक्षा ग्रहण करने की आदत नहीं डालेंगे, तब तक कभी भी हम उन्नति-पथ पर आरूढ़ नहीं हो सकते।

दसवाँ पुष्प

उत्थान-पथ पर (२)

सत्संग

ईश्वर की इस अद्भुत सृष्टि में सबके लिए उत्थान के साधन मौजूद है । आवश्यकता केवल इस बात की है कि हम उन साधनो की तलाश करें और उनकी प्राप्ति पर पूर्ण शक्ति से उत्थान-पथ पर अग्रसर हो। बहुत से लोग यह समझते है कि वे केवल दु.ख उठाने के लिए ही इस ससार मे आये है। उनकी यह धारणा है कि केवल धनवान् ही उन्नति-पथ पर चल सकते है। वे धन को ही जीवन की सफलता का सबसे महान् साधन समझते है। परन्तु यह बात ठीक नही है। ईश्वर सब को आगे बढने के लिए अवसर देता है। अवसर आते है और निकल जाते हैं। जिन मे इच्छाशक्ति है, पुरुषार्थ है, जीवन का आदर्श है और जो मन को एकाग्र कर अपने ध्येय के पीछे पड जाते है, वे बाजी मार ले जाते है। आलस्य मे डूबे हुए, सदा भाग्य के भरोसे पर बैठने वाले और छिद्रान्वेषी कभी आगे नही बढ सकते । अवसर उनके सामने से गुजर जाते है, परन्तु वे उनसे कुछ लाभ नही उठा सकते।

इसलिए सबसे पहले इस बात की बडी आवश्यकता है कि हम अपने आपको स्वर्ण-अवसर पकड़ने के योग्य बनावे। हम ऐसा वातावरण उत्पन्न करे जिसमे अवसर हाथ से न निकल जावे । हमारा हृदय प्रकाश को ग्रहण करने के अनुकूल बने और हम अपने इर्द-गिर्द की वस्तुओ का यथार्थ उपयोग कर सकें। इसके लिए हमे सत्संग करना चाहिए। यदि हमारे नगर, ग्राम अथवा कस्बे मे कोई महापुरुष रहता है तो हम नित्य-प्रति आध घटे के लिए उसके पास जायँ और उसके वचनामृत का पान

करें । यदि ऐसा मौका न मिल सके तो हम किसी महापुरुष के जीवन-चरित को ही अपने स्वाध्याय की वस्तु बनायें । दो-चार पन्ने प्रातःकाल अथवा सोने से पहले उस जीवनी मे से जरूर पढे और जो बाते उत्थान की हमे मिले उन्हे अपनी नोट-बुक मे लिख ले । इससे हमारा मस्तिष्क उत्थान-पथ के लिए तैयार हो सकेगा और हम अपनी कठिनाइयो को जीतने के ढंग सीख सकेगे ।

कोई भी महापुरुष आपको शिक्षा दे सकता है—चाहे वह अपने देश का हो अथवा विदेश का । महापुरुष किसी जातिविशेष की सम्पत्ति नही होते, वे मनुष्यमात्र का उपकार करने के लिए होते है । संयुक्त-राज्य अमरीका का महापुरुष जार्ज वाशिगटन आपके लिए वैसा ही महान् है जैसा वह किसी अमरीकन स्त्री या पुरुष के लिए । जिस महापुरुष मे आपकी श्रद्धा है, जिसको आप अपने लिए आदर्श समझते है, जो आपको स्फूर्ति दे सकता है, उसे ही आप अपना पथ-प्रदर्शक बनाइये और नित्यप्रति उसकी जीवनी से लाभ उठाइये ।

यह कभी मत समझिये कि आप महान् नही हो सकते । इस प्रकार का विचार अपने मस्तिष्क मे कभी न आने दे, बल्कि सदा ऐसा ही सोचा करे कि आप भी महापुरुष बन सकते है । अपने मन को ऐसे नीरोग विचारो से भर लीजिए और नित्यप्रति अपने आदर्श महापुरुष के साथ सत्सग कीजिए । हम इसे भी सत्संग ही कहते है । यद्यपि वे महापुरुष आपके सामने मौजूद नही, आप उन्हें चलते-फिरते नही देखते, लेकिन यह बात सच है कि वह जीवनी यदि किसी अच्छे लेखक की लिखी हुई है तो उसका एक-एक शब्द आपके हृदय में नवीन साहस भरेगा और आपको अपना पथ स्पष्ट दिखाई देगा ।

अतएव उत्थान-पथ पर जाने वाले के लिए सत्संग की बड़ी आवश्यकता है । जैसे खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग बदलता है, वैसे ही महापुरुषों का जीवन-पाठ करने से आपका मैल दूर होगा और आप पर उस महान आत्मा का रंग चढने लगेगा । प्रत्येक स्त्री और पुरुष को किसी न

किसी महापुरुष का जीवन-चरित अपने सामने रखना चाहिए और अपना विचार-प्रवाह ऐसा बनाना उचित है कि हम अपने आप को कठिनाइयों पर विजय करने वाला समझे। जब नित्यप्रति सत्संग किया जायगा तो हमारे जीवन की बाधाएँ दूर होने लगेंगी। हमारे सामने अनन्त आकाश है। साधारण व्यक्तियों के लिए उसमें चारो ओर खिडकियाँ लगी हुई है, जिनके दरवाजे बन्द है। जो उच्च विचार नही रखते, जिनमें आत्म-विश्वास नही है और जिनका कोई ध्येय नहीं, उनके लिए सब रास्ते बन्द है और ससार उन्हें अन्धकारमय दिखाई देता है; परन्तु जिनमें जबरदस्त शिक्षा-शक्ति है, जो महापुरुषो के चरणो के निकट बैठते है, अथवा जो उनकी जीवनियाँ पढ़कर उनके साथ सत्सग करते है, सफलता उनके सामने दासी बनकर खडी हो जाती है और वे अपने चारो ओर खुले दरवाजे पाते है। सब उनका स्वागत करते है और बड़ी प्रसन्नता से उनके लिए मार्ग छोड़ देते है।

सक्षेप मे, जो उत्थान-पथ के यात्री बनना चाहते है उन्हे सबसे पहले किसी महापुरुष की जीवनी को अपना आदर्श बनाना चाहिए। बिना आदर्श के कोई सच्चा यात्री नहीं बन सकता। जब आपको अपना ध्येय मालूम है तब आप आसानी से साधन जुटा सकते है। ध्येय के बिना मनुष्य इस संसार मे ऐसा ही है जैसे पतवार के बिना नौका। महापुरुषों के जीवन इस कमी को पूरा कर देते है और पाठक को प्रकाश दिखलाते हैं। सत्सग की बडी महिमा है। महापुरुषो के पास बैठने से शरीर में बिजली दौडने लगती है और उनके उपदेश से सात्विक विचार मन में आते हैं। इसीलिए उत्थान-पथ के यात्री को सबसे पहले किसी महापुरुष के जीवन-चरित का पाठ, उसके साथ सत्संग और उसके दिव्य गुणों पर विचार करना आवश्यक है; तभी वह अपनी जीवन-यात्रा पर चलने के योग्य बनेगा और तभी वह इस ईश्वरीय सृष्टि के सुन्दर पदार्थों को देख सकेगा।

दैनिक वृत्त

कोई भी दुकानदार अपनी दुकान नही चला सकता जो नित्यप्रति अपना बही-खाता नही मिलाता। उसने दुकान में पूंजी लगाई है; किस लिए ? यदि वह घाटा सहता रहेगा, तो उसका दिवाला निकल जायगा। इसके विपरीत यदि वह नित्य दुकान बन्द करने से पहले बही-खाता मिला लेता है, तो उसे अपनी स्थिति का पता लग जाता है। तब जिन कारणो से उसे घाटा होता है, उन्हे वह दूर करने की चेष्टा करता है।

आपका जीवन आपकी पूंजी है। आपको इसे नफे पर लगाना है, ताकि जीवन-यात्रा पूरी होने के समय आप आनन्द से चोला बदल सके। यदि आप चाहते है कि आपका जीवन सफल हो, आप घाटे में न रहे और आपका दिवाला न निकले, तो आप रोज रात के समय सोने से पहले अपना बही-खाता मिलाइये। आपने अपनी पूंजी को कहां लगाया है ? क्या उसमे घाटा हो रहा है या नफा ? इसे आपको देखना है। अपने बुरे-भले कामो की पड़ताल कीजिए और ईश्वर के सामने अपनी भूलों पर पश्चात्ताप कीजिए। वह प्रभु बड़ा दयालु है। जो उसकी शरण मे जाते है, वह उन्हें गोद में उठा लेता है। सच्चे हृदय से अपनी गलतियों पर दु.ख प्रकट कीजिए और फिर प्रभु के दरबार का दरवाजा खटखटाइये। तब आपको एक चमत्कार दिखाई देगा।

ससार में जितने महापुरुष हुए है, सब अपना बही-खाता मिलाया करते थे। आधुनिक युग मे दिनचर्या लिखने का रिवाज है। पहले लोग सुबह-शाम प्रार्थनाएँ किया करते थे और उसी समय अपने कर्तार के सामने दिन-भर के पापों का हिसाब देते थे। रोमन कैथोलिक ईसाइयों में किये हुए गुनाहों को पादरी के सामने प्रायश्चित रूप में कहने की प्रथा प्रचलित है। मुसलमान लोग गुनाहों की तोबा करते है और खुदा से माफ़ी माँगते है। यह भी एक तरीका अपनी दिनचर्या ईश्वर के सामने कहने का है, परन्तु इससे अच्छा ढंग आधुनिक है, जिसमे भले-बुरे कामों को दैनिक

वृत्त-पुस्तक में लिख लिया जाता है और यदि कोई अच्छी पुस्तक पढ़ी जाय, किसी विद्वान से सत्संग हो, अथवा कोई और अच्छी बात सुनने में आवे, तो उसे नोट-बुक में टीप लेते हैं। इस प्रकार ज्ञान का संचय भी होता चला जाता है, और किस प्रकार हम अपने जीवन की पूँजी को खर्च कर रहे हैं—इसका सविस्तर ब्यौरा मालूम होता रहता है। सभी बड़े-बड़े लेखक और महापुरुष अपनी दिनचर्या लिखते थे या रात के समय सोने से पहले अपने दिन-भर के कामों पर विचार करते थे।

एक और बहुत बड़ा लाभ दैनिक-वृत्त लिखने का यह है कि इससे स्मरणशक्ति बहुत अच्छी हो जाती है। जैसे उस्तरे को पत्थर पर लगाने से उसकी धार तेज हो जाती है, इसी प्रकार नित्यप्रति दैनिक वृत्त लिखने से स्मरणशक्ति तेज हो जाती है और आप अपने वर्षों के अनुभवों को याद रख सकते हैं। ब्राह्मीबूटी खाने अथवा असगन्ध सेवन करने से आपकी स्मरणशक्ति को इतना लाभ नहीं होगा जितना दिनचर्या लिखने से हो सकता है। हमारा अपना निज का अनुभव यही है और हमने वर्षों के अनुभवों को केवल स्मरणशक्ति द्वारा पुस्ताकाकार लिख डाला है। सभी विद्यार्थियों के सामने हम यह नुस्खा पेश करते हैं और आशा करते हैं कि वे इसके द्वारा अपनी स्मरणशक्ति बढ़ायेंगे।

प्रत्येक स्त्री और पुरुष को यह देखना चाहिए कि उसका जीवन कहाँ लग रहा है। क्या उसका शरीर, उसकी तन्दुरुस्ती दिन-प्रति-दिन क्षीण हो रही है या बढ रही है ? उसे यह देखना है कि पिछले पाच वर्षों मे अब वह कितना आगे बढा है। यदि उसने अपना धन खोया है तो उसका कारण क्या है ? यदि उसके चरित्र मे दोष आ गये हैं, उसकी बात का प्रभाव नहीं पड़ता, उसे व्याधियाँ सताती हैं और उसका मन अशान्त है, तो इनके क्या कारण हैं ? मुफ्त में डाक्टरों के पास जाकर पैसा बरबाद करने से कुछ लाभ नहीं। आप अपने स्वयं मालिक हैं। आपका उत्थान-पतन आपके हाथ में है। आप अपने प्रारब्ध के बनाने वाले हैं। केवल अपनी ग़फलत के कारण ही दुःखों का बोझ आपकी पीठ पर लद गया है। अपना बोझ

हल्का करने के लिए, डाक्टर-वैद्यों से छुटकारा पाने के हेतु और अपनी मानसिक अवस्था सुधारने की इच्छा से आपको अपनी दिनचर्या लिखने का अभ्यास डालना चाहिये। जब आप रोज अपना बही-खाता मिलायेंगे तो बड़ी आसानी से अपने दुःखो का कारण आपको मालूम हो सकेगा।

सभी पूंजीपति अपनी पूंजी वहीं लगाते है जहाँ से उन्हे नफे की आशा होती है। वे अपने धन को कितना मूल्यवान समझते है और उसकी रक्षा तथा उसकी वृद्धि के लिए कैसे जी-जान से कोशिश करते हैं ! यदि हम उससे आधी कोशिश अपने जीवन-धन-रूपी पूंजी को ठीक ठिकाने लगाने में करें और रोज अपने हानि-लाभ को मिला लें, तो कितना सुख और कितनी शान्ति प्राप्त हो सकती है ! हजारों जीवन बरबाद होगये, जवानो की जवानी मिट्टी मे मिल गई, युवतियों का सौन्दर्य नष्ट होगया और धनकुबेर कगाल होगये—केवल इसीलिये कि उन्होने अपना बहीखाता नही मिलाया और दिनचर्या लिखने का अभ्यास नहीं डाला। जब समय निकल जाता है तब पछताना व्यर्थ होता है। आवश्यकता इस बात की है कि हम आज से ही दिनचर्या लिखने की प्रतिज्ञा करे और अपने प्रभु से दो-दो बाते करने की आदत डालें। यह आदत सात्विक बीज वपन करेगी, जिसके मधुर फल हमें शीघ्र चखने को मिलेगे।

व्यायाम

परमात्मा की सृष्टि में मानव-शरीर एक अत्यन्त अद्भुत वस्तु है। इसकी बनावट में प्रकृति ने विकास का इतिहास लिख दिया है। मानव-शरीर का प्रत्येक अंग ऐसे साँचे मे ढाला गया है कि किसी प्रकार का दोष इसमें नही रह गया। छोटे से मस्तिष्क में सारे ब्रह्माण्ड के रहस्यो के उद्घाटन के साधन भरे हुए है। किस वैज्ञानिक ढंग से आँख, कान, नाक आदि ज्ञानेन्द्रियाँ बनाई गई है और कैसे आश्चर्यजनक यन्त्र शरीर के अन्दर विद्यमान है ! जब से सृष्टि का निर्माण हुआ है, इस मनुष्य-शरीर द्वारा कैसे-कैसे विस्मयजनक कार्य हुए हैं ! परन्तु आज तक यह अद्भुत

मनुष्य अपना नमूना तैयार नही कर सका।

इस मानव-शरीर का उत्थान और पतन 'व्यायाम' शब्द में छिपा हुआ है। जिन यूनानियों की संस्कृति ने योरुप को अभ्युत्थान का मार्ग दिखलाया, वे शरीर के बड़े उपासक थे। इटली के प्रसिद्ध नगरों में जगत्-विख्यात यूनानी पहलवानों और वीरों की मूर्तियाँ कुशल शिल्पियों द्वारा निर्माण की जाती है, जिन्हें देखकर दर्शक का हृदय गद्गद हो जाता है। आर्यवंश के उन सुपुत्रों ने शरीर के विकास को पूर्णता तक पहुँचाने की चेष्टा की थी; इसीलिए वे साहित्य, संगीत और कला के निर्माता बने। संसार को उन्होने शिक्षा-पथ दिखलाया। वे जानते थे कि व्यायाम द्वारा ही शरीर नीरोग रह सकता है और नीरोग शरीर मे ही नीरोग मन का निवास रहता है। नीरोग मन होने से आत्मा को आनन्द मिलता है और अपने ध्येय—सच्ची शान्ति को प्राप्त कर सकता है। इसी कारण शिक्षा मे उन्होंने व्यायाम को सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया था और अपने बच्चो को वीर-शिरोमणि बनाया था। यूनानी व्यायामशालाओ के नाम आज भी शताब्दियो के बाद हमारे कानो को पुलकित करते है और ओलिम्पिक खेलों (Olympic Games) का नाद हमारे कानो मे गूँजता है।

सचमुच व्यायाम ऐसी ही चीज़ है। जैसे पानी न सीचने से पौधा सूख जाता है, ऐसे ही व्यायाम न करने से शरीर मुर्दा हो जाता है। जो लोग नित्यप्रति व्यायाम करते है उनके फेफडे शुद्ध पवन से साफ़ होते है, मानो ताजा जल उनके अन्दर प्रवेश करता है। नित्य प्रति जिस सरोवर में जल का आगमन और निष्क्रमण रहे, वह भला गंदा क्यो होगा? परन्तु जिस तालाब मे पानी खड़ा रहता है उसमें कीड़े पड़ जाते है और ज़हरीली गैसें उत्पन्न हो जाती है। इसी प्रकार व्यायाम न करने वाले लोगों के शरीर में गन्दे विचार भर जाते हैं और उनका मस्तिष्क ज़हरीले कीटाणुओ से ओत-प्रोत हो जाता है। हम हजारो स्त्री-पुरुषों को नगरों मे घूमते देखते है, जिनके चेहरों पर मुर्दनी छाई रहती है, जो गन्दे मकानों में रह कर जीवन व्यतीत करते है। यदि आप उनसे बात करें

तो उनके अन्दर से संकुचित विचार अपनी बदबू फैलाते हुए बाहर आते हैं। तन्दुरुस्ती के लिए व्यायाम सबसे बड़ा साधन है। इसी के बल पर आज योरुप वाले इतने परिश्रमी बन गये है। शरीर का प्रत्येक अग व्यायाम चाहता है और उसके बिना जंग खा जाता है। बीमारी के कीटाणु उसी को पछाड़ते है जो व्यायाम नही करता और जिसके शरीर में बल नही। बलवान शरीर जहाँ संसार की बाधाओ का सामना करता है, वहाँ बीमारी के कीटाणओ को भी पीस डालता है।

अतएव उत्थान-पथ के यात्री को इस बात का सदा ध्यान रखना चाहिए कि शरीर आत्मा का मन्दिर है। इसे तुच्छ न समझ कर सदा इसकी सफाई और विकास का ध्यान रखना हमारा परम कर्तव्य है। भूख उसी को लगती है जो व्यायाम करता है। आरोग्यता का नशा अत्यन्त मधुर होता है। नीरोग मनुष्य जब खाने बैठता है तो प्रत्येक ग्रास उसे अत्यन्त मीठा मालूम होता है। इसके विपरीत व्यायाम से जी चुराने वाले अजीर्णता की जंजीरों में जकड़े रहते हैं और कोई भी वस्तु उन्हें अच्छी नही लगती; वह पेट मे दर्द करती है। हजारो दवाइयो की एक दवाई नित्य प्रति का व्यायाम है।

इस सत्य सिद्धान्त को समझ कर जर्मनी के लोग अपने बालक-बालिकाओं को व्यायामशालाओ में नित्य भेजते है। कोई गली-कूचा, बाजार-मुहल्ला व्यायामशाला से खाली नही, जहाँ लडके-लड़कियाँ दोनों सुबह-शाम व्यायाम करते हुए दिखलाई न देते हो। हम घटो इन नीरोग जर्मन बच्चो को व्यायाम करते हुए देखा करते थे, तो कैसा आह्लाद हृदय मे होता था! तभी तो उनमे धैर्य है। जिस काम को पकड़ते है, उसे पूर्ण करने में सब शक्तियाँ लगा देते है और कठिनाइयाँ आने पर नये आविष्कार रच बाधाओ पर विजय लाभ करते है। यह ससार उन्ही के लिए सत्य है जो नीरोग है। बीमार आदमी की टाँगें तो क़ब्र में लटकने लगती है। छुट्टी के दिनों में जर्मन बच्चे जंगलों में जाकर खेलते-कूदते हैं। वे पुस्तको के कीड़े नही बनते, क्योकि वे जानते है कि

प्रकृति माता को नीरोग शरीर प्यारा है और वह अपना ज्ञान बडी प्रसन्नता से उन्हें ही देती है जिनके चेहरे तन्दुरुस्ती की लालिमा से चमकते हैं।

हम इसी कारण अपने पाठको से व्यायाम करने की प्रतिज्ञा कराना चाहते हैं, ताकि वे अपने उत्थान में बराबर आगे बढ सकें। यह आवश्यक नहीं कि आप जंजीरें तोडें, मोटर रोके, अथवा कोई और ऐसा ही विस्मयजनक काम कर दर्शकों को चकित कर दें। हम इस प्रकार के व्यायामों को व्यायाम नही कहते। इनसे शरीर का स्वाभाविक विकास नहीं होता। यह तो पैसा बटोरने के धन्धे है। ऐसे लोग दीर्घायु भी नहीं होते। व्यायाम तो शरीर को फुर्तीला और नीरोग रखने के लिए किया जाता है—सैण्डो और राममूर्ति बनने के लिए नही। नित्यप्रति अपने घर से बाहर खुले मैदान में जाइये और वहाँ पौना घंटा, घंटा कसरत कीजिए। टाँगों की कसरत दौड़ने से बड़ी अच्छी हो जाती है और हल्के मुगदर फेरने से भुजायें और छाती पुष्ट होती है। भूमि पर सीधे लेटकर टाँगों को इधर-उधर घुमाने और सिर की तरफ लाने और फिर वापस करने से भी बड़ा अच्छा व्यायाम हो जाता है। जिनका पेट निकल आये वे पेट के बल लेट कर अपनी टाँगों को हाथो से पकड़ आगे-पीछे चलने का अभ्यास करें। रोज पन्द्रह-बीस मिनट ऐसा करने से पेट पिचकने लगेगा और अपने स्वाभाविक रूप को ग्रहण करेगा। चौपायो की तरह हाथो और टाँगों के बल चलने से भी बडा अच्छा व्यायाम हो जाता है और सपाटे-बैठक निकालने से शरीर को बड़ा लाभ होता है। परन्तु व्यायाम सदा मुह बन्द करके करना चाहिये, जिससे लम्बी साँस लेने की आदत पड़ जाये। प्रायः बीमारियाँ छोटी साँस लेने से हो जाती है। प्रत्येक स्त्री-पुरुष को खुली शुद्ध पवन मे दस-पन्द्रह मिनट तक लम्बी साँस लेने का अभ्यास करना चाहिये। इसका प्रभाव शरीर पर ऐसा ही पडता है जैसे पानी के नल को खोल देने से कमरा धोया जाता है। हम चाहते है कि हमारा प्रत्येक पाठक और पाठिका नित्यप्रति व्यायाम की आदत डाले। अपने कमरे में एक कागज़ ऐसा लटका लेना चाहिये जिस पर बराबर यह लिखा जाय

कि किस दिन व्यायाम में विघ्न पडा है। यदि इस प्रकार नियमपूर्वक व्यायाम किया जायगा तो कभी कोई बीमारी पास नही फटकेगी, डाक्टर और वैद्यों की फीस से छुटकारा होगा और आप उत्थान-पथ पर बढ़ते चले जायेंगे।

लाघव कर्मसामर्थ्य विभक्तघनगात्रता।
दोषक्षयोऽग्निवृद्धिश्च व्यायामादुपजायते।

व्यायाम करने से हल्कापन, फुर्ती, कर्म करने की शक्ति, गात्रो का अलग-अलग और घना हो जाना, दोषो का क्षय और अग्निवृद्धि—ये लाभ होते है।

The early bird catches the worm. —*An American proverb*

Awake thee, my lady love, wake thee and rise !
The Sun through the bower peeps into thine eyes.

—*George Darley*

It was a noble Roman
In Rome's imperial day,
Who heard a coward croaker
Before the battle say :
"They 're safe in such a fortress;
There is no way to shake it."
"On, on !" exclaimed the hero,
"I 'll find a way, or make it !"

ग्यारहवाँ पुष्प

शक्तियों की जागृति

क्या योरुपीय देशों के बारह-बारह, चौदह-चौदह वर्ष के लड़के, जो संसार-शासन का दम भरते है, हमारे लडको से अधिक योग्य है ? उनमें कौन-सा गुण है जिसके कारण वे हमारे लडको से अधिक योग्य समझे जाते है ? इसका उत्तर स्पष्ट है। वे उन देशो मे पले है जहाँ के नेता अपने बच्चों को उत्साहित करने के लिए प्रत्येक सम्भव साधन का प्रयोग करते है, जहाँ बच्चो को मनुष्य बनने का पूरा मौका दिया जाता है, जहाँ बच्चो में दूसरो पर शासन करने का विश्वास भरा जाता है।

इसके विपरीत, हमारे यहाँ क्या है ? यहाँ के नेता हमेशा ही अपने देशवासियो की अयोग्यता का बेढङ्गा राग अलापते रहते है। जिसे देखो वही खुशामद के "पैगम्बर" की पूजा कर रहा है। कोई अपनी किस्मत को कोसता है, दूसरा 'कलियुग' को दोष देता है। बहुत से ऐसे हैं जो नवयुवको के उठते हुए उत्साह को दबाने के लिए घृणित-से-घृणित उपायो का अवलम्बन करते है। जो मिलता है वह आशा-भग ही करता है; जो उठता है वह ठण्डा पानी ही डालने में अपनी बहादुरी समझता है।

ऐसे समाज में रहने वाले नवयुवको की शक्तियाँ क्या कभी जागृत हो सकती है ? कभी नही। लड़का जैसी सगत में रहता है वैसा ही वह हो जाता है। हमारे इर्द-गिर्द जगाने के सामान नही है; हम लोगों की अपनी जाति के उच्च मिशन पर कोई श्रद्धा नही है। ऐसी अवस्था में हमारे बच्चे, हमारे बालक 'सिंह' कैसे बन सकते है ?

जार के समय में, जब रूस के यहूदी लोग अमरीका में जाते थे तो थोड़े ही वर्षों में उनकी काया-पलट हो जाती थी। रूस में उन्हें पूरी

स्वतन्त्रता नहीं मिलती थी, इसलिए अन्याय के बोझ से उनकी कमरें झुक जाती थीं। अमरीका में आते ही उनको नये समाज, नये लोक के दर्शन होते थे; वे अपने आपको सबके बराबर पाते थे। अमरीका के प्रजातन्त्र राज्य के प्रभाव से उनकी दबी हुई शक्तियाँ जागृत हो उठती थी और वे नया जीवन धारण करते थे। उनका मनुष्यत्व विकसित होने लगता था। अतएव शक्तियो को जागृत करने के लिए यह आवश्यक है कि हम पहले अपने इर्द-गिर्द वैसा वातावरण पैदा करने की चेष्टा करें। शेर का बच्चा यदि गीदड़ो मे पाला जाय तो वह उनकी आदतें सीख जायगा। हमारे समाचारपत्रों मे कभी उन लड़को के पकड़े जाने की खबरे छपा करती है जिनको भेड़िये अपनी मांदो मे उठा ले गये थे। भेड़ियो की मांदों मे पलने से उन बालको की सब आदतें उन हिसक पशुओ जैसी हो जाती है। भला उस जाति के बच्चे वीर कैसे हो सकते है जिसके स्कूलों में अपनी हार-ही-हार का इतिहास पढाया जाता है, जहाँ के माता-पिता लड़को को "हाँ हजूर, हाँ हजूर" कहने ही की शिक्षा देते है।

भारतवर्ष के बच्चो को अपनी शक्तियो को जगाने का अवसर नही दिया जाता। यदि अपनी सन्तान को वीर और धर्मात्मा बनाना चाहते हो तो उनके इर्द-गिर्द वैसे ख्याल.त पैदा करो; उनको निराशा के 'मर-सीहे' मत पढाओ। उनके सामने उच्च आदर्श रक्खो। उनको सदा उत्साह से भरो। उनको महापुरुषो के जीवनचरित्र सुनाओ। उनको वीर जातियो के इतिहास पढ़ाओ। उनको डराने वाली बातें सुना-सुना कर कायर मत बनाओ।

कैसा ही दृढचित्त पुरुष क्यो न हो, यदि उसके इर्द-गिर्द "बरबादी ! बरबादी !" चिल्लाने वाले उल्लू रहेगे, तो वह बेचारा भी बरबाद हो जायगा। ऐसे उल्लुओ की "हूट ! हूट !!" को मत सुनिए। उच्च लक्ष्य बनाकर आगे बढ़ने का सामान कीजिए। लाखों आत्माये निराशा के मुह में इसलिए चली गई क्योकि उनको कोई उत्साहित करने

वाला नही मिला, किसी ने उनकी शक्तियो के जगाने में सहायता नही दी।

इसलिए सदा उन आत्माओं का सग कीजिये जिनके आदर्श उच्च है, जिनका मन उत्साह से भरा है; ऐसे लोगों में आकर्षक शक्ति है, उनमें मिकनातीसी ताकत है। उनके पास बैठने से आपकी शक्तियो का विकास होगा। अपनी दबी हुई शक्तियो को जागृत करने के लिए बाहर के साधनो की बड़ी भारी आवश्यकता है। कृपा कर अपने समाज, अपने देश को उन साधनों से सम्पन्न कीजिए। इस त्रुटि के कारण हम उठ नहीं सकते; यह हमारी उन्नति के मार्ग में भारी बाधा डाल रही है।

"Energy is eternal delight." —*William Blake*

"जब मनुष्य आत्मा के अनुकूल कर्म करने लग जाता है तो उसकी हृदयतन्त्री बजने लग जाती है और वहीं से आन्तरिक शक्तियों का मधुर स्वर उसके सारे शरीर को पुलकित करने लग जाता है।"

—देवदूत

"यदि तुम अपने अन्दर की छिपी हुई शक्तियों को जगाना चाहते हो तो मन, वाणी और कर्म को एक सीध में लाने का प्रयत्न कीजिये। शक्ति-स्रोत से स्फूर्ति पाने का यही सीधा सच्चा मार्ग है।"

—स्वामी सत्यदेव परिव्राजक

बारहवाँ पुष्प

आत्म-विश्वास

"सिसोदिया वंश का बच्चा अकबर के सामने सिर नहीं झुकायेगा !"

महाराणा प्रताप ने यह भीष्म-प्रतिज्ञा उस समय की थी जब बादशाह अकबर ने भारतवर्ष के सभी हिन्दू राजाओं को अपने वश में कर लिया था। मेवाड के छोटे-से इलाके का अधिकारी यह राजपुत्र ऐसी भीष्म-प्रतिज्ञा करता है ! वह कौन-सी शक्ति थी जिसने उस वीर मनुष्य मे ऐसा अलौकिक बल भर दिया था ? यह है आत्म-विश्वास की शक्ति। इसी शक्ति के उपासक महाराणा प्रताप ने अपने मुट्ठी-भर राजपूतों को साथ लेकर हल्दीघाटी के युद्ध मे अकबर के हजारो सैनिकों के दाँत खट्टे किये थे। उसके सगे भाइयो ने उसका साथ छोड़ दिया, उसके बड़े-बड़े गढ एक एक करके उसके हाथ से निकल गये, मगर उसका मन ज़रा भी विचलित नही हुआ और वह अपनी दृढ प्रतिज्ञा पर बराबर खडा रहा।

राबर्ट ब्रूस जिस समय युद्ध से हार कर भागा, उसने यह समझ लिया था कि मै अंग्रेजो का सामना नही कर सकता; परन्तु जाला बुनने वाली मकड़ी ने उसको आत्म-विश्वास की शिक्षा दी। उसके विचार बदल गये। उसको दृढ विश्वास होगया कि मै अपने प्यारे स्काटलैण्ड को स्वतन्त्र कर सकता हूँ। इस विश्वास ने उसको नया आदमी बना दिया और उसने अपने कार्य मे सफलता प्राप्त की।

महात्मा बुद्ध, गुरु गोविन्दसिंह, ऋषि दयानन्द और अन्य महापुरुषो को अपने ऊपर अटल विश्वास था। इस विश्वास ने उनकी शक्तियों को बढ़ाने में भारी सहायता दी। यदि इन महात्माओं को अपने मिशन पर

अटल विश्वास न होता तो योग्यता रखते हुए भी वे कुछ न कर सकते थे।

गुरु गोविन्दसिंह जी से मिलने से पहले बाबा बन्दा एक साधारण सा मनुष्य था, पर जिस समय उसको अपने मिशन पर विश्वास हुआ उसकी शक्तियाँ जाग उठी और वह एक महापुरुष बन गया।

जो मनुष्य यह समझता है कि मैं कुछ नही कर सकता, वह वास्तव मे कुछ नही कर सकता। उसे अपने ऊपर विश्वास नही है। ऐसे मनुष्य की कोई सहायता नही कर सकता। जो अपने को तुच्छ समझता है, उसको सब कोई तुच्छ समझेगा। उसके चेहरे पर कायरता के चिह्नों का आविर्भाव हो जाता है। वह उस कुत्ते की तरह है जिसको चारो ओर से फटकार मिलती है। मेरे पास प्राय: उन लोगो की चिट्ठियाँ आती है जो अमरीका जाना चाहते है। अधिकांश ऐसा लिखते है—

"स्वामी जी, मै बडा निर्धन हूँ, मेरी कोई सहायता नही करता; आप मुझे एक भिक्षुक समझ सहायता कीजिये। मुझे, बस, आपका ही सहारा है। मै जन्म-जन्मान्तर तक आपका गुण गाता रहूँगा।"

ऐसे लोगो की चिट्ठियाँ मै फाड कर फेंक देता हूँ। ऐसे लोग ससार में कुछ नही कर सकते; वे कायर और भीरु है। जीवन-सग्राम से उन्हे डर लगता है; वे भग्गू है। वे दूसरो के फेंके हुए जूठे टुकड़ो पर गुज़ारा करने वाले है।

भला वह नवयुवक किसी काम मे कैसे सफलता प्राप्त कर सकता है जो उठते-बैठते, चलते-फिरते अपनी बदकिस्मती पर ही रोता रहता है; जो जिधर देखता है उधर ही उसको निराशा दिखाई देती है; जो सदा अपनी कठिनाइयो का ही जाला बुनता रहता है; जिसके चेहरे पर 'निराशा' मोटे अक्षरो में लिखी हुई है। ऐसे नवयुवक को कभी भी किसी काम में सफलता प्राप्त नही हो सकती। जो मनुष्य डरता है उसे रात को भूत दिखाई देते है; उसी को संसार नरक के समान सूझता है।

किसी कार्य को आरम्भ करने से पहले यदि मन में उसकी सफलता पर अविश्वास हो, तो निश्चय समझिये कि वह कार्य कभी नहीं होगा।

जो मनुष्य 'छीक' को अपशकुन समझता है वह संसार में क्या कर सकता है ? मन में शंका के उत्पन्न होते ही शक्तियां निर्बल होने लगती हैं और आधा काम बिगड जाता है। जब आप स्वयं अपनी अयोग्यता, अपनी नालायकी स्वीकार करते है, फिर आप उसे कर कैसे सकते हैं ?

अपने ऊपर विश्वास करो, तब सब कोई आप पर विश्वास करेगा। विश्वास में दैवी शक्ति है। इसी विश्वास ने क्लर्क क्लाइव को सेनापति क्लाइव बना दिया। इसी विश्वास ने सिपाही नैपोलियन को फ्रांस के सिहासन पर बिठला दिया।

विश्वास ! विश्वास में गजब की शक्ति है; यह शक्तियो का पुञ्ज है।

जो दशा व्यक्तियों की है, वही जातियो की भी है। जिस जाति को अपने भविष्य पर विश्वास है, जो अपने आपको महान-से-महान कार्य करने के योग्य समझती है, वह जाति अवश्य ही अपने उद्देश्य को पूरा कर सकती है। जो जाति अपने को अयोग्य समझती है, जिसको अपने ऊपर विश्वास नहीं है, जो दूसरे के सहारे चलने मे ही अपना मोक्ष मानती है, जिसको भीख माँगने की आदत है, वह कभी भी अपनी अवस्था को पलट नही सकती। जिस राष्ट्र के लोग समझते है—"हम अयोग्य है; हम कुछ नही कर सकते; हमको उठने के लिए शताब्दियाँ चाहियें; हम में यह नहीं है, हम में वह नही है"—ऐसे राष्ट्र के लोग कभी उठ नही सकते। उनको साक्षात् ब्रह्मा भी उठा नही सकता। सबसे पहले आत्म-विश्वास होना चाहिए—"I will do it or die for it" अर्थात् "मै यह काम कर डालूगा या सइके लिए मर मिटूगा"। ऐसा विश्वास सब प्रकार की जजीरो को ढीला कर देता है; यह सब किस्म के बन्धनो को काट सकता है। इसलिए उठिए; यह निराशा—यह अविश्वास—दूर कीजिये; जाति के बच्चों में आत्म-विश्वास भरिए। हमारी जाति कठिन-से-कठिन, महान-से-महान कार्य करने के योग्य है—यह विश्वास अपने अन्दर भरिए। भीरुता, कायरता और अयोग्यता के विचारों को हृदय से निकाल दीजिए। जिस दिन भारत जाति को अपने ऊपर विश्वास हो

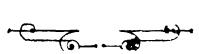
जायगा उस दिन ये रुकावटें—ये बन्धन—जो आज भयानक बोध होते हैं, तुच्छ मालूम होने लगेंगे और भारत जाति अपने थोड़े से उद्योग द्वारा उन्हें काट सकेगी।

आओ, अपने स्वरूप को पहचानो; अपनी शक्तियो को जानो। तुम्हारे भय, तुम्हारी शङ्कायें सब काफूर हो जायेंगी, यदि तुम अपनी जाति के उच्च मिशन पर विश्वास करोगे। तुम्हारी बड़ी भारी कमज़ोरी तुम्हारा अविश्वास है—यही तुम्हारा कट्टर शत्रु है।

झुक कर मत चलो, अपना सिर ऊँचा करो। किसी से मत डरो; निर्भय, निश्शङ्क हो जाओ; तुम अमृत-पुत्र हो। स्मरण रखिए, 'आत्म-विश्वास' ही हमारे उत्थान की कुञ्जी है।

नारा बजा अकबरी जब चार कोने,
क्षत्री छिपा मुँह पड़े रनवास में थे;
बेहाल होकर लगे जब वीर रोने,
मेवाड़ का वह प्रताप उठा गदा ले।

('अनुभव' में से)

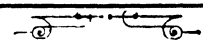


Self-trust is the essence of heroism. —*Emerson*

Trust thyself: every heart vibrates to that iron string." —*Emerson*

"Self-trust is the first secret of success." —*Emerson*

"All my hope for all my help is myself." —*Montaigne*



तेरहवाँ पुष्प

प्रेम-सन्देश

कभी उदास मत होवो। सदा आनन्दित रहो। उदास होने से शरीर रोगी और निर्बल हो जाता है। मानसिक व्याधियों से मनुष्य ग्रसित हो जाता है। ईश्वर ने हमें सब प्रकार की सामग्री दे दी है, हमारा काम उसका ठीक-ठीक उपयोग करना है। उसका ठीक-ठीक उपयोग उन्हीं लोगों से हो सकता है जिनकी बुद्धि ठिकाने रहती है। दुःखी रहने वाले लोगों की बुद्धि ठिकाने नहीं रहती; वे ईश्वर-दत्त भोगों को काम में नहीं ला सकते। जो सदा प्रसन्न रहते हैं उन्हीं को प्रकृति का सच्चा सुख प्राप्त हो सकता है।

क्या आप ईर्ष्या की आग से जल रहे हैं? यदि ऐसा है तो इस आग से दूर रहिए। यह आपको समूचा जला देगी। यह आपके जीवन को नरक बना देगी। इससे दूर रहना अच्छा है। दूसरे से ईर्ष्या क्यों? यह संसार बहुत बड़ा है। यहाँ आपके लिए काफ़ी जगह है। दूसरे के साथ ईर्ष्या-द्वेष कर आप अपनी हानि कर रहे हैं और अपना भविष्य बिगाड़ रहे हैं।

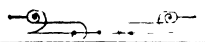
सब से प्रेम रखो

यदि आप से कोई द्वेष करता है तो भी आपको उससे प्रेम करना चाहिये, क्योंकि वह तो मानसिक व्याधि से ग्रसित है, उसकी दशा दया के योग्य है। यदि आपने भी द्वेष किया तो दोनों बराबर होगये; कोई भेद नहीं रहा। जब आप उससे प्रेम करेंगे तो आपके मन की प्रबल शक्तियाँ उस व्याधि-ग्रस्त आत्मा के ऊपर अपना प्रभाव डालेंगी और उसकी बीमारी का इलाज होना शुरू होगा। धीरे-धीरे उसका रोग हट

जायगा। वह बिल्कुल नीरोग होकर आपके प्रेम का भाजन बनेगा। यही परमात्मा की आज्ञा है; इसीलिए वे पापियो पर दया करते है। परमात्मा का यही आदेश है कि हम सबसे प्रेम करें।

सदा न्यायसंगत पथ पर चलो

हम अपनी आत्मा का हनन क्यो करते हे ? किस के लिए ? हमारी भलाई इसी में है कि हम अपनी आत्मा के अनुकूल कर्म करें। ह किसी का डर नही है। हम अमर है। हम भीरु नही बनना चाहते। हम कायर नही है। हम मनुष्य है। मनुष्य का मनुष्यत्व इसी मे है कि वह सदा न्याय-पथ का अवलम्बन करे; धन के लोभ से खुशामदी न हो जाए, ख्याति की भूख उसे भीरु न बना दे। जीवन वही सार्थक है जो ईश्वर की आज्ञा पालन मे खर्च होता है। ईश्वर हम सब का पिता है। वही हमारा राजा है; उसकी आज्ञा मानना हमारा कर्त्तव्य है। ससार के कष्टो की कुछ परवाह न करो; इनका वीरता से सामना करो। न्याय का पथ छोडने से ही हमारी यह दुर्दशा हुई है और उसका अवलम्बन करने से ही हमारा कल्याण होगा।



Knowledge is the parent of love ; wisdom, love itself

What is love ? 'Tis nature's treasure,
'Tis the storehouse of her joys,
'Tis the highest heaven of pleasure,
'Tis a bliss which never cloys.



चौदहवाँ पुष्प

हिम्मत करो

आप उदास क्यों हैं ? चेहरा क्यों कुम्हलाया हुआ है ? उठो, हिम्मत करो !

जीवन शोक करने के लिए नही है। यह जिन्दगी काम करने के वास्ते है। अपने रास्ते में पड़ी हुई रुकावटो को देखकर घबरा मत जाओ। ये रुकावटे आपकी हितचिन्तक है। ये जीवन को उन्नत करने के साधन है।

इस ससार में प्रत्येक आत्मा का कोई-न-कोई उद्देश्य है। सर्वज्ञ कर्त्ता ने कोई वस्तु निरर्थक उत्पन्न नही की। इस महान यन्त्र का प्रत्येक पुरज़ा किसी अभिप्राय की सिद्धि के लिए है। सोचो, वह अभिप्राय कौन-सा है ?

यदि आपने उस अभिप्राय को जान लिया है और उसकी सिद्धि के हेतु आपको बड़ी-बडी कठिनाइयो का सामना करना पडता है, तो भी विश्वास करो कि उन कठिनाइयो को दूर करने के साधन भी वहीं मौजूद है। उन साधनों को जानना, उनका ठीक-ठीक प्रयोग करना, उनके अनुसार कार्य सिद्ध करना, यही सच्चा जीवन है।

क्या आपने ऐसा किया है ?

यदि ऐसा किया होता तो कभी भी यह उदासीनता न आती। उदासीनता का आ जाना ही इस बात का प्रमाण है कि आपने अपने जीवनोद्देश्य को नही समझा। आप हिम्मत हारे बैठे है। ससार आपको दुःखमय बोध होता है। सब भाई, बन्धु, मित्र तथा यार आपको अपने शत्रु जान पड़ते है। आप जिधर दृष्टि उठाते ह, कष्ट-ही-कष्ट दीख पड़ता है। निराशा आपको आत्मघात करने के लिए कहती है।

क्या इससे आपके दुःखों का अन्त हो जायगा ?

कभी नही । हरगिज़ नहीं । आप एक जगह से भागकर दूसरी जगह जाया चाहते है ; लेकिन जहाँ आप जायगे, अपने संकल्प-विकल्पो का चिट्ठा साथ ले जायगे । वह आपको नही छोड़ेगा । आप जहाँ जायंगे, वही यह भूत आपके साथ जायगा । यदि स्वर्ग मे आप पहुँच जाय, तो वहाँ भी नरक दिखाई देगा । आप इस भूत को पीछे नही छोड सकते । इस भूत को यही मार कर भगाना ठीक है । आप इस निराशा के जाल को यही काट सकते है । उदासीनता छोड ऊपर दृष्टि डालिये । अपनी आत्मा को इन निर्बलताओ से विमुक्त कीजिये । ईश्वर ने यह जीवन काम करने के लिए दिया है । इस जीवन का कोई ख़ास उद्देश्य है । उस उद्देश्य को जानिये । अपनी शक्तियो की पडताल कीजिये और उनका ठीक-ठीक उपयोग करना सीखिये ।

स्मरण रखिये, रुकावटे और कठिनाइयाँ आपकी हितचिन्तक है । वे आपकी शक्तियो का ठीक-ठीक उपयोग सिखाने के लिए है; मार्ग के कण्टक हटाने के लिए है । वे आपके जीवन को आनन्दमय बनाने के लिए है । जिनके रास्ते में रुकावटें नही पडी, वे जीवन का आनन्द ही नही जानते । उन्हें ज़िन्दगी का स्वाद ही नही आया । जीवन का रस उन्होने ही चखा है जिनके रास्ते मे बडी-बडी कठिनाइयाँ पडी है । वे ही महान् आत्मा कहलाये है । उन्ही के जीवन, जीवन कहला सकते है ।

उठो ! उदासीनता त्यागो । प्रभु की ओर देखो । वे जीवन के पुज है । उन्होने आपको इस संसार मे निरर्थक नही भेजा । उन्होने जो श्रम आपके ऊपर किया है, उसे सार्थक करना आपका काम है । यह ससार तभी तक दुःखमय दीखता है जब तक कि हम इसमे अपना जीवन होम नहीं करते । बलिदान हुए बीज पर ही वृक्ष का उद्भव होता है । फूल-फल उसके जीवन की सार्थकता सिद्ध करते है ।

सदा प्रसन्न रहो । मुसीबतों का खिले चेहरे से सामना करो । "आत्मा सबसे बलवान् है", इस सच्चाई पर दृढ विश्वास रखो । यह विश्वास

'ईश्वरीय विश्वास' है। इस विश्वास द्वारा आप सब कठिनाइयो पर विजय पा सकते है। कोई कायरता आपके सामने ठहर नही सकती। इसी से आपके बल की वृद्धि होगी। यही आपकी आन्तरिक शक्तियो का विकास करेगा।

अतएव निर्भय होकर अपने जीवनोद्देश्य पर डट जाओ। किसी से भय मत करो, क्योंकि भय आपकी जीवनरूपी लकडी को घुन लगाता है और अन्दर-ही-अन्दर से खा डालता है। भय को निकट मत आने दो। यह बडा दुष्ट है। इसके वश में पडा हुआ मनुष्य निकम्मा हो जाता है। यह मनुष्य को नीच बना देता है। उसके मनुष्यत्व को नष्ट कर डालता है। जो आपको भय दिखाता है, समझो वह बडा स्वार्थी है। उसका अपना आत्मा निर्बलताओं से भरा हुआ है। उससे कभी मत डरो।

यह ससार आनन्द से पूर्ण है। उस आनन्द से वही आत्माये लाभ उठा सकती है जिन्होने जीवनोद्देश्य को समझ कर उसकी सिद्धि पर कमर बाँधी है। भीरु, कायर मनुष्य अपना शत्रु आप ही है। वह कठिनाइयों से भागना चाहता है, पर भाग नही सकता। रोता है, चिल्लाता है, इससे उसका दुःख और भी बढता है। उसका जीवन कण्टकमय हो जाता है। वह जहाँ जाता है, अपने दुःख की गठरी साथ ले जाता है।

इसलिए दुःखो तथा कठिनाइयो का मर्द बनकर सामना करो। इनसे हरगिज़ मत डरो। ईश्वर पर सच्चा विश्वास रख अपने कर्तव्य पर आरूढ हो जाओ और अपने दूसरे निर्बल भाइयों को दृढतापूर्वक यह महामन्त्र सिखलाओ—"I will find a way or make one"—अर्थात् जब आपको किसी काम के करने में बडी दिक्कतो का सामना करना पडे और कोई रास्ता दिखलाई न दे, उस समय आपके अन्दर से ही यह आवाज़ आनी चाहिये—"मै रास्ता पा लूगा या नया बना लूगा।" ऐसे हिम्मती लोगो के लिए दुनिया में कोई काम असम्भव नही।

अपनी विजयों से उन्मत्त महावीर नैपोलियन बोनापार्ट जब इटली जीतने के लिए एल्प्स के दुर्गम पर्वतों को पार करने लगा तो उसके आगे

चलने वाले सेनानायकों ने मार्ग को असम्भव बतलाया। उस महा-पराक्रमी नैपोलियन ने हँसते हुए कहा—"असम्भव शब्द मेरी डिक्शनरी में नहीं है।" उसी कठिन कथन के अनुसार उसने रास्ता तैयार करवा लिया और उसी मार्ग से ही अपनी बडी सेना और तोपो के साथ इटली पर आक्रमण किया। यह है साहसी लोगों का मार्ग! भीरु और कायर बाधाये देखकर मैदान छोड जाते है। अतएव इस ससार में सिपाही बन कर बाधाओ का मुकाबिला कीजिए और कभी भी हिम्मत न हारिये। चरित्र-सगठन का यह एक सर्वश्रेष्ठ गुण है।

भाई! सुनो मन लगाकर बात मेरी,
चाहो बनें सफलता बिन दाम चेरी;
लो मन्त्र-मोहन जपो—"विजयी बनेगे!
आवें हज़ार विपदा तब भी लड़ेगे।"

('अनुभव' में से)



सुर्खरू होता है इन्सान सख्तियाँ सहने के बाद।
रङ्ग लाती है हिना पत्थर पर घिस जाने के बाद॥

★

Presence of mind and courage in distress,
Are more than armies to procure success.



पन्द्रहवाँ पुष्प

कर्तव्य-पालन

यदि आप अपनी शक्ति के अनुसार कार्य करने मे लगे हुए है, तो फिर डर ही क्या है ? आपको हरगिज़ कभी घबराना नही चाहिए। मनुष्य का कर्तव्य यही है कि वह अपनी शक्ति के अनुसार काम करे, सब प्रकार की बाधाओ का सामना करने को उद्यत रहे। कभी भी सम्भव नही कि उसको कार्य में सफलता प्राप्त न हो।

फिर देखिए, शायद कही कर्तव्य-पालन में त्रुटि रह गई हो। त्रुटि के होने से ही ये सब बाधाएँ उपस्थित होती है। आप चाहते है कि शीघ्र ही आपका काम बन जाए और वह भी बिना पूरा उद्योग किये। भला ऐसा कैसे सम्भव है ? जिस प्रकार का काम हो, उसी प्रकार का उद्योग भी चाहिए। कठिन काम को दृढव्रती पुरुष ही कर सकते है। जिनकी गति मन्द है, जिनमें धैर्य और सहिष्णुता नही, वे भला कठिन काम कैसे कर सकते है ?

परेशान मत हूजिए। यदि एक बार काम नही हुआ तो यह आवश्यक नही है कि फिर भी वह न हो। उसके लिए दोबारा यत्न करना चाहिए। कभी काम को अधूरा न छोड़िए। काम को अधूरा छोडना ही निर्बलता का चिन्ह है और जब एक बार मनुष्य इस निर्बलता का शिकार हो जाता है तो धीरे-धीरे उसकी शक्तियाँ क्षीण होने लग जाती है। जिस काम को आरम्भ करो, उसको पूरा करो। इसलिए नही कि दुनिया हमारी प्रशंसा करे, बल्कि इसलिए कि हमारी आत्मा निर्बल न हो जाए। काम कैसा ही साधारण क्यों न हो, उसको कभी भी अधूरा न छोडना चाहिए। इससे दैवी गुणों का विकास होता है। काम आरम्भ कर उससे मुंह मोड़

लेना मनुष्य के आचार को बिगाड़ता है। यदि छोटे-छोटे कामों में सावधानी की जाय, तो मनुष्य बड़े-से-बडे काम को भी पूरा कर लेता है। यह केवल अभ्यास पर निर्भर है। कर्मवीर वही लोग होते हे जो पीठ दिखाना नही जानते। कार्यसिद्धि ही जिनके जीवन का आनन्द है वे ही हकीकत में अपना कर्तव्य पालन करते है।

यदि आप अपने जीवन में सफलता प्राप्त करना चाहते है तो इस बात का प्रण करें कि हम जिस काम को पकडेंगे उसे कभी भी अधूरा नहीं छोड़ेंगे। याद रखिए—"Where there is a will there is a way." अर्थात् जहाँ इच्छा बलवती होती है वहाँ पथ भी मिल जाता है। यह सिद्धान्त जिन मनुष्यो का है उनके लिए ससार में कोई भी काम कठिन नही है। जब कभी सफलता प्राप्त न हो तो हरगिज़ हिम्मत न हारिए; बल्कि सोचिए, विचारिए, अपनी त्रुटियो को देखिए; फिर दोबारा हिम्मत करके काम के पीछे पड़ जाइये। हमेशा प्रसन्नचित्त रहकर काम करने में मन लगाइये और यही देख लिया कीजिये कि क्या हम अपने कर्तव्य का पालन कर रहे है ?

वह छोटा-सा लडका कैसेबियंका अपने बाप की आज्ञा से जहाज़ के डैक पर एक कोने मे खड़ा था। उसके पिता ने उसे हुक्म दिया था—"जब तक मै तुम्हें न पुकारूँ, हरगिज़ अपनी जगह से मत हटना।" वह लड़का सिपाही की तरह अपनी जगह पर डट कर खड़ा रहा। अचानक जहाज़ को आग लग गई। चिनगारियाँ उडने लगी और नीचे से लपटें निकलने लगी, लेकिन वह बहादुर वही खडा था। आग धीरे-धीरे उसके नज़दीक आने लगी। लडके ने अपने पिता को आवाज़ दी—"पिता जी, मै आऊँ ?" परन्तु उसे कोई उत्तर नही मिला। आग तेज हो रही थी और उसकी ओर बढ रही थी। जब उससे एक गज़ के फासले पर रह गई, तब वह वीर बच्चा चिल्ला कर बोला—"पिता जा, आग मुझे जला देगी, इसलिए मुझे शीघ्र बुला लीजिए।" पर अफ़सोस ! उसका पिता जल चुका था, वह उत्तर कैसे देता ! आग निर्दयता से कैसेबियका की

ओर बढी, मगर वह निर्भय होकर अपनी जगह पर डटा रहा । अग्नि देवता ने उसे पकड लिया और अपनी गोद में लेकर उस बच्चे को आशीर्वाद दिया । उस जहाज पर बहुत से लोग जल गये होगे, लेकिन कैसेबियका जैसा अमरत्व किसी ने नही पाया ।

उस घटना को आज कई सौ वर्ष बीत गए, लेकिन कर्तव्य-पालन और अनुशासन का यह दिव्य आदर्श लाखो बालको को स्फूर्ति देता रहा है और भविष्य में भी देगा । प्रसिद्ध अग्रेजी लेखक एफ० डब्ल्यू० राबर्टसन ने इस विषय पर कैसे सुन्दर भाव प्रकट किये है—

"To stand with a smile upon your face against a stake from which you cannot get away, that, no doubt, is heroic. But the true glory is resignation to the inevitable. To stand unchained, with perfect liberty to go away, held only by the higher claims of duty, and let the fire creep up to the heart, this is heroism."

अर्थात् कर्त्तव्यपालनार्थ यदि किसी व्यक्ति को जलते हुए खम्भे के साथ जजीरो से बाँध दिया जाये, जिससे वह भाग न सके, और वह व्यक्ति तिस पर भी अपने चेहरे पर कोई घबराहट न आने दे, नही-नही, वह मुस्कराता रहे, निश्चय ही ऐसा व्यक्ति वडा वीर और साहसी है । परन्तु अमरत्व पद उसका है जो अनिवार्य के सामने प्रसन्नता से डटा रहता है । उसके हाथो और पांवों में किसी प्रकार की जंजीरें नही; यदि वह चाहे तो भाग सकता है, लेकिन वह नही भागता, क्योकि कर्त्तव्यपालन की पवित्र जजीरो से वह जकडा हुआ है, यद्यपि खम्भे की जलती हुई आग की लपटे निर्दयता से उसे जला रही है । ऐसा नररत्न सचमुच वीरशिरोमणि है और उसे हम झुक कर नमस्कार करते है ।

सोलहवाँ पुष्प

व्यभिचारी कौन है ?

जिस समय कोई स्त्री, विधवा हो या सधवा, बुरी संगत से अथवा अज्ञानवश, अपने रूपलावण्य को बेचने के लिए बाज़ार मे जाकर दुकान कर लेती है तो हमारे सभ्य-समाज में बेतरह शोर मचने लगता है । घर वालो तथा बिरादरी वालो की ओर से गालियो की बौछाड़ उस पर पड़ती है; पत्रो के सम्पादक उसको कोसने में अपनी सारी योग्यता खर्च कर देते है और ऐसे विह्वल हो उठते है मानो उन पर कोई बम का गोला गिरा हो ।

जिस समय कोई नवयुवक, क्वारा हो या गृहस्थ, कामान्ध होकर अथवा बहका हुआ, अपने धन को खर्च कर या काम का भूत बन कर क्षणिक सुख का दास बनता है तो समाज के चारो कोनो से "दुर ! दुर !!" की आवाज उठती है; उससे घृणा करने का उपदेश दिया जाता है; उसके अपराध को बहुत बडा बना कर आकाश-पाताल को एक किया जाता है ।

इन कोसने वाले स्वयम्भू नेताओ तथा सदाचार की डीग हांकने वालो से कोई कहे—"तुमको दूसरे की आँखो का तिनका तो बहुत बड़ा दिखाई देता है, पर अपनी आँखो का शहतीर भी नही सूझता ।" क्या उन्होने कभी 'व्यभिचारी' शब्द के अर्थ पर पूर्णतया विचार किया है ? हमने मान लिया कि उपरोक्त दो भूले ऐसी है जिनसे जाति के बच्चो की रक्षा करना हमारा कर्त्तव्य है, पर असल में जिनको पक्के दुराचारी और व्यभिचारी कहना चाहिये उनको तो आप अपने सिर पर उठाये हुए हैं । सुनिये, 'कामदेव' की जबरदस्त चोटो के आगे यदि कोई अज्ञानी

युवा भाग निकले, तो इसमें कोई आश्चर्य करने का स्थान नही। संसार में कोई ऐसा साहित्य नहीं जिसमे वसन्त ऋतु के महाराजा 'कामदेव' के लड़ाई-झगड़ो की गाथाये न हो। बड़े-बड़े ऋषियों को उसने चपते लगाई है, पर इससे उनकी उच्चता मे कोई धब्बा नहीं लगा। क्यो ? कारण यही है कि प्रकृति माता के राज्य मे 'काम' की एक व्यापक शक्ति है, जिसका प्रभाव पुरुष तथा स्त्री पर उसके शरीर की बनावट के अनुसार, बरसाती पहाडी नदी की भांति, पडता है, जिसका वेग रोकने के लिए बड़े आत्मिक बल की आवश्यकता है।

भला वह स्त्री व्यभिचारिणी क्यो है जो मूर्खतावश अथवा सामाजिक अत्याचारो से तग आकर बुराई का पथ अवलम्बन करती है ?

अथवा वह मनुष्य दुराचारी क्यों है जो हिन्दू-समाज में फैली हुई कुरीतियों (कन्याविक्रयादि) अथवा कुसगवश अपने चरित्र को दूषित करता है ? ऐसे लोग तो हमारी दया के पात्र होने चाहियें; उनके साथ सच्ची सहानुभूति कर उनको धर्म का पथ दिखलाना उचित है।

अब प्रश्न उठता है—व्यभिचारी कौन है ? इस घृणारजित शब्द से किसको सम्बोधन करना चाहिये ? कौन इसका उपयुक्त पात्र है ? इन प्रश्नो का उत्तर स्पष्ट है। व्यभिचारी वह है जो प्राचीन अथवा अर्वाचीन शिक्षा की उच्च से उच्च पदवियो से विभूषित, वैज्ञानिक तर्कों से अलकृत, ईश्वरदत्त शक्तियो से सुसज्जित अपनी असाधारण 'मानसिक सुन्दरता' को मण्डी मे ले जा कर बेच देता है; जो रुपये की खातिर दूसरो का क्रीतदास बना हुआ अपनी आत्मा के विरुद्ध कहता है, बोलता है और सलाह देता है।

इसी का दूसरा नमूना देखिये। व्यभिचारी वह है जो बात-बात में धर्म की दुहाई देता हुआ चिल्लाता है, जो प्राचीन महापुरुषों के गुण गाता हुआ नहीं थकता, जो धर्म का ठेकेदार बनता है, पर जब किसी पापी बलवान् से काम पड़ जाता है तो झट उसके पाँव चूमने पर उतारू हो जाता है। असल में इस शब्द का व्यवहार उन मनुष्यों के लिए करना

चाहिये जो अपनी विद्या-बुद्धि को टके के लिए बेचते हैं, जो टका को उसी के गीत गाते हैं। ऐसे मनुष्य देश और समाज के शत्रु हैं, वे घृणा के पात्र हैं। कारण यह है कि उनकी विद्या जहर बन कर समाज में प्रवेश करती है और उनकी देखादेखी उनके पीछे आने वाली सन्तान भी उनके दोषों को ग्रहण कर लेती है। शिक्षित होने के कारण वे लीडर कहे जाते हैं और जो उनका अनुकरण करते हैं वे भी गढे में गिर जाते हैं। उनका कर्तव्य तो यह था कि अपनी विद्या-बुद्धि द्वारा आत्मिक शक्ति बढा, सिंह बन कर, अपने पीछे चलने वालो को भी वीर बना देते, पर ऐसा न करके वे उलटा जाति को नपुंसक बनाते हैं। ऐसे ही लोगो द्वारा जाति का बल-वीर्य नष्ट हो जाता है। वेश्याओ की तरह, चमकने वाले आभूषण अर्थात् अपनी डिगरियाँ पहन कर, वे खूब फूले-फूले घूमते हैं और अपने आप को बडा सुन्दर बना कर दिखलाते हैं। पर जिनको आँखें हैं वे जानते हैं कि इन पापियो ने अपना मानसिक ब्रह्मचर्य्य नष्ट कर ये सब उपाधियाँ प्राप्त की हैं।

इसलिए स्मरण रखिए, किसी जाति का अधःपतन उस समय होता है जब उसके कुशाग्रबुद्धि विद्वान्, शिक्षित धीमान्, दिग्गज पण्डित, बड़े-बड़े नेता कहलाने वाले रण्डियो की भाँति अपनी विद्या-बुद्धि को बेचने लग जाते हैं। उन्हे जहा अधिक रुपया मिलता है, वे वही जाकर मुजरा करने लगते हैं। जब यह दुर्दशा हो जाती है, तब उस जाति की रक्षा कोई नही कर सकता। भारत अपने सदाचार मे आज भी किसी सभ्य जाति से पीछे नही। हमारी पतिव्रता स्त्रियो के सन्मुख दूसरे देशो की स्त्रिया पानी भरती हैं। परन्तु भारत मे जैसा विद्या-बुद्धि का व्यभिचार होता है, वैसा और देशो मे नही पाया जाता। यहा अधिकाश शिक्षित हीजड़ो की तरह हैं। उनमे आत्मिक बल का सर्वथा अभाव है। अपने सिद्धान्तों के लिए वे किसी प्रकार का भी बलिदान करने को तैयार नही हैं। इस कारण भारत नीचे पडा सिसक रहा है। यही हमारे अधःपतन का मुख्य कारण है। जब तक हमारे शिक्षित समुदाय में, धीमान्

बर्क (Burke) के शब्दों में—

"Chastity of honour which
feels a strain like a wound."

"गौरव की शुचिता जो लांछन को घाव की भाँति अनुभव करे"—ऐसा आदर्श न आ जाय, तब तक हमारी दशा शोचनीय बनी रहेगी। जिस देश के शिक्षितो को अपनी 'लियाक़त' बेचने में लज्जा नही आती, जो छद्मवेषी है, उन से बढ कर पतित कौन होगा ? पैसे-रुपये की खातिर वे सब प्रकार के कुत्सित कर्म करने को उद्यत है।

अमरीका के एक शिक्षित पुरुष, जोसफ़ रीड, अपने देशहित-साधनार्थ योरुप के किसी देश में गये थे। वहा के राजा ने उनको रिश्वत दे कर अपनी तरफ करना चाहा। जो मनुष्य ऐसे नीच कर्म का सन्देश रीड महोदय के पास लाया था, उसे कैसा उत्तर मिला, सुनिये—

"I am not worth purchasing, but such as I am, the king of your country is not rich enough to buy me."

"मै गरीब खरीदने लायक नही हूँ, लेकिन जैसा मै हूँ, आपके देश का राजा मुझे खरीदने योग्य धन नही रखता।" ऐसे लोगो से देश का उत्थान होता है; ऐसे ही लोग सच्चे ब्रह्मचारी है। हमारे पढे-लिखों मे ऐसे ब्रह्मचारियो का अभाव है। यहाँ तो ऐसे पढे-लिखो की भरमार है जो रिश्वत मिलने पर सब दुष्कर्म करने को उद्यत हो जाते है।

न्यूयार्क (अमरीका) शहर के समाचारपत्र 'न्यूयार्क टाइम्स' के सम्पादक जार्ज जौन्स को वहां के धनवान् लोगों ने कहा—"यदि आप हमारी बुराइयो के विषय में चुप रहें, अपने पत्र में न छापें, तो हम आप को तेतीस लाख रुपया देगे।" उस वीर ने ऐसे 'व्यभिचार' पर थूक दिया और उनकी अच्छी तरह पोल खोली। ऐसे ही लोग नवयुवकों के पथ-प्रदर्शक तथा जाति के नेता बनने योग्य होते हैं।

मेरे देश के प्यारे नवयुवको ! आप अपने देश के धनलोलुप, स्वार्थी,

पुछल्लड़बाज तथा फोनोग्राफी शिक्षा वाले लीडरो के पीछे मत चलिये। ये लीडर नही; ये ही असला व्यभिचारी है । ये आपको अपनी तरह नपुंसक बना रहे है। आप अभी से अपना चरित्र सुधारिये, वीर्य्यरक्षा कीजिये, आत्मिक बल बढ़ाइये और सब से बढ कर अपनी विद्या-बुद्धि, योग्यता का सदुपयोग करना सीखिये। विद्या-बुद्धि को धन के लिए बेचना ही असली व्यभिचार है।



I slept and dreamed that life was beauty ;
I woke, and found that life was duty.

★

Character is higher than intellect. A great soul will be strong to live, as well as to think.

★

Unlearn'd, he knew no schoolman's subtle art,
No language but the language of the heart.
By nature honest, by experience wise,
Healthy by temperance and by exercise.



सत्रहवाँ पुष्प

पाप की चरम सीमा

यूनाइटेड स्टेट्स ग्रॉफ ग्रमरीका के इतिहास में ग्ररनल्ड का नाम ऐसा ही कलङ्कित है जैसा कि भारतवर्ष के इतिहास मे राजा जयचन्द का। दुष्टता की चरम सीमा पर पहुँचने वाला भी इतिहास मे प्रसिद्ध हो जाता है, क्योकि उसका उदाहरण दूसरो को बुराई से दूर रहने का उपदेश देता है—खासकर ऐसी बुराई जो जाति ग्रथवा देश को हानि पहुँचाने का करण बन सके। जयचन्द को सभी इतिहासज्ञ घृणा की दृष्टि से देखते हैं ग्रौर ग्राने वाली सन्तान उसके मुह पर ग्रौर ज्यादह कालिख पोतेगी। उसने वह कुकर्म किया जो सभ्य मनुष्य कदापि नही कर सकता।

ग्रमरीका के इतिहास मे ग्ररनल्ड भी ऐसा ही हुग्रा है। १७७६ में, जब ग्रमरीका वालो ने स्वतन्त्रता के लिए युद्ध ग्रारम्भ किया, सभी देशभक्त ग्रपने ग्रस्त्र-शस्त्र सँभाल कर रणभूमि मे ग्रा डटे। ग्ररनल्ड भी देशभक्त बनकर ख्याति की इच्छा से फौज मे भरती हुग्रा। दो-चार युद्धों मे उसने बडी वीरता दिखाई। देश में उसकी प्रसिद्धि होगई। बस, फिर क्या था—वह फूल कर कुप्पा होगया। स्वनामधन्य जार्ज वाशिङ्गटन ने उसे एक विश्वासपात्र पद पर नियत कर दिया। यहाँ पर किसी कारण से रुष्ट होकर उसने ग्रपने देश को शत्रुग्रो के हाथ बेचने का निश्चय कर लिया। सब तैयारी होगई, परन्तु ईश्वर को ग्रमरीका की रक्षा करनी थी। ग्ररनल्ड का भेद खुल गया। उसका भेद खुलने पर वह ग्रपने एक मित्र से मिलने गया। उसके मित्र को ग्ररनल्ड की विश्वासघातकता का पता मिल चुका था। उसने ग्ररनल्ड को बेतरह फटकार कर कहा—

"ग्ररे ट्रेटर, दूर हट जा, मै तेरा मुह देखना नही चाहता। पापी !

जिस जननी जन्मभूमि ने तुझे जन्म दिया है उसी के प्रति विश्वासघात ? जिसकी प्यारी गोद में बैठ कर तूने दूध पिया है, जिसके अन्न से तेरा यह शरार बना है, जिसका जलवायु तेरी नस-नस मे व्याप्त है, उसी के प्रति यह कृतघ्नता ? दूर हो ! दूर हो चाँडाल ! अपनी घृणित थोथनी को ले जाकर चुल्लू भर पानी में डुबो दे।

"अरे नराधम ! जिस धन के लिए तू यह निन्दनीय कर्म करता है, क्या उसको तू छाती पर उठा कर ले जायगा ? अरे देशद्रोही ! जिनकी तू खुशामद करता है, जिनके लिए तूने यह सब स्वाग रचा है, वे भी तुझ से घृणा करते है। अरे मूर्ख ! वे तेरा रत्ती भर विश्वास नही करते। तू किस भूल मे पडा है ! अरे निर्लज्ज ! वे सब तेरी खिल्ली उडावेगे और तुझको पाखाने के कीडे से भी बदतर समझेंगे।

"रे नरपिशाच ! जिनका तू क्रीतदास बना है वे तेरे घोर शत्रु है। वे तुझे नरक मे घसीट रहे है। अरे देशद्रोही ! अपनी माता के प्रति कृतघ्नता कर तेरा कहाँ ठिकाना लगेगा ?

"अरे मूर्ख ! सब पाप 'देशद्रोह' के पाप के सामने तुच्छ है। अरे पापिष्ठ ! क्या तुझे मालूम है कि ट्रेटर (traitor) इस शब्द में कैसी घृणा भरी हुई है ? इससे बढ कर कृतघ्नता हो नहीं सकती। यह कृतघ्नता की चरम सीमा है। देख ! अपनी ओर देख ! शीशे में अपनी शक्ल देख ! कोढिओ जैसा तेरा चेहरा है। जननी जन्मभूमि की फटकार तेरे माथे पर है। स्मरण रख, तेरे शरीर को कृतघ्नता के कीड़े नोच-नोच कर खा जायगे। तेरे प्राण तड़प-तड़प कर निकलेगे। भावी सन्तान तुमको याद कर कोसेगी, देशद्रोहियो की लिस्ट मे तेरा नाम दर्ज होगा। तेरा वश समूल नष्ट हो जायगा।

"जा, चला जा मेरे सामने से। तू मेरे घर की वायु को अपवित्र मत कर।"

यह है देश के प्रति विश्वासघात का परिणाम। सब जातियो के

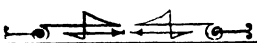
इतिहासवेत्ता अरनल्ड को धिक्कारते है, सारे संसार के लोग उस पर थूक रहे है। अमरीका के इतिहास में सका नाम काले अक्षरो में लिखा हुआ है।

अच्छा, तो देशद्रोह पाप की चरम सीमा क्यो ? सुनिए। एक होता है व्यक्तिगत पाप और दूसरा होता है समष्टि-सम्बद्ध पाप। जब कोई मनुष्य विषय-भोग के वशीभूत होकर अपने शरीर के साथ अत्याचार कर लेता है, तो वह उसका व्यक्तिगत अपराध है—वह उससे केवल अपनी ही हानि करता है। जब वह पुरुष कामान्ध होकर किसी स्त्री से बलात्कार करता है, तो वह उस नारी की स्वतन्त्रता का अपहरण करता है, इसलिए उसका अपराध गुरुतर है। जब दो स्त्री पुरुष स्वेच्छा से काम-चेष्टा कर लेते है, तो उनका अपराध इतना गुरुतर नही माना जाता क्योकि यह उनकी व्यक्तिगत बात होती है। जब कोई व्यक्ति झूठ बोलता है—ऐसा झूठ जिससे उसी की हानि हो, तो वह उसका व्यक्तिगत अपराध है। वह पुरुष इतना दण्डनीय नही माना जाता। परन्तु जब वह किसी जिम्मेदार पद पर नियुक्त होकर ऐसा झूठ बोल देता है जिससे स विभाग के साथ सम्बन्ध रखने वाले लोगो की हानि होती है, तो उसका अपराध गुरुतर माना जाता है। जब मनुष्य किसी के साथ वचनबद्ध होकर उस अपने वायदे को पूरा नही करता, तो वह अपनी साख खो देता है और हम उसे चरित्रभ्रष्ट कहते है। इसी प्रकार जो व्यक्ति राग-द्वेष के वशीभूत होकर अपने इर्द-गिर्द के लोगो को हानि पहुँचाता है, उसे भी हम दुश्चरित्र कहते है।

लेकिन यदि कोई व्यक्ति अपने देश के साथ द्रोह करता है, अपनी जन्म-भूमि के प्रति विश्वासघात करता है, पैसे की खातिर उसकी मान-मर्यादा बेच देता है अथवा धन के लोभ से उसे अपने देश के शत्रुओ का गुलाम बनने मे मदद देता है, तो उसका अपराध गुरुतर हो जाता है, क्योकि उसके पाप से उस देश की करोड़ो आत्माओ को दुःख भोगना पड़ता है। जैसे शरीर मे यदि किसी एक अगुली के छोटे-से भाग मे ज़हर

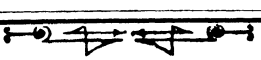
चढ जाय तो वह ज़हर सारे शरीर में व्यापक होकर उसका नाश कर देता है, ठीक इसी तरह देश-द्रोही मनुष्य का घृणित पाप सारे देश के लोगों को ग्रस लेता है। जैसे चतुर डाक्टर अंगुली के ज़हरीले भाग का काटने में ही शरीर का कल्याण समझता है, ऐसे ही देश के साथ द्रोह करने वाले को दूर करने में देश का भला माना जाता है और उसके उस अपराध को पाप की चरम सीमा कह कर देश के बच्चों को उससे बचने का उपदेश दिया जाता है। प्रत्येक देश के शुभ-चिन्तकों ने देश-द्रोह को सब पापों की खान बतलाया है और वहाँ के समाज के लोग देश के साथ विश्वासघात करने वाले से ऐसा दूर भागते हैं, ऐसे सावधान रहते हैं, जैसे काले नाग से।

स्मरण रखिए, देश-द्रोह से बढ़कर दूसरा कोई पाप नहीं।



Is there not some chosen curse,
Some hidden thunder in the stores of heaven,
Red with uncommon wrath, to blast the man
Who owes his greatness to his country's ruin ?

A traitor to his country commits equal treason against mankind.



अट्ठारहवाँ पुष्प

धर्म का यथार्थ स्वरूप

आज-कल धर्म के विषय में संसार में बड़ी भ्रान्ति फैली हुई है। चिन्तनशील लोग यह कहने लगे है कि धर्म ही सब झगड़ो की जड़ है। उनकी शिकायत है कि जब से समाज का संगठन हुआ है, तब से ईश्वर और धर्म के कारण भयंकर मार-काट और युद्ध इस संसार में होते आये हैं। दूसरी लड़ाइयों से इतने आदमी दुनिया में नही मरे जितने धार्मिक झगड़ो के कारण मरे है। मुसलमान और ईसाइयों के बीच जो मज़हबी लड़ाइयाँ हुई है, उनके कारण जो भयकर नरसंहार हुआ है, उसे इतिहास-वेत्ता भली प्रकार जानते है। रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टेट, जो एक ही मसीहा, एक ही बाइबिल और एक ही खुदा के मानने वाले है, हिसक पशुओ की तरह आपस मे लड़ते रहे और उन्होने एक दूसरे को जीता जलाया। आज भी ईसा की इस बीसवी शताब्दी में भारतवर्ष के हिन्दू और मुसलमान मज़हबी मतभेदों के कारण कुत्ते-बिल्लियो की तरह आपस में लडते है। सन् १९२४ में बम्बई के दगे के कारण कितना भारी उत्पात होगया, कितना वैमनस्य देश में बढा, इससे सभी पढे-लिखे परिचित है। हमारे नवयुवक अत्यन्त दुःखित होकर यह कहने लगे हैं कि जब मजहब और ईश्वर को ताक में रख दोगे, तभी देश समृद्ध होगा। इस धर्म के पचडे ने ही हिन्दुओं के सैकड़ो टुकड़े कर दिये है और मज़हब का यही ढकोसला हिन्दू-मसलमानो को एक नही होने देता। इस प्रकार की बात आज हमारे कानों में बराबर सुनाई पड रही है।

ऐसे ही रूस में मज़हब का अन्त करने के लिए पिछले दिनों एक बड़ी भारी कान्फ्रेन्स हुई थी। वहाँ के लोग ईश्वर और धर्म का नामो-

निशान दुनिया से मिटा देना चाहते थे, ताकि संसार में भ्रातृ-भाव और स्वतन्त्रता फैल सके। संसार में सभी देशों के साम्यवादी इस धुन में हैं कि मजहब ने जो ज़बरदस्त बाधायें मानवीय विकास के मार्ग में खड़ी कर दी है, वे अब हटा दी जायँ और मजहब के ठेकेदार समूल नष्ट कर दिये जायँ।

निस्सन्देह इस क्रान्ति के युग में पक्षपात छोड़कर धर्म के सम्बन्ध में विचार करने का समय आ गया है। आज से ढाई हजार वर्ष पहले भगवान् बुद्ध ने इस सम्बन्ध में बड़ी भारी खोज की थी और वे इस परिणाम पर पहुँचे थे कि मनुष्य का जीवन ही मुख्य चीज़ है और दुःखों की निवृत्ति पूर्ण संयम से हो सकती है। जो इच्छाओं को जीत लेते हैं और जीवन को पवित्र बनाते है, वही सच्चे धार्मिक हैं। उस काल में भगवान् बुद्ध के पुरुषार्थ से एशिया में अद्भुत जागृति हुई थी। बड़े-बड़े विश्वविद्यालय भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न भागो में स्थापित हुए थे, जहाँ दूर-दूर देशो के हजारो विद्यार्थी बौद्ध-धर्म की शिक्षा ग्रहण कर अपने को धन्य मानते थे। बौद्ध-विहारो में जनता की सेवा करने वाले भिक्षु तपस्वियो का जीवन व्यतीत कर धर्म का यथार्थ स्वरूप समझाते थे। उस काल की गाथाये और नर-नारियो के चरित्र आज भी हमे आश्चर्य मे डाल देते है। ससार के उस सबसे पहले क्रान्तिकारी गौतम बुद्ध ने धर्म के द्वारा होते हुए अनाचारो को देखकर ही मध्यम पथ का झण्डा उठाया था।

तब से आज तक कितना पानी पुलों के नीचे से गुजर गया है। नये-नये आचार्य, मसीहा, पैगम्बर, पीर, सन्त और फकीर धर्म-सम्बन्धी अपना-अपना सन्देश लेकर आये। कितने नये-नये प्रकार के सम्प्रदाय तब से अब तक संसार मे चल गये, परन्तु जनता अन्धकार से न निकली और न ससार को सुख और शान्ति की ही प्राप्ति हुई। शताब्दियों के बाद आज भगवान् बुद्ध की तरह सैकड़ों चिन्तनशील जिज्ञासुजनो के हृदयों में प्रचलित मजहबों तथा सम्प्रदायो के प्रति घृणा का भाव उत्पन्न

हो गया है और वे भी धर्म के नाम पर होते हुए घोर पापों के विरुद्ध संग्राम करने के लिए खड़े हुए हैं।

सत्य बात यह है कि बौद्ध-कालीन कुछ प्रभावशाली भिक्षुओं ने बौद्ध-धर्म को सम्प्रदाय का रूप देकर उसकी उपयोगिता को घटाना आरम्भ कर दिया था। तब से सम्प्रदायों को ही धर्म समझने की परिपाटी संसार में चल निकली। यदि भगवान् बुद्ध के बनाये हुए धर्म-पथ को पीछे आने वाले जिज्ञासु और अन्वेषक विशाल बनाते रहते और "अपनी-अपनी ढफली, अपना-अपना राग" की उक्ति को चरितार्थ न करते तो आज संसार अनन्त ज्ञान के पथ पर अग्रसर हुआ होता। अब हुआ यह कि सम्प्रदायो के प्रवर्त्तकों को ही पूर्ण पुरुष मानकर उनके भक्तों द्वारा कही हुई मिथ्या कथायें और रूढ़ियाँ ही सच्चे धर्म के रूप में परिणत हो गई है। धर्म के अन्वेषण का द्वार बन्द कर अपने-अपने पीर-पैग़म्बरों, मसीहाओं और सन्तों-महन्तों के नाम की दुकानें खोल ली गई हैं और सब अपने-अपने ग्राहक बढ़ाने के लिए लड़ाई कर रहे है।

क्या हम संसार में ईश्वर और मज़हब के नाम पर दूकानदारी करने के लिए आए हैं ? रात के समय आँखें उठाकर निर्मल आकाश की ओर देखिये। यदि अँधेरी रात है तो आपको आकाश में चमकते हुए हज़ारों तारागण दिखाई देंगे। आप इनके विषय में क्या जानते हैं ? कुछ नहीं। कितना अनन्त ज्ञान हमारे जानने के लिए है और कैसी शून्यवत् हमारे ज्ञान की पूँजी है ! हम इस संसार में सत्य, शिव और सुन्दर की खोज के लिए आए है। इस ब्रह्माण्ड में हमें उसी की खोज करनी है और प्राकृतिक बन्धनों से मुक्त होकर सच्ची स्वतन्त्रता का मज़ा चखना है।

ऐसा न कर हम सम्प्रदायों के तङ्ग दायरे में फँसकर अपने इर्द-गिर्द ईंटो की दीवारें खड़ी कर लेते है और वहीं ईश्वर की खोज करने लगते हैं। तब हमारी मानसिक अवस्था ऐसी पतित हो जाती है कि हम ईश्वर के आदर्श को भूलकर मन्दिरों, मस्जिदों और गिर्जों के लिए लड़ने लगते हैं। हम जानते हैं कि मस्जिद की टूटा हुई दीवार फिर बनाई जा सकती

है, लेकिन मरा हुआ मनुष्य या स्त्री फिर जीवित नहीं किया जा सकता। सम्प्रदाय के कीचड़ में फँसकर हमारी बुद्धि ऐसी मन्द हो जाती है कि हम अपने ईंट-पत्थरों के मन्दिर की खातिर ईश्वर के बनाये हुए उस मन्दिर को तोड़ने के लिए तैयार हो जाते हैं जिसे हम दुबारा नही बना सकते। हमारा पतन कितना गहरा हो जाता है ! मस्जिद के ईंट-पत्थर हमें खुदा की बनाई हुई चीज़ों से अधिक प्यारे लगने लगते है। हमने खुदा का रास्ता छोड़ दिया है और ईंट-पत्थरों का रास्ता पकड़ लिया है। खुदा की तलाश करने वाले धार्मिक लोग मन्दिर, मस्जिद और गिर्जे नहीं बनाया करते, क्योंकि वे जानते है कि ये भेद को बढ़ाने वाली चीजें है। हमें तो वह धर्म चाहिए जो हमारे भेद-भाव को दूर करे और मनुष्य को मनुष्य से मिलावे। सम्प्रदाय और मज़हबी इमारतें मानव-समाज की फूट को बढाने वाली हैं। हमें इनके सदुपयोग का तत्काल प्रबन्ध करना चाहिए। मन्दिरों को पुस्तकालयों और व्यायामशालाओ के लिए काम में लाइए; मस्जिदो को व्याख्यान-भवन बनाइए और गिर्जों में सङ्गीतालय स्थापित कीजिए। फिर देखिए कि आपके भेद-भाव कितनी जल्दी दूर भागते है। जो आदमी हमारी मस्जिद, हमारे मन्दिर, गिर्जे अथवा गुरु-द्वारे मे आ जाता है, उसे हम अपना मानने लगते हैं और जो हमारे इन पूजा-स्थानों में हमारे साथ सम्मिलित नही होता उसे हम अपने से अलग समझते हैं।

जब थियोसोफिकल सोसायटी के जन्मदाता कर्नल अलकाट और मैडम ब्लेवट्स्की ने संसार के सामने विश्व-बन्धुता की घोषणा की थी और कहा था कि हमारी सोसायटी में सब मजहबों के लोग आकर सम्मिलित हो सकते है, तब वे विश्व-बन्धुता के मार्ग से दूर हट गये थे और उन्होंने अपना एक नया सम्प्रदाय खड़ा कर लिया था। मिसेज बीसेंट ने उस सम्प्रदाय की वृद्धि के लिए जी-जान से कोशिश की और सभ्य संसार को क़ाबू में करने के लिए बालक कृष्णमूर्त्ति को प्रभु मैत्रेय का अवतार बनाया। आगे चलकर उसी कृष्णमूर्त्ति ने विश्व-बन्धुता के शत्र

उस जाल को काट कर फेंक दिया और संसार को यह बतलाया कि सत्य के जिज्ञासु सम्प्रदाय नहीं बनाया करते। मै उस समय कोलोन (जर्मनी) मे था। जिस समय मैने श्री कृष्णमूर्त्ति जी के उन वाक्यों को पढ़ा, मेरा हृदय अत्यन्त प्रसन्न हुआ। मैने अपने मन मे कहा, "जो मार्ग मै वर्षों से पकडे हुए हूँ उसी को श्री कृष्णमूर्ति ने अपने अनुभव से ढूँढ निकाला है।"

अब सोचना यह है कि धर्म के विषय मे इतने भ्रम, इतनी असम्भव बाते, इतना मायाजाल और इतना अन्धविश्वास क्यो फैल जाता है। क्या धर्म को समझने के लिए किसी पैगम्बर अथवा मसीहा पर ईमान लाने की जरूरत है ? क्या निघण्टु और निरुक्त पढे बिना धर्म का ज्ञान नहीं हो सकता ? यदि धर्म की खोज के लिए संस्कृत का विद्वान होने की जरूरत है अथवा अरबी का बड़ा मौलवी बनने की आवश्यकता है तो ऐसा धर्म जरूर ही साधारण जनता में फूट फैलाने का कारण होगा, क्योंकि वे संस्कृत के पण्डित और अरबी-फारसी के मौलाना अपनी-अपनी इलहामी किताबों का मनमाना अर्थ कर मूर्ख जनता को बेवकूफ बनाकर अपना उल्लू सीधा कर सकते है। साधारण स्त्री-पुरुष को इतनी फुर्सत कहाँ है कि वे इन कठिन भाषाओं के ज्ञाता बन सके ! वे सदा दूसरो पर निर्भर रहेंगे। धर्म तो ऐसा चाहिए कि जिसे मामूली आदमी भी जान सके, जिस के लिए बड़े-बड़े पोथे न पढने पड़ें, जिसके लिए मौलवी-मुल्लाओं की खुशामदें न करनी पड़ें। वही धर्म सच्चा और उपयोगी है जो जनसाधारण को अपने पाँव के बल खड़ा करता है और उसमें आत्म-विश्वास भरता है। धर्म व्यक्ति के अपने अनुभव की चीज है, पोथी-पन्ने और अन्ध-विश्वास की वस्तु नही। अपने साधारण व्यवहार में जब हम यह देखते हैं कि अमुक काम करने से हमारी उन्नति में बाधा पड़ती है, हमें दुःख मिलता है, हमारा बिगाड़ होता है तो हमें उन कामों को अधर्म समझना चाहिये और उनके करने से सदा बचना चाहिये। भगवान बुद्ध का धर्म इसीलिए लोकप्रिय होगया क्योंकि उन्होंने जनसाधारण की आवश्यक-

तात्रों, उनके नित्य के व्यवहार और उनके पारस्परिक सम्बन्ध के अनुसार धर्म की व्याख्या की। दर्शन-शास्त्रों के बड़े-बड़े जटिल प्रश्नों को उन्होंने उन पर नही लादा। वे भली प्रकार समझते थे कि साधारण मनुष्य को इस बात की कोई परवाह नहीं कि दुनिया दस हजार वर्षों में बनी अथवा दस लाख में; ईश्वर, जीव और प्रकृति तीन अलग-अलग पदार्थ है अथवा एक ही; वृक्षों में जीव है या नही; उसे तो नीरोग जल-वायु, अच्छा भोजन और पहनने को कपड़ा चाहिये।

मनुष्य सत्य और न्याय का जीवन चाहता है। जब वह उनसे सन्तुष्ट हो जाय, तब उसे दूसरी बातों के सोचने की फुर्सत मिल सकती है। असल में बात यह है कि धर्म तो धारण करने की चीज है, अन्धविश्वास और वाद-विवाद की नहीं। स्वामी रामतीर्थजी ने इसे नकद धर्म कहा है। झगडे नकद धर्म के लिए नही होते, बल्कि उधार धर्म के लिए होते हैं। जो दूसरो का उधार खाये बैठे है और देने का नाम नही लेते, उन्ही से जब नकद धर्म दिखलाने के लिए कहा जाता है, तब वे झगड़े फैलाते हैं। आज तक किसी शास्त्रार्थी पण्डित और दङ्गली मौलवी-मुल्ला ने जन-साधारण में कोई रचनात्मक कार्य नही किया। ऐसे लोग केवल फसाद का बीज बो देते है और जन-साधारण मे व्यर्थ का क्षोभ फैलाते है। इन लोगो के द्वारा कभी कोई बड़ा सुधार अथवा कोई नैतिक क्रान्ति नही हो सकती, क्योकि ये लोग केवल वितण्डा और शब्द-जाल का मायावी रूप दिखलाकर ही अपना नाटक खेलते है।

हाँ, जितने सुधारक, महापुरुष, अवतार तथा पीर और पैगम्बर आते है वे केवल अपने युग के निर्माता होते है, सभी कालो के निर्माता नहीं होते। वे अपने इर्द-गिर्द की बिगड़ी हुई परिस्थितियों को देखकर व्याकुल हो उठते हैं, जन-साधारण का दुःख उन्हें चिन्तित करता है, तब उनके धार्मिक गुणो की ज्योति जगमगाने लगती है और वे फैले हुए अन्धकार को दूर कर देते है। उनका नकद धर्म ही उनकी सम्पत्ति है, जो उस काल की समस्याओं को हल करने में सहायक होती है। हमे उनका धन्य-

बाद उनकी उतनी सेवाओं के लिए अवश्य करना चाहिए और उनके गुणों का बखान करना चाहिए, परन्तु उनके सारे जीवन का बोझा अपनी पीठ पर लादना उचित नहीं। वे भङ्गियों का काम करते हैं और संसार की सफाई कर पापी मनुष्यों के कूड़े-कचरे को दूर कर देते हैं, ताकि मनुष्य उन्नति कर सकें। हमें उनके इस उपकार को मानना चाहिए, लेकिन उन्हें पकड़कर बैठ नहीं जाना चाहिए।

बात तो यह है कि मैं एक सत्य का जिज्ञासु हूँ जो प्रभु के अनन्त ज्ञान की खोज में विकास-पथ पर बढ़ रहा हूँ। रास्ते में मुझे कोई मौलवी मिलता है; वह पूछता है, "कहाँ जा रहे हो ?" मैं उत्तर देता हूँ, "सत्य ज्ञान की खोज में।" वह कहता है, "मेरे पास पूरा ज्ञान है; आओ, मैं तुम्हें सुनाऊँ।" मैं उसके पास खड़ा हो जाता हूँ। उसकी बातें सुनता हूँ। जब वह कहता-कहता थक जाता है, तब मैं आगे चलने की तैयारी करता हूँ। वह मुझे रोक कर पूछता है, "कहाँ जाते हो ?" मैं उत्तर देता हूँ, "तुम्हारे पास जो-जो अच्छी बातें थी, मैंने अपनी झोली में डाल ली। तुम तो बैल की तरह खूँटे से बँधे हुए हो और उसी के इर्द-गिर्द घूमते हो। मैं बैल नहीं हूँ, बल्कि स्वतन्त्र मनुष्य हूँ, इसीलिये आगे बढा जा रहा हूँ।"

इस प्रकार का रुख सत्य के प्रत्येक जिज्ञासु को रखना चाहिए। उसे कभी भी यह समझना उचित नही कि उसने सब कुछ जान लिया है या उसके पास पूरे ज्ञान से भरी हुई पुस्तक मौजूद है। उसे फलदार वृक्षो की तरह बनना चाहिए, जो फलो के पकने पर झुक जाते है। विद्या विनय देती है। जितना अधिक ज्ञान मनुष्य को होता है, उतना ही वह अपनी लघुता समझने लगता है।

अतएव धर्म के लिए झगड़े तभी होते है जब हम पीर-पैगम्बरो, गुरु-अवतारो को सर्वज्ञ मानकर बैठ जाते है और अपनी पुस्तको को ज्ञान का भण्डार बतलाकर दूसरों का तिरस्कार करते हैं। प्रभु का ज्ञान अनन्त है, वह किसी जाति और व्यक्ति विशेष के लिए नहीं, वह केवल अधिकारी

के लिए ही है। कभी भी धर्म को साम्प्रदायिक रूप मत दीजिए। कभी भी पीर, पैगम्बर, गुरु और अवतार का बोझ अपने सिर पर मत लादिए। उनके शुद्ध नैतिक गुण ही धर्म के लक्षण है। बस, उन्हीं को धारण कीजिये। बाकी सब फालतू बातों को छोड़ दीजिए। हमारा पैगम्बर बड़ा, तुम्हारा मसीहा छोटा, हमारा अवतार सर्वश्रेष्ठ और तुम्हारा गुरु अनपढ़, इस प्रकार की बच्चो जैसी बातें करना मूर्खता है। जैसे बच्चे मिट्टी की चीजे बनाकर आपस में झगड़ा करते है, ऐसे ही वे लोग भी हैं जो अनेक महापुरुषों, गुरुओ और पैगम्बरो का बोझ लादे हुए एक दूसरे से लड़ते है।

संक्षेप में धर्म का स्वरूप यह है कि जिन नियमो और सद्गुणो से समाज मे हम एक-दूसरे के साथ प्रेमपूर्वक रह सकते है, जो बाते हमे आपस मे लड़वाती नहीं, जिन गुणो के कारण मनुष्य में सेवा और बलिदान की भावना जागृत होती है और जो व्यक्ति तथा राष्ट्र को अभ्युदय की ओर ले जाते है, वही धर्म के सच्चे लक्षण है। जब आपका यह लोक सुधर जायेगा, जब आपके द्वारा समाज उन्नत अवस्था को पहुंचेगा और जब आपका अपना जीवन शान्ति और सुख से ओत-प्रोत होगा, तब आप निश्चय जानिये कि आपको धर्म का पथ मिल गया है। आप अपने नित्य के व्यवहार में आत्म-परीक्षा कीजिये कि आप के किसी काम से दूसरे की हानि, किसी को पीड़ा अथवा किसी की उन्नति में बाधा तो नही पहुँच रही है। चलते-फिरते, सोते-जागते और उठते-बैठते सदा अपने कामों की जाँच करते रहिये। तब आप देखेंगे कि धर्म हमारे अन्दर छिपा हुआ है, जिसे हमें अपने बाहर के व्यवहार द्वारा साक्षात्कार करना है। धर्म का यह स्वरूप संसार में सदा विद्यमान रहेगा; इसका नाश होने से समाज का संगठन, उसकी उन्नति और विकास नष्ट हो जायेगे। इसे किसी भयंकर बोलशेविज्म अथवा साम्यवाद से भय नही। यह नित्य और अमर है।

"A great man is great in his age, not for all ages."

—*Deva Duta.*

उन्नीसवाँ पुष्प

शुद्ध विचार के तीन शत्रु

जब हम किसी अच्छे पढे-लिखे व्यक्ति को बिल्कुल विकृत रूप से तर्क करते हुए देखते है अथवा अत्यन्त स्पष्ट सत्य सिद्धान्त के विरुद्ध आचरण करते हुए पाते है, तो हमें बड़ा आश्चर्य होता है। मूढ़ आदमी जब कोई भूल करता है तो तनिक भी विस्मय नही होता। गाँव के गँवार प्रसिद्ध है और उनके गँवारी तर्क हमारे दिल बहलाने का कारण बन जाते है, परन्तु इसके विपरीत जब शास्त्रों के ज्ञाता विद्वान् झूठी व्यवस्था दे देते है अथवा कालिजों के बड़े-बड़े प्रोफेसर देश-द्रोही हो जाते है, तो हमारे हृदय को बड़ी ठेस लगती है और अनायास मुँह से निकलता है—"ऐसी शिक्षा से क्या लाभ !"

हमें अपने जीवन में इस प्रकार के बहुत से अनुभव हुए है। एक बार योरुप से लौटते समय स्टीमर पर अर्थशास्त्र के एक विद्वान् प्रोफेसर से मुलाकात होगई, जिन्होंने अत्यन्त आग्रहपूर्वक अपने यहाँ हमें निमन्त्रित किया। भारतवर्ष के एक प्रसिद्ध नगर में वे व्यापारी-कालिज के प्रोफेसर थे। कार्यवशात् हमें उस नगर में जाना पडा। जब तक हमने नगर में व्याख्यान नही दिये थे तब तक तो उन्होने हमारा बड़ा आदर-सत्कार किया, परन्तु ज्योंही जनता के अनुरोधवश हमने कुछ व्याख्यान नगर के राजनीतिक हाल में दे दिये, तो वे बड़े घबराये। बातचीत में हमने देखा कि उनका तर्क विकृत रूप धारण कर गया और अन्त को उन्होंने हमसे वार्तालाप करना भी बन्द कर दिया—यह कह कर कि वे खुले तौर पर तो मिल नही सकेगे किन्तु प्राइवेट तौर पर वे सब तरह सहायता के लिए तैयार है।

ऊपर हमने जिस व्यक्ति का उदाहरण दिया है वह अत्यन्त सुशिक्षित,

इँगलैंड का पढ़ा हुआ, रोज सन्ध्या करने वाला सनातनधर्मी सज्जन है। ऐसे उदाहरण इस अभागे देश में आये दिन मिलते है। पर प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि ऐसे सुशिक्षित लोगो में क्यों सत्य के प्रति निष्ठा नही होती ? क्यों उनमें शुद्ध विचार (right thinking) का अभाव हो जाता है ? इसका उत्तर स्पष्ट है। शुद्ध विचार करने की शक्ति किसी भाषा का पण्डित हो जाने अथवा किसी विद्या मे व्युत्पन्न होने से ही नही आ जाती; इसका सम्बन्ध मनुष्य के धार्मिक विकास के साथ है। तीन कारणो से व्यक्ति प्रायः विकृत मस्तिष्क के हो जाते है।

स्वार्थपरता

पहिला कारण स्वार्थपरता का स्वभाव है। स्वार्थी मनुष्य शुद्ध विचार नही कर सकता। वह चाहे कितना ही पण्डित क्यो न हो, उसके विचार करने की शक्ति उसके स्वार्थ के वशीभूत हो जाती है। वह जब भी कोई बात कहेगा या करेगा, तो सदा अपने स्वार्थ को सामने रखेगा। विश्व-विद्यालय की डिग्रियाँ मस्तिष्क के किसी कोने में धरी रहेंगी, दर्शनों का पाण्डित्य बकवाद का रूप धारण कर लेगा और उसका सारा पढ़ा-लिखा स्वार्थ के रंग में रंगा जायेगा। अतएव शुद्ध विचार के लिए निःस्वार्थ भावना का विकास अत्यन्त आवश्यक है। स्वार्थी पण्डित अथवा प्रोफेसर की सम्मति का दो कौड़ी भी मूल्य नही। जैसे वेश्या अपने सौन्दर्य को धन के लिए बेच देती है, ऐसे ही ये लोग विश्वविद्यालयों में प्राप्त की हुई योग्यता को धन के लिए बेच देते है। वेश्याओ की तरह वे मण्डियों में बैठे हैं और कोई भी धनवान् धन देकर उन्हे खरीद सकता है।

इसलिए भूल कर भी कभी किसी स्वार्थी विद्वान् के कथन को प्रामाणिक नही मानना चाहिये। संसार में इसीलिए इतना दुःख फैला हुआ है कि इसमें स्वार्थत्यागी व्यक्तियो का अभाव है। जिन्हें हम दिग्गज विद्वान् समझकर बड़ा मानते हैं, जिनके प्रति उनके पाण्डित्य के कारण हमारी श्रद्धा है और जिनकी लच्छेदार भाषा सुनकर हम मन्त्रमुग्ध हो जाते हैं,

उन पर जब स्वार्थ का भूत सवार होता है तो उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है।

कायरता

मस्तिष्क को विकृत करने वाली दूसरी वस्तु है कायरता। जो मनुष्य बुजदिल है, भय ने जिसके हृदय को पकड़ लिया है, और जो साहसहीन है, उसे शुद्ध विचार का दैवी गुण नहीं मिल सकता। कितना ही विद्वान् क्यों न हो, यदि वह डरपोक है तो उसकी विद्या का कोई भी मूल्य नही। भय उसके सारे शरीर में व्यापक होकर उसे हीजड़ा बना देता है और उसका मस्तिष्क विकृत होकर अंडबंड बकने लगता है।

यद्यपि वैद्यों और डाक्टरों ने हैजा, प्लेग और क्षय रोग को मानव तन के लिए अत्यन्त भीषण बतलाया है, परन्तु हमारे विचार में भय ही सब व्याधियों का मूल है। कायर मनुष्य जब भय से ओत-प्रोत हो जाता है, तो सब प्रकार के कीटाणु उस पर हमला करते है। अपने चारो ओर उसे भूत दिखाई देने लगते है और वह पग-पग पर बीमारियो का शिकार बन जाता है। आत्म-दर्शन के मार्ग में तो भय सबसे बड़ी रुकावट है। जो लोग यह समझते हे कि जीवन-संग्राम की कठिनाइयों से बचकर वे प्राणायाम अथवा किसी गुरु द्वारा मोक्ष प्राप्ति कर सकेगे, वे भारी भूल में पड़े हुए है। हमारी तो यह धारणा है कि कायर मनुष्य की आत्मा का विकास सदा के लिए बन्द हो जाता है। अतएव यदि आप अपनी उन्नति चाहते हैं, अपने शब्दों में बल भरने की इच्छा रखते हैं, यदि आपको शुद्ध विचार की चाह है, तो अतिशीघ्र भय को दूर भगाइये और निर्भयता का कवच धारण कीजिये; तभी आपको विकास-पथ मिल सकेगा।

अंधविश्वास

तीसरी बड़ी रुकावट जो शुद्ध विचार की शत्रु है, वह है अंधविश्वास। जब हम मजहबी अन्धविश्वासो मे पड़ जाते हैं, जब हम अपनी बुद्धि को दूसरों के सुपुर्द कर देते हे और हम में पक्षपात आ जाता है, तब हमारा

मस्तिष्क अत्यन्त विकृत हो जाता है—हम दीवाने हो जाते हैं। यही कारण है कि मज़हबी दीवाने लोग दूसरों के बहकाने पर अपने भाई मनुष्य की हत्या सहज में कर डालते हैं। उन्हें तनिक भी दया नहीं आती, वे हिंसक पशु की तरह दूसरों पर झपटते हैं, उनकी बुद्धि भी अपना कार्य करना छोड़ देती है। वे आसानी से बहकाये जा सकते हैं और बहकावट के वश में ऐसी-ऐसी बातें कर देते हैं जिन्हें देखकर बड़ा आश्चर्य होने लगता है।

यही कारण है कि विश्वविद्यालयों में पढ़े हुए बड़े-बड़े विद्वान् और संस्कृत के धुरन्धर आचार्य साधारण बुद्धि की बातों में भी बड़ी-बड़ी फिलोसोफी लड़ाया करते हैं। बचपन से ही उन्हें माता-पिता अन्धविश्वास की शिक्षा देते हैं। वह बुद्धि-विपरीत शिक्षा आगे चलकर उनके मस्तिष्क को अत्यन्त विकृत बना देती है। जिस ज्ञान द्वारा उन्हें जीवन-समस्याओं की गुत्थियाँ सुलझानी चाहिए थीं, उसी ज्ञान द्वारा वे वितण्डावाद करने लगते हैं और सत्य-पथ से दूर हटते चले जाते हैं।

सचमुच अन्धविश्वास मानवता का विकट शत्रु है। लोग इसके वशीभूत होकर देवी-देवताओं के सामने छोटे-छोटे बच्चों तक की बलि कर डालते हैं; दूसरों के अधिकार छीनकर उनके साथ अत्यन्त कुत्सित व्यवहार करते हैं और यहाँ तक कि वे अपने ही भाई मनुष्यों को देव-दर्शन के लिए मन्दिरों में भी जाने नहीं देते—पानी पीने के लिए कूओं पर भी नहीं चढ़ने देते।

उपरोक्त तीनों बड़े शत्रु ऐसे हैं जो शुद्ध विचार और सत्य-जिज्ञासा के मार्ग में भीषण कण्टक हैं। मनुष्य-जन्म पाकर जो व्यक्ति इसे सार्थक करना चाहता है उसे इन तीन रिपुओं से सदा दूर रहना चाहिए। आपकी सब विद्या, सारा ज्ञान, सारा पांडित्य धूल में मिल जायेगा यदि आप निपट स्वार्थी, डरपोक और अन्धविश्वासी हैं।



"Cowards die many a time before their death."

बीसवाँ पुष्प

राष्ट्र-शक्ति-स्रोत

इस पुस्तक का नाम हमने 'ज्ञान के उद्यान में' रक्खा है। ज्ञान के इस उद्यान मे चरित्र-संगठन का कुञ्ज पहले क्यों आया ? वह इसलिए कि कोई भी समाज चरित्र-हीन नर-नारियों द्वारा शक्तिशाली नही बन सकता। जो कुछ भी उन्नति हम करना चाहते है, वह तभी हो सकती है जब कि हमारा समाज सच्चरित्रता से ओत-प्रोत हो जाए। प्राचीन काल के यूनानी और भारतवर्ष के आर्यों ने इस विषय पर बड़ी गम्भीरता से विचार किया था। यूनानियो ने जब अपने राष्ट्र की बुनियाद डाली और नागरिकता के आदर्श को खडा किया, तो उन्होने अपने नागरिको के लिए चार बाते मुख्य रखी। स्वतन्त्र नागरिक की पहचान क्या है ? यूनान के दार्शनिक इसका उत्तर निम्न प्रकार से देते है।

यूनान का स्वतन्त्र नागरिक बनने के लिए सब से पहला गुण आरोग्यता माना जाता था। जो रोगी है वह नीरोग विचार धारण नही कर सकता, फिर भला वह सच्चरित्र कैसे रह सकेगा ? इसलिए यूनानी राष्ट्र अपने नागरिको के लिए व्यायामशालाए स्थापित कर उनका उत्साह बढ़ाता था और प्रत्येक वर्ष भिन्न-भिन्न नगरो मे दङ्गल करवा कर सफल खिलाड़ियों को पुरस्कार देने का प्रबन्ध करता था, ताकि राष्ट्र-शक्ति बढ़े।

इसी प्रकार यूनानी विद्वानो ने अपने स्वतन्त्र नागरिको को सौन्दर्य्य अर्थात् सुव्यवस्था (Harmony) की भी शिक्षा दी थी। नीरोग होना चाहिए, लेकिन साथ ही सौन्दर्य्य का उपासक भी बनना उचित है। जाति के बच्चो को चरित्रवान् बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उनके जीवन

के प्रत्येक विभाग में सुव्यवस्था और सुगढ़पन हो । आपके पास जो भी चीज़ हो, वह सुन्दर सुडौल हो, उसमें बेढंगापन न हो। इसी कारण यूनानियों ने अपने काल में स्थापत्य-कला में अद्भुत उन्नति की थी । उनके शिल्पियों की घड़ी हुई मूर्तियाँ आज भी संसार के लिए आदर्श हैं । जब मनुष्य की आत्मा कला के गम्भीर समुद्र में गोते लगाने लग जाती है, तब बुराइयाँ उससे दूर भागने लगती हैं । मनको जितना अधिक उड़ने की सामग्री मिलेगी, सोचने का मसाला मिलेगा, फैलने का मौक़ा हाथ में आएगा, उतनी ही मन की चञ्चलता दूर होती चली जायगी; इसलिए चरित्रवान् बनने का बड़ा भारी साधन सात्त्विक कला-क्षेत्र है ।

तीसरी बात थी सच्चरित्रता । यूनानी मानते थे कि यदि कोई नागरिक नीरोग भी हो और कलाकार भी, लेकिन वह अपने उस गुण को बीभत्स बुराइयों में ख़र्च करे, तो उसकी आरोग्यता और सौदर्य्योपासना पर लाख बार धिक्कार है । सच्चरित्रता के गुणो के विषय में हम पहले पुष्पों में लिख चुके हैं। सच्चरित्रता का अर्थ इतना हीन ही कि पुरुष परस्त्री-गमन न करे अथवा अप्राकृतिक व्यभिचार न करता हो—यह तो उस का बीभत्स स्वरूप है। सच्चरित्रता में सत्य-भाषण, कर्तव्य-पालन, शिष्टाचार, सहनशीलता, अर्थ-शौच, क्षमा आदि जो सद्गुण हैं वे सब शामिल हैं । इन्ही गुणों से विभूषित होकर किसी देश का नागरिक अपने राष्ट्र का शक्ति-स्रोत बन सकता है । यदि कोई मनुष्य कायर है तो वह किसी राष्ट्र के लिए उपयोगी कैसे बन सकता है ? इस कारण साहस, वीरता, स्वावलम्बन और अध्यवसाय भी चरित्रवान् पुरुष के लक्षण है । मनुष्य को उत्थान-पथ पर ले जाने वाले जितने भी सद्गुण हैं, वे सब 'चरित्र' शब्द में निहित है । अतएव जब हम 'सच्चरित्रता' शब्द का उच्चारण करते हैं, तब हमारे सामने इन सब गुणो का मूर्तिमान् चित्र खड़ा हो जाना चाहिए ।

देखिये, वाल्मीकि रामायण के प्रारम्भ में जब परिव्राजक नारद से महर्षि वाल्मीकि जी ने 'पुरुषोत्तम' के विषय में प्रश्न किया तो उन्होने

चरित्रवान् पुरुष का जो आदर्श उनके सामने था उसके विषय में निम्न-लिखित श्लोक कहे हैं—

को न्वस्मिन्सांप्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः ॥
चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः।
विद्वान् कः कः समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः ॥
आत्मवान् को जितक्रोधो द्युतिमान् कोऽनसूयकः।
कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे ॥

अर्थात् वर्तमान काल में क्या आपने कोई गुणवान्, वीर्यवान्, धर्म का ज्ञाता, कृतज्ञ, सत्यवक्ता, दृढव्रती, सब प्राणियों का हित चाहने वाला, विद्वान्, सामर्थ्यवान्, प्रियदर्शन, आत्मवशी, क्रोधजित्, तेजस्वी तथा ईर्ष्या-द्वेष से रहित, पराक्रमी और युद्धक्षेत्र में देवताओं को भयभीत करनेवाला पुरुषोत्तम देखा है ?

महर्षि वाल्मीकि जी ने तो अपने आदर्श के सम्बन्ध में तीन श्लोक कहकर अपना अभिप्राय प्रगट कर दिया था, परन्तु उस महा अनुभवी, विश्व में विचरने वाले तपस्वी नारद जी ने कैसी सुन्दर भाषा में अपने आदर्श पुरुष की व्याख्या की है, उसे पढ़कर तो हृदय नाचने लगता है। उत्थान-पथ पर आरूढ़ उस काल के आर्य लोग अपनी सन्तान के सामने कैसे दिव्य आदर्श रखते थे और पुरुषोत्तम नागरिक का कैसा मार्मिक चित्र वे अपने बच्चों को बतलाया करते थे, उसका स्वरूप वाल्मीकि रामायण में इस प्रकार दर्शाया गया है—

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान्धृतिमान्वशी ॥

बुद्धिमान्नीतिमान्वाग्मी श्रीमाञ्छत्रुनिबर्हणः ।
विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः ।।
महोरस्को महेष्वासो गूढ़जत्रुररिन्दमः ।
आजानुबाहुः सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः ।।

अर्थात् आत्मजित्, महापराक्रमी, तेजस्वी, धैर्य्यशाली, जितेन्द्रिय, बुद्धिमान्, न्यायशील, सुवक्ता, कान्तियुक्त, शत्रुञ्जय, बड़े कन्धो वाला, बड़ी-बड़ी भुजाओ वाला, गोल सुडौल गर्दन वाला, सुन्दर भरे हुए चेहरे वाला, विशाल वक्षःस्थल वाला, दीर्घबाहु, सुन्दर सिर और ललाट वाला, पराक्रमी, विख्यात आदर्श पुरुष मैंने इक्ष्वाकुवंशियो में देखा है, जिसका नाम राम है । प्राचीन काल के आर्यो मे यूनानियो की तरह तन्दुरुस्ती, सौन्दर्य्य और सच्चरित्रता की बड़ी पूजा की जाती थी । जब यूनानियो ने अपने राष्ट्र का सगठन किया, तो उन्होने देश-भक्ति के गुण को भी चरित्र-सगठन मे शामिल कर लिया । परिणाम हुआ यूनान का सर्वोच्च विकास—वह विकास जिसका ऋणी आज सारा ससार है । आर्यों ने अपने उस पुरुषोत्तम आदर्श के द्वारा विशाल राष्ट्र स्थापित किये और ससार के ज्ञान-भडार मे अध्यात्मवाद के अमूल्य रत्न जमा कर दिये ।

अतएव चरित्र-संगठन ही राष्ट्र का शक्ति-स्रोत है, इस कारण हमने अपने इस ग्रन्थ मे इसे सबसे पहला स्थान दिया है । जब नागरिक सच्चरित्र हो जाते है, तभी राष्ट्र शक्तिशाली बनता है । मानव-समाज का सङ्गठन इसीलिए किया जाता है कि प्रत्येक सदस्य को उसके जन्म-सिद्ध अधिकार प्राप्त हों और वह सदस्य अपनी ईश्वर-दत्त शक्तियों का पूर्णतया विकास कर सके । चरित्र-हीन समाज एक जङ्गल के समान है, जहाँ हिंसक पशु निवास करते हैं । देश भले ही सुशिक्षित हो, उसके गाँव-गाँव में मुफ्त तालीम देने वाले स्कूल खुले हों, भले ही उस देश मे सभ्यता की तूती बोलती हो, वह व्यापार-शिरोमणि हो, भले ही उसमें उच्चशिक्षा

के लिए विश्वविद्यालयो का जाल बिछा हो, लेकिन यदि वहाँ के नागरिक सच्चरित्रता के सात्विक गुणों से विभूषित नहीं है तो वह देश संयुक्त-राज्य-अमरीका की तरह रिश्वत के अजदहा से निगला जायेगा; वहाँ डाकू-दल (Gangsters) होगे, जो पिस्तौल दिखाकर सब कुछ धरवा लिया करेंगे।

इसलिए 'चरित्र-कुञ्ज' को प्रथम स्थान देकर अब हम 'राष्ट्र-कुंज' की ओर मुँह करते है, ताकि हमारे पाठक उस सच्चरित्रता का सदुपयोग कर जीवन-पथ पर चल सकें।



प्रत्येक राष्ट्र का शक्ति-स्रोत, उसके समयानुसार शिक्षाप्रणाली की श्रेष्ठतम योजना में छिपा रहता है। राष्ट्र के नागरिकों को दी गई नीरोग शिक्षा ही उनमें शक्ति भरती है और उत्कर्ष की ओर उनका पग बढ़ाती है। —स्वामी सत्यदेव परिव्राजक।



इक्कीसवां पुष्प

राष्ट्र-धर्म

वसन्त ऋतु का अन्त होने ही वाला था। श्री भागीरथी के तट पर हरिद्वार में आजकल बड़ी चहल-पहल थी। स्वामी स्वयंज्योति जी अपना भारत-भ्रमण समाप्त कर इन दिनों यहाँ आए हुए थे और एक आम्रवृक्ष के नीचे उन्होंने आसन लगाया था। उनका आगमन सुनकर जिज्ञासु लोग दर्शनार्थ आने लगे। मध्याह्न के बाद साढ़े तीन बजे से ज्ञान-चर्चा होने लगती और तीन घण्टे तक श्रोताओं को बड़ा आनन्द मिलता। आज रविवार था। कई एक नये यात्री भी आए हुए थे। स्वामी जी एक बड़ी चौकी पर सिद्धासन लगाकर बैठ गये। उनका गौर-वर्ण और तेजस्वी शरीर देखने वालो पर बड़ा प्रभाव डालता था। स्वामी जी की आज्ञा मिलने पर एक जिज्ञासु ने विनीत भाव से पूछा—

"महाराज, ज्ञान-प्राप्ति के लिए किन बातो की आवश्यकता है ?"

स्वामी जी—"जो मनुष्य सत्य-ज्ञान का अभिलाषी है उसे सत्य-निष्ठ होना चाहिये। जब तक सत्य के प्रति हृदय में निष्ठा नही होती, तब तक कभी भी ज्ञान-प्राप्ति के लिए भूमि तैयार नही हो सकती। जब आप पहले से ही अपनी मानी हुई बातो को पूर्ण सत्य समझे हुए है, तब आप दूसरे किसी विद्वान से कुछ भी नही सीख सकते; पर जब आप का हृदय ज्ञान के लिए विह्वल हो, वह उसका प्यासा हो, जब आपके अन्तःकरण में यह बात रह-रह कर आती हो कि आपको सत्य-ज्ञान की आवश्यकता है और आपका हृदय उसे लेने के लिए आतुर हो, तब आप ज्ञान के अधिकारी हो जाते है। सत्य के प्रति निष्ठा बिना पुरुष केवल वितण्डावाद में ही समय खो देता है और उसके पल्ले कुछ भी नही पड़ता।

"दूसरी बात है श्रद्धा की । 'श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्', यह कथन अक्षरशः सत्य है । जब आप किसी विद्वान के पास जायें तो सदा श्रद्धा की भावना से उनके निकट जाकर बैठिये, तब वे विद्वान् अपना हृदय आप के सामने खोल कर रखेंगे ।

"हाँ, आप सदा अपनी विवेकिनी बुद्धि को हाथ से न जाने दीजिये । प्रत्येक बात को श्रद्धा से तोलिए और विवेक से ग्रहण कीजिये । यदि आप को बात न जँचती हो तो श्रद्धा से उसे छोड़िए, अनादर के साथ नही । विद्वान के प्रति अनादर का भाव व्यक्ति को नीच बना देता है और उस की बुद्धि को घुन लग जाता है ।"

एक सूटिड-बूटिड नवयुवक वहाँ आया हुआ था । अब तक तो वह खडा था । स्वामी जी की बातें सुनकर उसने अपना बूट उतार दिया और श्रद्धा से चटाई पर बैठ गया । जब कुछ देर तक किसी ने कुछ प्रश्न नहीं किया तो उसने हाथ जोडकर यह प्रश्न किया—

"स्वामी जी महाराज, मैंने आपकी बडी प्रशंसा सुनी है । मुझे यह पता लगा है कि आप राष्ट्रीय संन्यासी है, इसीलिए मै आपके पास राष्ट्र-धर्म की व्याख्या सुनने के लिए आया हूँ । कृपया इस विषय पर प्रकाश डालिए ।"

स्वामी जी ने श्रोताओ की ओर दृष्टि दौड़ाई । जब सब की इच्छा उस विषय को सुनने की जान पडी, तो उन्होंने कहना प्रारम्भ किया—

राष्ट्र-धर्म

"आज से बीस वर्ष पहले, जब मै अपने देश के लोगो के सामने लेक्चर देते वक्त 'राष्ट्र-धर्म' इन शब्दो का प्रयोग किया करता था तो सुनने वाले अक्सर हैरान होकर एक दूसरे का मुँह ताकने लगते थे । वे नही जानते थे कि राष्ट्र और धर्म इन दो शब्दो का आपस मे क्या सम्बन्ध है । साम्प्रदायिकता में फँसे हुए भारतवासी अपने-अपने सम्प्रदायों को ही धर्म मानकर उनकी पुरानी रूढियों पर चलना ही अपना परम कर्त्तव्य समझते

थे। बड़े-बडे धार्मिक नेता मेरी राष्ट्र-धर्म सम्बन्धी उक्तियों को सुनकर हँसते और खिल्ली उडाते थे और कहते थे—पोलिटिकल बातो का धर्म के साथ क्या सम्बन्ध है और राष्ट्र-धर्म तो विदेशी चीज़ है।

"वे दिन मुझे भूले नही। उन दिनो मै केवल अपने विदेशी अनुभवों का सहारा लेकर राष्ट्र-धर्म के सिद्धांतो की व्याख्या जनता को समझाने की चेष्टा किया करता था और बीच-बीच में विषय को रोचक बनाने के लिए विदेश के अपने अनुभवों की कहानियाँ कहकर सुनने वालो का दिल बहलाये रखता था। जात-पाँत के बन्धनो मे जकडे हुए हिन्दू यह समझ नही सकते थे कि उनका मुसलमानो और ईसाइयो से भी कोई सम्बन्ध है और मातृ-भूमि शब्द का उच्चारण करने से उनके सामने केवल अपने-अपने गाँवो और कस्बो का ही चित्र आता था। सारा भारत-वर्ष हमारी मातृ-भूमि है, यह ख्याल तो उनसे कोसो दूर था। जब-जब राष्ट्र की व्याख्या करते हुए उन्हे बतलाया जाता कि भारतवर्ष के तीस करोड लोगो की माता एक है और उस माता की रक्षा मे देश के सब लोगो को अपना सर्वस्व बलिदान कर देना चाहिए, ऐसी बात जब लोगों को बतलाई जाती थी, तो वे सब अत्यन्त विस्मित होते थे,—मानो उन्हे कोई नया सन्देश सुनाया जा रहा हो

"सचमुच राष्ट्र-धर्म एक नया सन्देश है। यह सत्ययुग का धर्म है। यद्यपि इसकी चर्चा पिछली दो शताब्दियो से योरुप में हो रही है और कहा जाता है कि हमारे वेदो में भी इसका वर्णन है, लेकिन सच बात तो यह है कि अभी तक इस धर्म का यथार्थ स्वरूप ससार ने नहीं समझा। जिस योरुप ने इसके सम्बन्ध में इतनी लडाइयाँ लड़ी है और जिसकी व्याख्या करने में वहाँ के धुरन्धर विद्वानो ने अपने मस्तिष्क का गूदा सुखा दिया, उस राष्ट्र-धर्म के अनुसार समाज की व्यवस्था करने और तदनुसार संसार की दूसरी जातियो से प्रेम-सम्बन्ध बढाने मे योरुप के लोग सफलमनोरथ नही हुए। अट्ठारहवी शताब्दी से पहले योरुप की जातियाँ मज़हबी लडाइयों में पड़कर एक दूसरे का खून बहाया करती

थीं। बाद में राष्ट्रीय चर्चा होने पर राष्ट्र को ही मज़हब का स्थान मिल गया और उसी की आड़ में बलवान् राष्ट्र निर्बल राष्ट्रों को सताने लगे। फिर बढ़ते-बढ़ते यहाँ तक हुआ कि मुट्ठी-भर पूँजीपति अपने-अपने राष्ट्रों पर काबू कर बैठे और अब उसी का परिणाम योरुप में यह हुआ है कि 'राष्ट्र-धर्म' से मजदूर और किसान घृणा करने लगे हैं और उनका दृष्टि-कोण अन्तर्राष्ट्रीय होगया है।

"भारतवर्ष में वेदों को ईश्वरकृत मानने वाले हिन्दू राष्ट्र-धर्म से इतनी दूर हट गये कि उन्होंने समाज के सारे कानून इस ढग से बना डाले कि जिसमें ब्राह्मण और क्षत्रिय ही समाज में ऊँचा स्थान पावें और जन्म की कसौटी को लेकर समाज का संगठन इस ढंग से कर दिया कि उसने समाज की उन्नति के सारे द्वार बन्द कर दिये। ब्राह्मणो की सत्ता सर्व-प्रधान होगई और वे इस लोक तथा परलोक के पूरे मालिक बन बैठे। संक्षेप में, हिन्दू समाज की अवस्था बौद्धकाल से पहले ऐसी थी जैसे सत्र-हवी सदी से पहले योरुपीय समाज की।

"निस्सन्देह राष्ट्र-धर्म नई और पुरानी दुनिया के लिए एक दैवी सन्देश है। हमें यह सीखना है कि ईश्वर के दिये हुए प्राकृतिक पदार्थों का भोग न्यायपूर्वक मिलकर किस तरह से किया जाये। हमें यह जानना है कि मानवसमाज के प्रत्येक सदस्य की ईश्वरदत्त शक्तियाँ किस प्रकार ठीक तौर पर विकसित हो सकती हैं। हमें उन उपायों की तलाश करनी है जिनके द्वारा अत्याचार और हिंसा पृथ्वी पर से उठ जायें और भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के निवासी प्रेमपूर्वक एक दूसरे के विकास मे सहायता दें। प्राकृतिक पदार्थों का संग्रह कर स्वार्थी मनुष्य इनके बल पर दूसरो को गुलाम न बनावें, बल्कि इन्हें सबके सुख का साधन समझें। मनुष्यों में जो कमज़ोरियाँ है, उनमे जो दुर्गुण है, उनके दूर करने के साधन हम तलाश करें और उन्हें ऐसा बना दें कि वे समाज की हानि करने की अपेक्षा लाभदायक सिद्ध हों। राष्ट्र-धर्म राष्ट्रों में प्रतिद्वन्द्विता उत्पन्न करने के लिए नहीं है, बल्कि उनके परस्पर सहयोग, सहानुभूति और एक

दूसरे की सहायता करने के लिए है। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि योरुप और एशिया के विलक्षण बुद्धि वाले राजनीतिज्ञों ने अपना सारा मस्तिष्क राष्ट्र को निरंकुश रखने की व्यवस्था तैयार करने में लगाया है और State-Sovereignty (राष्ट्र-प्रभुत्व) का सिद्धान्त खड़ा कर दिया है, जिसके द्वारा मुट्ठी भर कुशाग्र-बुद्धि लोग ही अपना गुट्ट बनाकर समाज पर शासन कर सकें और व्यक्तिवाद का समाज में कोई स्थान न रहे। राष्ट्र को बलशाली बनाने के लिए राष्ट्र-प्रभुत्व (State-Sovereignty) का सिद्धान्त बड़ा सुन्दर मालूम होता है; समाज में शान्ति और व्यवस्था रखने के लिए इसकी महत्ता हृदय को अपनी ओर खीचती है; बड़े-बडे राजनीतिज्ञों ने इसकी व्याख्या मे पोथे पर पोथे लिख दिये है; मेक्यावेली और चाणक्य इस सिद्धान्त के परम पोषक रहे है और आधुनिक युग में इटली का भाग्य-विधाता मुसोलिनी इसी सिद्धान्त को नये रूप में प्रकट करता था। इन सबसे बढ़कर सोवियट रूस की नई शासन-पद्धति भी एक प्रकार से इसी सिद्धान्त की पोषक है, क्योकि उसमें भी एकाधिपत्य सिद्धान्त को ऊँचा स्थान दिया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि इतना अधिक प्रजातन्त्रवाद पर वादविवाद और उसके अनुसार शासन-पद्धतियाँ कायम होने पर भी आज ससार घूम-फिर कर उसी स्थान पर आकर खड़ा हुआ है—'किस प्रकार हम समाज के महत्वाकाक्षी, चालाक, धूर्त्त और षड़यन्त्री सदस्यों से बचकर समाज को सत्य और न्याय के आदर्शों के अनुसार एक शासन-व्यवस्था के नीचे ला सकते है ? यदि हम सब प्रजा को बराबर के अधिकार देकर विचारो की स्वतन्त्रता प्रदान करते है, तो मूर्ख और अज्ञानी, धर्मान्ध और वहमी सदस्यों के वोटों का सहारा लेकर शासन अपने वश में कर लेते है, फिर प्रजा में अशान्ति फैल जाने से राष्ट्र में गड़बड मचती है और यदि हम कुछ थोड़े से विलक्षण बुद्धि वाले सदस्यो के हाथ मे शासन देकर बाकी प्रजा को उनके पीछे चलाते हैं, तो राष्ट्र केवल एक मजबूत मशीन का स्वरूप धारण कर लेता है, जिसमें दूसरे राष्ट्रो को दबाने की शक्ति तो

खूब हो जाती है, लेकिन प्रजा की शक्तियो का विकास पूर्ण रूप से नहीं हो सकता। अतएव राष्ट्र-धर्म की पूर्ण व्याख्या, उसके आदर्शों के अनुसार शासन की निर्दोष व्यवस्था की योजना अभी तक कोई निर्मल मस्तिष्क वाला राजनीतिज्ञ नही कर सका। शासन का उच्च सिद्धान्त यह है कि राष्ट्र में जितना कम शासन हो उतनी ही अधिक प्रजा स्वाधीनता-सुख भोगती है। बड़े-बड़े कानून बनाने से, पेचीदा-दर-पेचीदा नियमो को गढ़ने से प्रजा के अधिकारों की रक्षा नही हुआ करती; बल्कि वह तो कानून का एक ऐसा घना जगल बन जाता है जिसमे मनुष्य को मार्ग तलाश करना कठिन हो जाता है। इगलिस्तान के लोग भारतवर्ष मे यही कर रहे थे। उन्होने नये-नये कानून बनाकर यहाँ पर कानूनो का ऐसा घना जगल तैयार कर दिया था जिसमे इस देश की प्रजा फँसकर खू ख्वार पशुओ का शिकार हो रही थी।

"असल मे राष्ट्र-धर्म को समझने के लिये हमे उसके मूल की तलाश करनी चाहिये। यदि भारतवर्ष में किसी प्रकार की आबादी न हो और यह देश वीरान पडा हुआ हो तो अपने पहाड़, नदियाँ और जगल के होते हुए भी इसका कोई राष्ट्र नही बन सकता। इसी प्रकार सभी देशो के विषय में जानिये। राष्ट्र तो मनुष्य-समाज के सगठन से बनता है, अर्थात् उसका मूल मनुष्य है। मानव-समाज के शरीर को ही राष्ट्र कहते है और जब वह शरीर एक प्रदेश मे शान्तिपूर्वक अपना पूर्ण विकास करता हुआ रहना चाहता है, तो राष्ट्र-धर्म का प्रादुर्भाव होता है। इसलिए मुख्य सिद्धान्त जिसकी ओर राष्ट्र-धर्म के प्रेमियो को ध्यान देना चाहिये, वह है व्यक्ति का सुधार। यदि हम व्यक्तियों के सुधार की ओर ध्यान देंगे और उन्हें उनके अधिकार और कर्तव्य समझायेगे तो केन्द्रीय शासन की बहुत कम आवश्यकता रहेगी, अर्थात् थोड़े कानूनों और नियमों से ही राष्ट्र का शासन हो सकेगा। राष्ट्र-धर्म यह सिखलाता है कि उसके सदस्य अपने-अपने धर्म को इस दर्जे तक सीख जायँ कि उन्हें किसी प्रकार के अंकुश अथवा शासन की आवश्यकता न रहे और वे स्वेच्छा से उन सब

बातो को करने लग जायँ जिन्हें आज हम बड़े-बड़े कानूनों द्वारा पुलिस और सेना की सहायता से करवाते है। वह समाज सब से अधिक राष्ट्र-धर्म को समझता है जिसमें सबसे कम झगडे, दंगे, हत्याएँ और मुकदमे होते है। कोई शासक निरकुश बनकर, भय दिखला कर, अपनी पुलिस के बल से किसी समाज को दबाकर रखने मे यदि शान्ति और व्यवस्था समझता है तो वह दुनिया को धोखा देता है। यह कहा जा सकता है कि सब आदमी तो इस दर्जे तक भलेमानस नही हो सकते कि समाज मे किसी प्रकार का दगा-फसाद न हो। इसके उत्तर में राष्ट्र-धर्म का मानने वाला यह कहता है कि यदि समाज को राष्ट्र-प्रभुत्व के सिद्धान्त पर न चला कर व्यक्ति-प्रभुत्व के असूल पर विकसित किया जायगा तो सहज मे ही समाज अपने सारे सदस्यो को प्रजातन्त्रवाद के आदर्शो को सिखला सकेगा।

"सच तो यह है कि राष्ट्र-धर्म को सफल बनाने के लिए अभी तक किसी देश ने भी पूरा प्रयत्न नही किया। हिन्दू-सस्कृति के लोग व्यक्ति-वाद के सिद्धान्त को मानते है, परन्तु उन्होने भी किसी बड़े पैमाने पर राष्ट्र-धर्म की इन गुत्थियो को सुलझाने का यत्न नही किया। अब जब भारत स्वाधीन होगया है तो इस बात की परमावश्यकता है कि इस देश के लोग योरुपीय राष्ट्रो की असली कमजोरी को भली प्रकार जान लें। साम्राज्यवादी सरकार अपने केन्द्रीय शासन को सदा सुदृढ रखना चाहती है, इसलिए उसे व्यक्ति के अधिकारो की कम परवाह रहती है। साथ ही वह अपनी शान कायम रखने के लिए देश के धन का बहुत बड़ा हिस्सा ऐसी जंगी तैयारियो मे खर्च कर देती है जिसका कोई भी लाभ प्रजा को नही मिलता। योरुप के सभी बड़े-बड़े शासन इसी शान के फेर में पड़े हुए है। इसी कारण वहाँ राष्ट्र-धर्म पनप नही सका। छोटे-छोटे राष्ट्र तो आसानी से राष्ट्र-धर्म के सिद्धान्तो के अनुसार अपनी प्रजा को अभ्युदय की ओर ले जा सकते है, लेकिन समस्या बड़े राष्ट्रो की ही है, क्योकि उनकी जरूरतें अधिक होती है और समस्यायें होती है बडी जटिल। भारतवर्ष एक विशाल देश है। क्या यह स्वाधीन होकर साम्राज्यवादी

राष्ट्रों का अनुसरण करेगा, अथवा सोवियत रूस के पीछे जायेगा, या अपनी प्राचीन संस्कृति के अनुसार राष्ट्र-धर्म का पाठ संसार को पढ़ायेगा, यही हमें देखना है। यदि हम इंगलैण्ड की तरह बड़े-बड़े जंगी जहाज रक्खेंगे, बड़े-बड़े आकाशयान बनाकर लड़ाई की तैयारियाँ करेंगे और फ्रांस की तरह लाखों सिपाहियो की फौज बनायेंगे तो राष्ट्र-धर्म का उद्देश्य हम कभी सिद्ध नही कर सकते, क्योकि हमारा सारा धन इन्हीं तैयारियों में खर्च हो जायेगा और प्रजा टैक्स के बोझ से दब जायेगी। यदि हम रूस की तरह बोलशेविक शासन क़ायम करने का प्रयत्न करेंगे, तो हमें पहले देश में खून की नदियाँ बहानी पड़ेगी। सभी राजा-महाराजा, उनके हिमायती, ज़मीदार-तालुकेदार, सेठ-साहूकार, मिल-मालिक और महाजन, पण्डे और धर्माचार्य, सभी प्रकार के पूञ्जीपतियों को तलवार के घाट उतार देना होगा और यह सब हिंसा करने के बाद भी मुट्ठी भर निरंकुश बोलवेशिक नेताओ के हाथ मे करोडो नागरिको की किस्मत को सौप देना पड़ेगा। कम्युनिस्ट स्कीम के विरुद्ध कोई दम न मार सकेगा और अपनी मर्जी के खिलाफ प्रजा हल-बैल की तरह जुए में जोती जायगी।

"स्वाधीन भारत कैसा होगा ? हम तो राष्ट्र-धर्मी है। विचारों की स्वतन्त्रता के प्यारे है। सब नागरिको को बराबर के अधिकार दिलाने के पक्ष में है। भारत माता के दिये हुए पदार्थों का सत्य और न्यायपूर्वक उपभोग सबके लिए चाहते है। अत्याचार और हिंसा के शत्रु है। हमारा यह विश्वास है कि यदि हम साम्राज्यवादी राष्ट्रों और सोवियत रूस की नकल न कर छोटे से डेन्मार्क और स्विटजरलैंड की तरह अपनी इच्छाओं को सीमाबद्ध कर लेंगे और अपनी सारी शक्ति तथा धन अच्छे नागरिक बनाने में खर्च करेंगे, तभी इस देश में राष्ट्र-धर्म के स्वरूप का विकास होगा और तभी हमारे लोग सुखी रह सकेंगे।"

बाईसवाँ पुष्प

राष्ट्रशक्ति का जीवन-रस

राष्ट्र-धर्म की व्याख्या सुनाकर श्री स्वामी स्वयंज्योति जी महाराज चुप होगए। श्रोता उनकी ओर टकटकी लगाकर देखते रहे। वह नवयुवक बड़ा सन्तुष्ट दिखाई देता था, मानो उसे मनोवांछित वस्तु मिल गई। फिर पाँच मिनट तक श्रोता लोग मिलकर 'ॐ' का जाप करते रहे। तत्पश्चात् एक अधेड़ उम्र के सज्जन बोले—

श्रीमान् जी, मैंने सुना है कि आप जर्मनी भी गए थे। कृपया मुझे बतलाइये कि नवीन जर्मन-राष्ट्र का शक्ति-रहस्य क्या है ?

स्वामी जी ने फिर कहना प्रारम्भ किया—

जब कोई भारतीय आदर्शों का प्यारा योरुप मे सैर के लिए जाता है और वहाँ के लोगो का रहन-सहन, आचार-व्यवहार तथा चाल-ढाल देखता है, तब वह आश्चर्य से कह उठता है—'ये लोग शक्तिशाली क्यों हैं।'

हमारे शास्त्र हमें शराब, मांस, धूम्र-पान और अनाचार आदि बातों से मना करते हैं और हमारे धर्मोपदेशक हमें बार-बार कहते है कि आचार-भ्रष्ट जाति कभी बलवती नही हो सकती, पर यहाँ सब बुराइयाँ विद्यमान है। योरुप में शराब साधारणतया सभी पीते है; मांस तो इनका नित्य का भोजन ही ठहरा; सिगरेट तो मुलाकात के समय भेंट की वस्तु हो गई है; सदाचार का यह हाल है कि ऐसे स्त्री और पुरुष विरले ही मिलेंगे जो अपने विवाह के समय छाती पर हाथ रखकर यह कह सकें कि विवाह से पहले किसी पुरुष अथवा स्त्री के साथ उनका अनुचित सम्बन्ध न था।

"सचमुच एक भारतीय आदर्शों के पुजारी के दिल पर यह सब देखकर बड़ी ठेस लगती है और वह बेइख्त्यार कह उठता है—'ऐसा योरुप शक्तिशाली क्यों है ?'

जब हम रोम-साम्राज्य के उत्थान और पतन का इतिहास पढते है, या दुर्दमनीय तुर्की-साम्राज्य की कथा बाँचते है, तब यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि जो जातियाँ विषय-लोलुप होकर शराब के नशे में डूब गई, जिन्होंने अपना चरित्र भ्रष्ट कर दिया, वे जातियाँ अपना जीवन-रस खोकर निर्बल होगईं और उनका साम्राज्य नष्ट होगया। अच्छा, तो योरुप का नाश क्यो नही होता ? योरुप-समाज के सङ्गठन और उसकी शक्ति के लिए कौन-सा स्तम्भ है जो उसे गिरने से बचा रहा है—जो उसे रोके हुए है ? कौन-सा वह मन्त्र है जो इंगलिस्तान की शक्ति को पतन से रोक रहा है, जो दूसरे योरुपीय राष्ट्रो को नाश से बचा रहा है ? नवभारत के निर्माताओ के निमित्त तथा भारतीय आदर्शों के उपासको की शान्ति के लिए हम इस विषय पर प्रकाश डालते है।

यदि आप व्यायामशाला के किसी चौडे मैदान मे उस दिन दर्शक के तौर पर खड़े हो जायँ जब विद्यार्थियो की लोह-गेद फेकने की आजमायश हो, तो आप यह देखेगे कि कम या ज्यादा शक्ति के अनुसार गेंद आगे-पीछे जाकर ठहर जाती है। लडके की भुजा के बल के अनुसार गेद मे गति आती है और जब उस बल की गति खत्म हो जाती है तब गेंद निर्जीव होकर भूमि पर विश्राम करती है।

यह एक साधारण उदाहरण इस विषय को खूब स्पष्ट करता है।

पिछले पाँच सौ वर्षों के योरुप के इतिहास पर दृष्टि डालिये। स्पेन की शक्ति ने कैसे अद्भुत चमत्कार किये थे ! दक्षिण अमरीका मे स्पेनिश भाषा का झंडा स्पेन की उसी साम्राज्य-शक्ति का द्योतक है। फ्रास की कितनी ज़बरदस्त शक्ति रही और आज भी मौजूद है ! आस्ट्रिया का साम्राज्य कैसा समृद्धिशाली था ! वीएना एक समय योरुप की राजनीति का केन्द्र था। ज्वालामुखी तुर्की-साम्राज्य नष्ट होकर आज एक चिनगारी

सा रह गया है। फ्रांस अभी तक स्पेन की भाँति निर्बल क्यों नहीं हुआ ? फ्रांस भी तो रोमन कैथोलिक है ! इङ्गलैण्ड अभी तक मार क्यो नहीं खा सका ? उसकी शक्ति-वृद्धि क्यों होगई ? इतनी भारी मार खाकर जर्मनी फिर कैसे उठ रहा है ? आस्ट्रिया क्यो सदा के लिए खत्म होगया है ? इन सब प्रश्नों को आज हमें जानना चाहिये, क्योंकि हम राष्ट्र-निर्माण में लगे हुए है और हमें भारत को एक प्रबल राष्ट्र बनाना है।

देखिए, यदि कोई समाज निर्जीव होकर मृत्यु को प्राप्त होना नहीं चाहता, यदि कोई राष्ट्र अपनी शक्ति को बराबर बनाये रखना चाहता है, तो उसका मुख्य कर्तव्य है कि वह अपने जीवन-रस के स्रोत को न सूखने दे। जीवन-रस के वे स्रोत भी दो प्रकार के है—एक स्थायी (आध्यात्मिक) जिसका सम्बन्ध अनादि ब्रह्म से है और दूसरे अस्थायी (प्राकृतिक) जो भूचाल आदि से निकल पडते है या कभी खोदते हुए मिल जाते है। यहाँ इस समय हम योरुपीय राष्ट्रो के विषय में कह रहे है, इसलिए हम पहले दूसरे प्रकार के जीवन-रस की विवेचना करते है।

अट्ठारहवी सदी के अन्त में भयङ्कर भूचाल (राज्य-क्रान्ति) फ्रास मे आया था। उसने योरुप में राष्ट्र-सगठन का मजबूत आदर्श खड़ा कर दिया। उस आदर्श के जीवन-रस से योरुप मे नवजीवन का सञ्चार हुआ। भूचाल द्वारा उत्पन्न हुए उस जीवन-रस के स्रोत का पता योरुप-समाज को लगा है। उससे उसमे विचित्र गति उत्पन्न हुई है, अद्भुत चेतनता आई है, विस्मयजनक सगठन हुआ है। अब जो उस चेतनता को बराबर जारी रक्खेगा, जो उस जीवन-रस-स्रोत को न सूखने देगा, जो भूचाल द्वारा प्राप्त वेग में अपना नया वेग उत्पन्न कर उसे बढ़ाता रहेगा, वह तो जीयेगा और जो उस वेग से ही काम लेगा वह वेग खत्म होने पर स्वयं भी खत्म हो जायेगा।

जर्मनी, फ्रास और इंगलैंड को यह बात मालूम होगई है। वहाँ का समाज यह बात भले प्रकार समझ गया है कि यदि वे अपने राष्ट्रो की जीवन-रक्षा के लिए जीवन-रस पैदा न करते रहेंगे तो बहुत शीघ्र

उनका नाश हो जायगा। अतएव विषय-भोग के सब दुर्गुणों को रखते हुए भी वे मूल सिद्धान्त को बड़ी दृढ़ता से पकड़े हुए हैं और उसकी रक्षा के लिए लाखों-करोड़ों रुपये खर्च करते हैं। राष्ट्र-जीवन के उसी जीवन-रस का रसास्वादन कराने के लिए हम इतनी खोजकर, बर्लिन की व्यायाम-शालाये देखकर, यह कह रहे हैं कि वहाँ लड़कियाँ-लड़के खूब व्यायाम करते हैं। जैसे लड़कों के लिए बृहत् व्यायामशालायें हैं, वैसी ही लड़कियो के लिए भी हैं। जर्मनी के प्रत्येक नगर, क़स्बे और ग्राम में व्यायाम-शालाओ की धूम है। उछल-कूद, दौड़, तैरना, मुक्केबाज़ी, क़वायद, स्केटिंग, जिमनास्टिक—जो-जो लड़के सीखते हैं, सब लड़कियाँ बराबर वैसा ही अभ्यास करती हैं। पच्चीस-पच्चीस हज़ार लड़कियाँ-लड़के जब ख़ास अवसरो पर एक बड़े मैदान में क़वायद करते हैं, तब सचमुच समा बँध जाता है और भारतीय आदर्शों का प्रशंसक सैलानी कह उठता है—'ऐसी लड़कियाँ-लड़के रखने वाले समाज को मनुष्य तो क्या, साक्षात् ब्रह्मा भी नही मार सकता।'

स्मरण रखिये, राष्ट्र की शक्ति बलवान् लड़के और लड़कियो पर निर्भर है। वह शक्ति, वह जीवन-रस उत्पन्न होता है व्यायाम से। जो राष्ट्र अपना धन सुन्दर व्यायामशालाओ के निर्माण में खर्च करता है, जो समाज अपना सोना-चाँदी अपनी कन्याओ के नाक-कानो में बेड़ियाँ डालने में खर्च न कर उन्हे फुर्तीली, सुडौल और वीरा बनाने में खर्च करता है, वह राष्ट्र—वह समाज—सदा जीवित रहता है। फ्रांस इङ्गलैंड और अमरीका में व्यायाम के लिए करोडो रुपया खर्च होता है। उनकी लड़कियो को उनकी मर्ज़ी के विरुद्ध आप छेडिए तो सही, वे सिर फोड़ देती हैं। वे निर्भय, निर्द्वन्द्व और अकेली जङ्गलो, पहाडो में विचरती हैं। जर्मन लडकियाँ आज अपने राष्ट्र की रक्षा के लिए कमर कस कर तैयार हो रही हैं। उनका बदन फुर्तीला, चुस्त, प्रत्येक अङ्ग कसरती सुडौल है। किसी लडकी का मोटा पेट नही, किसी लड़के के बदन पर मांस के लोथे नहीं। माप का खाना, जल्द हज़्म होने वाली चीज़ें खाना, शरीर

रक्षा के सभी नियमों का वे बराबर ध्यान रखते हैं। यही कारण है कि योरुप में और बुराइयों के होते हुए भी जीवन-रस की कमी नही होने पाती। यही लड़कियाँ जब मातायें होती हैं उस समय उनके बच्चो को आप देखिये।

पिछले फ़रवरी मास में एक दिन बहुत बर्फ़ पड़ी। मेरा एक प्रेमी जर्मन मित्र मुझसे मिलने के लिए आया और बोला—'चलो घूमने चले।'

हम चल पड़े। साथ में उसका एक छोटा-सा लड़का था। मैंने समझा, आठ नौ वर्ष का होगा। उस दिन हम लोग तीन-चार मील बर्फ में घूमे। सारा रास्ता वह लड़का दौड़-दौड़ कर बर्फ़ पर अपने बूटो से ही स्केटिङ्ग करता चला जाता था। थोड़े-थोड़े फासले पर छोटे-छोटे टुकड़े भूमि के हिम से ढके थे। वह लड़का दौड़कर उन पर फिसलता और बराबर अपना बोझा सम्हाले रखता था। बातचीत करते हुए मैंने अपने जर्मन मित्र से कहा—

"आपका लड़का है तो आठ नौ वर्ष का ही, पर मज़बूत है। सारा रास्ता पट्ठा दौड़ता ही आया है।"

वह मेरे मुँह की ओर विस्मित होकर देखने लगा और बोला—'यह तो चार वर्ष का लड़का है। अभी जनवरी में उसके चार वर्ष पूरे हुए हैं।"

मैं हैरान रह गया। मुझे सिएटल (अमरीका) के नाई का वह लड़का याद आ गया जो बाज़ार में अख़बार बेचने आया करता था, जिसकी माँ मुझसे कहा करती थी—"मेरा लड़का अभी पूरे चार वर्ष का नही है, तो भी अख़बार बेच कर पैसा कमा लेता है।"

"व्यायाम ! व्यायाम !" सचमुच यह राष्ट्र-जीवन-रस का स्रोत है। तन्दुरुस्ती का यह खजाना है। स्वस्थ विचारो का यह मित्र है। निर्भीकता का यह जनक है। जीवनानन्द का तो मन्त्र ही है। यूनान के लोग जिस समय व्यायाम के प्यारे थे, उसी काल में उन्होने दर्शन, कला,

विज्ञान की नींव डाल दी थी। उनका उसी समय का आदर्श आज योरुप को स्फूर्ति दे रहा है और उन्ही प्राचीन नामो को अमर कर रहा है। यूनान की सङ्ग-तराशी (Sculpture), मूर्तिकला के नमूने, उनके पहलवानो और वीरो की मूर्तियाँ आज भी उनकी उस निर्मल कीर्ति की याद दिलाती है। जाति जब तक अपने बच्चो को व्यायामशालाओ में भेजती रहती है, जब तक वह बराबर उत्साह और उत्तेजना देकर अपने वीरों की वृद्धि करती रहती है, जब तक वह अपनी स्त्रियों को लड़कों की तरह तन्दुरुस्त, सुडौल और फुर्तीला बनाने के लिए व्यायाम कराती रहती है, तब तक वह जाति अथवा राष्ट्र सदा स्वतन्त्र और बलशाली बना रहता है। जर्मनी ने उस तत्त्व को पा लिया है। लडके नाचघरों में जाते है, लडकियां कीनो-थिएटरो मे अपने प्रेमियो से मिलती है, शराब-माँस का व्यवहार खूब होता है, औरत-मर्द खूब सिगरेट पीते है, पर ये सब करते हुए भी वे अपने शरीर और व्यायामशाला को भूल नही जाते। वे जीवन-रस को उत्पन्न करने में बराबर प्रयत्नशील रहते है।

अगर कोई राष्ट्र ऐसा भाग्यशाली हो जो सच्चे, सुखद और सात्विक आदर्श को पा जाये, जिसे अखण्ड-जीवन-पुञ्ज का रहस्य प्राप्त हो, जो जीवन-रस के स्थायी स्रोत के सरस अमृत का रसास्वादन कर चुका हो, जिसे उसका मार्ग अवगत हो जाये और वह उस दिव्य स्रोत की ओर योरुप के परमपुरुषार्थ को साथ लेकर चल पड़े तो फिर सचमुच सोना और सुगन्ध वाली बात हो सकती है। पवित्र आदर्शों को रखने वाले लड़के और लड़कियाँ, आध्यात्मिक भावो में पले हुए नागरिक जब हजारो की संख्या में, प्रातः और सायं व्यायामशालाओं से निकले, जब राष्ट्र की उन्नति के जयनाद से ये वीर और वीरांगनाएं चारो दिशाओं को गुजा दें, तो उस समय संसार में एक नये अभयदान के युग का प्रादुर्भाव हो जाए। फ्रांस की क्रान्ति ने जो राष्ट्रीय युग उत्पन्न किया था वह भूचाल की भयंकर गति का परिणाम था। उसमें साम्राज्य-लोलुपता, इन्द्रिय-सुख-लालसा और प्रकृतिवाद भरा हुआ था। संसार राष्ट्रीयता के सात्विक

स्वरूप की प्रतीक्षा कर रहा है। सभ्य-देशो के लाखो नरनारी उस नये युग के आध्यात्मिक राष्ट्रवाद के लिए तडप रहे है।

उस राष्ट्र-शक्ति के जीवन-रस के स्थायी स्रोत का दिव्य दर्शन आर्य-संस्कृति के प्रतीक महात्मा गांधी का प्यारा केवल भावी भारत-राष्ट्र ही करा सकता है। हमें केवल योरुप के परम पुरुषार्थ की आवश्यकता है। योरुप में आज जर्मनी उस परम पुरुषार्थ में सिरताज है। योरुप के महा-समर ने जर्मनी के अहंकार को तोड दिया। यह बड़ा ही अच्छा हुआ। जर्मन तो अपने सिवा किसी दूसरे को कुछ समझते ही नही थे। महासमर के बाद से जर्मनों में नम्रता आने लगी है। परम पुरुषार्थ में वे सारे योरुप से आगे है। इसीलिए हमने जर्मनी के बालक-बालिकाओ के विषय की नीरोग बाते आप लोगो के सामने रक्खी है। आज इस राष्ट्रीयता के युग में हमें जर्मनी के परम पुरुषार्थ को हृदयगम कर लेना चाहिए। प्रत्येक ग्राम, कस्बे और नगर मे व्यायामशालाये स्थापित कर प्रत्येक बालिका तथा बालक को वहाँ भेजना चाहिए। जमीन में से गडा हुआ धन निकाल कर आज राष्ट्र-शक्ति का जीवन-रस उत्पन्न करना उचित है। लडकियो को गहनो से न लाद कर उन्हे सुडौल, फुर्तीला, निर्भय और वीरांगना बनाइये। ऐसी लडकियाँ, जो गुण्डो की मरम्मत कर सकें, स्टेशन तथा बागो मे बेखौफ घूम सके। हमारा अध्यात्मवाद, हमारी उपनिषदे, व्यायाम-रूपी मन्दिरो के बिना, कोरे शब्द-जजाल बनी रहेगी।

परमात्मन्, क्या मै भी अपने देश के हजारो नीरोग, सच्चरित्र और सुडौल लड़के और लड़कियो को खुले मैदानो मे कवायद करते हुए देखूँगा ? प्रभो, मेरी यह शुभ इच्छा पूर्ण कीजिए।

इस कर्मयोग के मारग मे,
नित्य ओ३म् नाम का जप करना;
हे 'देव' सफल होना जग में,
तो जीवन परम पवित्र बना।

('यात्री मित्र' में से)

तेईसवाँ पुष्प

राष्ट्रों का उत्थान

[श्री स्वामी स्वयज्योति जी के राष्ट्रीय उपदेशों की चर्चा जब हरिद्वार मे फैली, तो वहाँ के नागरिकों का एक डेपुटेशन स्वामी जी के पास पहुँचा और उनसे आग्रहपूर्वक कहा कि वे राष्ट्रोत्थान के साधनो की सविस्तर व्याख्या जन-साधारण को सुनावें, जिससे यह दुरूह विषय सरल हो जाये। श्री स्वामी जी ने इस विषय पर तीन व्याख्यान देने का निश्चय किया। श्रोता लोग बडी सख्या मे श्री गगा जी की नहर के किनारे घास पर एकत्र हुए। कथा के ढग से स्वामी जी ने इस महत्वपूर्ण विषय को जनता के सामने रखा। सबसे पहले उन्होने 'राष्ट्र के लिए आदर्श की परमावश्यकता है' इस विषय को भली प्रकार समझाया; बाद मे उस आदर्श को फैलाने वाले साहित्य की मीमासा की; तत्पश्चात् बलशाली तथा विरोधों का सामना करने वाले नागरिक कैसे हो सकते है, इस बात को थोड़े शब्दो में स्पष्ट किया और अन्त मे शिक्षा के आदर्श पर अत्यन्त प्रभावशाली और सारगर्भित व्याख्यान लोगो को सुनाया। अब हम सबसे पहले राष्ट्रोत्थान विषय पर स्वामी जी ने क्या कहा, इसे पाठको के सामने रखते है, बाद में शिक्षा के आदर्श के गूढ तत्वो की विवेचना भी स्वामी जी के अपने शब्दो मे पाठको को सुनायेंगे।]

हम जब इस बात पर विचार करते है कि पिछले एक हजार वर्षो में भारतवर्ष पर इतने घोर संकट आये और अभी तक यह अपनी उन विपत्तियो से मुक्त न हो सका, तब हमे सचमुच आश्चर्य होता है। इसके पास किसी चीज की कभी कमी नही रही। धन-दौलत भरपूर, लड़वैये अव्वल दर्जे के, बुद्धि बड़ी विलक्षण, और साहित्य का तो कहना ही क्या!

इसका संस्कृत साहित्य अपार ज्ञान से भरा हुआ है। फिर क्यो इस देश ने अपना विकास-पथ छोड दिया ?

क्या यहाँ महापुरुषों की कमी रही ? पिछले एक हजार वर्षों के अन्दर कैसे-कैसे उज्ज्वल सितारे इस देश मे चमके है ! किसी भी प्रान्त को ले लीजिए, सभी जगह अपको ईश्वर-भक्त महात्माओ की प्रतिभा दिखाई देगी। हमे नाम गिनाने से कोई मतलब नही। आप लोग उनसे भली प्रकार परिचित होगे। हमें तो इस बात पर विचार करना है कि किस कारण से यह देश विदेशियो द्वारा पद-दलित होता रहा और इसने अब तक उत्थान का मार्ग नही पकडा। आज भी इस अत्यन्त गिरे हुए काल मे कोई भी समझदार व्यक्ति भारतमाता को वन्ध्या नही कह सकता। यह सदा पुत्रवती रही है और इसने ऐसे लालो को जन्म दिया है कि जिनके उपदेशो से व्यथित आत्माओ को शान्ति मिली। ऐसा होने पर भी इस माता के सकट दूर न हुए। तो क्या इसके पास क्षत्रिय नही थे ?

जहाँ एक ओर भक्त कबीर, दादू, रविदास, चैतन्य, तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई, तुकाराम, एकनाथ, समर्थ गुरु रामदास तथा गुरु नानक जैसे ईश्वर-परायण सन्तो की कमी नही रही, वहाँ दूसरी ओर पृथ्वीराज, सग्रामसिह, प्रतापसिह, शिवाजी, छत्रसाल, रणजीतसिह और हरीसिह नलुआ जैसे वीरो ने भी इस देश के इतिहास को अलकृत किया है। राजपूतों के वीर कारनामो को कौन नही जानता ! यहाँ एक-से-एक बहादुर लोग मौजूद थे, परन्तु तिस पर भी यह देश गुलामी की जजीरों से जकडा रहा। ऐसा क्यो हुआ ?

असल मे बात यह है कि कोई भी व्यक्ति कैसा ही बहादुर, कैसा ही विलक्षण-बुद्धि और कैसा ही शक्तिशाली क्यो न हो, यदि वह अपना उत्थान चाहता है तो उसके पास कोई-न-कोई आदर्श होना चाहिये। जितने भी महापुरुष ससार में हुए है वे सब अपना-अपना आदर्श रखते थे। जब तक आपको यह मालूम नही कि आपको जाना कहाँ है, तब तक आप अपनी यात्रा के लिए सामग्री नही जुटा सकते। ससार सबके

लिए खुला है, उत्थान के अवसर सबके लिए आते है, परन्तु जो अपना आदर्श स्पष्ट रखता है वह बाजी मार ले जाता है और जिसके पास आदर्श नही उसकी अवस्था ऐसी ही है जैसी कि बिना पतवार के नौका। जिधर हवा का झोका आया, उधर ही वह बह जाती है। ऐसे लाखों मनुष्य और स्त्रियाँ ससार मे है जो सब साधन रखते हुए भी कोई विशेष कार्य नही कर सकते, क्योकि उनके पास कोई भी आदर्श नही। वे साधारण लोगो की तरह दूसरो के गुलाम बन कर जीवन व्यतीत करते है—उनके गुलाम जिनके लिए काला अक्षर भैस बराबर है और जो किसी प्रकार का भी चरित्र-बल नही रखते; लेकिन उन लोगों के पास एक आदर्श होता है, वे उसी के बल पर समाज का धन समेट लेते है।

आदर्शवान् व्यक्ति कौन है ? वह, जो अपने ध्येय के लिए पागल हो; जो उसकी प्राप्ति के लिए सब-कुछ बलिदान करने को तैयार हो; जो सब प्रकार के कष्ट अपने लक्ष्य के लिए सह सके और जो मान-अपमान को ताक पर रखकर अपने उद्देश्य के लिए मर मिटे। ऐसे व्यक्ति के लिए संसार मे कुछ भी असम्भव नही। प्रकृति की सब बाधाएँ, समाज की सब रुकावटें और उसका रास्ता रोकने वाले सब लोग उसे देखकर अलग हट जाते है—वे उसे रास्ता दे देते है ; क्योकि वे जानते है कि उसकी शक्ति पहाडी नदी की उस बाढ की तरह है जो अपने रास्ते की सब रुकावटो को बहा ले जाती है।

भारतवर्ष के पास उत्थान के सब साधन थे, परन्तु आदर्श की कमी थी। अपना सारा साहित्य देख जाइये, पहले पन्ने से लेकर आखिरी पन्ने तक खोज डालिये, भारतीय राष्ट्र का आदर्श आपको कही नही मिलेगा। पिछले एक हजार वर्षो का संस्कृत साहित्य कोई नया सन्देश नही देता ! वही पिछली गाथायें, वही पिछले वीरो के चरित्र और उनकी प्रशंसा ! भारतीय राष्ट्र किस प्रकार बन सकता है, कन्याकुमारी से हिमालय तक बसने वाले हिन्दू कैसे एक सूत्र मे बद्ध हो सकते है, किस प्रकार प्रान्तीयता, जात-पांत और छूत-छात नष्ट हो सकती हैं, इत्यादि बातों पर किसी

ने भी विचार नही किया। जो जन-साधारण का साहित्य है वह भक्ति, शृङ्गार और नवीन वेदान्त से ओत-प्रोत है; उसमें राष्ट्रीयता की गन्ध भी नही। जिस देश का ऐसा साहित्य हो उसे ब्रह्मा भी राष्ट्र का रूप नही दे सकता। जो भक्त लोग आये उन्होने देश की भीषण समस्याओं पर गम्भीरता से विचार नही किया, केवल ऊपर से छूकर ही इलाज किया है। देश की राजनीतिक समस्याओ से वे ऐसा ही डरते रहे जैसा कि वर्तमान काल के राजभक्त डरते है। भक्ति-मार्ग सिखलाने वालो ने तो जनता को और भी नपुंसक बना दिया, उन्होने उद्योग और पुरुषार्थ की जड काट दी, झूठे वैराग्य और मायावादी वेदान्त ने जनता को जीवन-संग्राम के सर्वथा अयोग्य बना दिया।

तो क्या इसमे कोई आश्चर्य है कि सब साधन रहते हुए भी इस देश ने दासता की भयकर मार एक हजार वर्षो तक सही ? वे क्षत्रिय वीर कर ही क्या सकते थे ? आदर्श-हीन वे केवल अपनी-अपनी बिरादरियों और छोटे-छोटे राज्यो की रक्षार्थ ही लडते रहे। महाराज पृथ्वीराज का शहाबुद्दीन गौरी के साथ युद्ध हमे साफ बतलाता है कि उनके पास कोई आदर्श नही था। राणा सग्रामसिह वीरशिरोमणि थे, परन्तु ध्येय के न होने से वे थोडी सेना रखनेवाले विदेशी बाबर से मार खा गये। इसी प्रकार वीर प्रतापसिह का दु खद इतिहास है। जिन शिवाजी महाराज के हम गुण गाते है, राष्ट्र का आदर्श उनके पास भी नही था। मराठों का इतिहास इस बात का साक्षी है कि उन्होने एक राष्ट्र बनाने का यत्न नही किया, इसीलिए वे विदेशियो से पराजित हुए।

कैसे मुट्ठी भर अग्रेज विशाल भारत के शासक बन गये और उन्होने सब राजा-महाराजा और नवाबो को गुलामी के द्वार पर बिठला दिया ? इसका उत्तर स्पष्ट है। इङ्गलैण्ड के पास आदर्श था—बृहत् साम्राज्य स्थापित करना। इङ्गलैण्ड के शासको के मस्तिष्क मे साम्राज्य स्थापित करने की स्कीम थी। उन्होने अपना सर्वस्व उस पर लगा दिया और सफल-मनोरथ हुए। वे हमसे अधिक वीर न थे; मुट्ठी भर थे; चरित्र

में हमसे ऊँचे न थे; धन उनके पास नहीं था; परन्तु उनके पास एक सगठित आदर्श था जिसके कारण वे कामयाब हुए।

भला इस बीसवी शताब्दी में आज भारतवर्ष ऐसा अद्भुत बलिदान करने के लिए कैसे खडा हो गया ? क्योकि आधुनिक भारत के पास अपना एक आदर्श है। अंग्रेजी शिक्षा ने भारतीयों को संसार के इतिहास से परिचित कराया। उन्नीसवी शताब्दी में भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न भागों मे ऐसे लोग पैदा हुए जिनमें पहले प्रान्तीय आदर्श की स्फूर्ति हुई। बाबू बंकिमचन्द्र चटर्जी जैसे लेखको ने बंगाल मे राष्ट्रीयता भरी, परन्तु प्रान्तीयता का रग लिये हुए। इसी प्रकार दूसरे प्रातो मे भी लोग खड़े हुए। लेकिन स्वामी दयानन्द सरस्वती और लोकमान्य बाल गगाधर तिलक उन्नीसवी सदी के राष्ट्रीय-आदर्शों के सच्चे जन्मदाता हुए है, जिनके सामने देश की स्वाधीनता और स्वदेशी का आदर्श बिल्कुल स्पष्ट था। महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का उपकार तो निस्सन्देह भारत-सन्तान कभी नही भूल सकती कि जिन्होने भारतवर्ष के लोगों को अपना पिछला गौरव बतलाकर स्वाधीनता के आदर्श को स्पष्ट कर एक राष्ट्र की सजीव मूर्ति जनता के सामने खड़ी कर दी। जैसे शरीर प्राणो के बिना निर्जीव होता है, वैसे ही किसी राष्ट्र की प्रजा आदर्श के बिना मुर्दा होती है। मेजिनी ने इटली को राष्ट्र का आदर्श दिया, उसी की स्फूर्ति पाकर इटली के नवयुवक सगठित हुए। जर्मनी, फ्रास, आयरलैण्ड और अमरीका के इतिहास भी हमें यही शिक्षा देते है।

अतएव किसी राष्ट्र के उत्थान के लिए सबसे पहली चीज उसका आदर्श है। जैसा आदर्श राष्ट्र रखता है, वैसी ही शक्तियो से वह सम्पन्न हो जाता है। आदर्श विचारो का पुञ्ज है। यदि छोटा आदर्श है तो विचारों की उड़ान दूर तक नही जायेगी; इसलिये आदर्श सदा ऊँचा रखना चाहिये, तभी शक्तियो का पूर्ण विकास होता है। यदि आज भारतवर्ष के सामने प्रान्तीयता का ध्येय रहेगा और प्रत्येक प्रान्त अपनी ही उन्नति को मुख्य समझकर पैर बढायेगा और बंगाल वालों की तरह

सात करोड़ बंगालियों के ही गीत गायेगा, तो विशाल-भारत का निर्माण कभी नही हो सकता। उलटा कभी अवसर आने पर इस देश के खण्ड हो जायेंगे और योरुप की तरह यह राष्ट्रो का समूह बन जायेगा जो किसी भी अवस्था मे वांछनीय नही। ऐसी ही बात को सोचकर मुसोलिनी ने इटली की प्रान्तीयता को नष्ट करने का दृढ-सकल्प किया था। उसके छोटे-छोटे प्रान्त अपने आपको एक दूसरे का दुश्मन समझते थे। फासिज्म का आदर्श लेकर मुसोलिनी ने इटली की प्रान्तीयता को नष्ट किया था और उसे उत्थान के विशाल मार्ग पर खडा कर दिया था। भारतवर्ष में भी भारतीय राष्ट्र के निर्मल आदर्श को जब तक देश के कोने-कोने में नही फैलाया जायगा, जब तक साधारण जनता को उस आदर्श का मूर्तिमान् ज्ञान नही होगा, तब तक कभी भी हमारा सुदृढ सगठन नही हो सकता। राष्ट्र के उत्थान के लिए आदर्श की स्पष्टता, उसका सर्वसाधारण में प्रचार अत्यावश्यक है।

राष्ट्रोत्थान के लिए दूसरी चीज़ है साहित्य। जब आदर्श स्पष्ट हो जाये तब प्रत्येक कवि और लेखक का धर्म है कि वह अपनी लेखन-शक्ति का उपयोग इस पवित्र कार्य के लिए करे। वह जनता को उस ध्येय के प्रत्येक अग की उपयोगिता समझावे और ऐसी कविता की रचना करे जिसमें उस आदर्श की पूर्ति का मार्ग बतलाया हुआ हो। साहित्य जनता का आत्मिक भोजन है। जिस प्रकार के ग्रन्थ किसी राष्ट्र के बच्चे पढ़ते है, वैसा ही उनका मस्तिष्क और शक्तिया हो जाती है। लोग हमसे पूछते है कि श्रीमद्भगवद्गीता के होते हुए हिन्दू भीरु क्यो है? इसका उत्तर यह है कि आम जनता झूठे वैराग्य के गीत सुनती है, शृङ्गार-रस से भरी हुई गाथाएँ और कविताएँ पढती है, भूत-प्रेत, जादू-टोना और झूठी दया के वातावरण मे सांस लेती है, भय के दुर्ग इसके चारो ओर खडे है, तब भला इस जाति के लोग निर्भय कैसे हो सकते है? जो गीता पढते है वे भी उसे अनासक्ति-रूप मे देखकर, उसके व्यक्तिवाद में डूब कर केवल अपनी शान्ति की तलाश मे रहते है। यही हिन्दुस्तानी तो

सिपाही है, जिनकी सहायता से अंगरेजों ने चिरकाल तक साम्राज्य सुदृढ़ किया था और जिनके सहारे यह खड़ा रहा । यह सब कमजोरी बुरे साहित्य के कारण रही । हमे बचपन से ऐसे ही विचार माता-पिता से, गुरु से और साधु-महात्माओ से मिलते है, जो हमे अत्यन्त डरपोक बना देते है । जब तीर्थो पर जाते है तो बन्दर, कछुए और मगरो का भय हमारे बच्चो के दिलो मे जम जाता है; तब भला हम किस बूते पर निर्भीक हो सकते है ?

स्मरण रखिये, यदि आप अपने राष्ट्र का उत्थान चाहते है तो ऐसी सभी पुस्तको, गीतो और विचारो को समूल नष्ट कर दीजिए जो भारतीय आदर्श के विघातक है । जब आपका आदर्श स्पष्ट है तो उसकी सिद्धि के लिए आपको अपनी प्यारी-से-प्यारी वस्तु बलिदान कर देनी होगी । इस प्रकार की कहावतो, उक्तियो और कविताओ की रचना कीजिए जो आदर्श के मार्ग मे बाधा देने वाले विचारो को दूर करे और सगठन की भावना जागृत करे। जब इगलिस्तान के लोगो मे साम्राज्य स्थापित करने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई थी तो वहा के लेखको और कवियो ने वैसे ही साहित्य को जन्म दिया था । शुद्ध राष्ट्रीयता तभी सुदृढ होती है जब अपनत्व की भावना जागृत हो, दुनिया को मिथ्या न समझा जावे, बल्कि वह सत्यस्वरूप दिखाई दे । हम तो पुनर्जन्म को मानते है । हमारे लिए यह अत्यन्त स्पष्ट होना चाहिये कि 'ससार सत्य है, मिथ्या नही ।' 'मृत्यु केवल परिवर्तन का नाम है, नाश का नही ।' 'हम मरकर फिर नया शरीर धारण करेगे और अपनी इच्छानुसार इसी देश मे जन्म लेगे ।' पिछले सत्याग्रह-सग्राम मे जो हजारो नवयुवक और युवतियाँ जुटी थी, वह सब उसी साहित्य का परिणाम था जो कि पिछले पचास वर्षो मे इस देश मे लिखा गया था । यदि हममे इस प्रकार की सामाजिक बुराइयां, मिथ्या-वैराग्य के गन्दे विचार और शृङ्गार-रस का इतना अधिक साहित्य न होता तो आज भारतवर्ष कभी का शक्तिशाली हो जाता । दुःख की बात यह है कि हमारे पास गन्दा और अश्लील साहित्य इतना अधिक है,

हमारे पुराण और दूसरे ग्रन्थ इस प्रकार की लचर बातों से भरे हुए है कि जिनकी वजह से हमारे चरित्र का दर्जा बहुत नीचा होगया है। चार आदमी जहां बैठकर हँसेंगे, वे फौरन अश्लीलता पर उतर आयेगे। गली में जाइये, चाहे बाजार में; रेलगाडी मे बैठिये, चाहे नदी-किनारे; विवाह-उत्सवो में सम्मिलित हूजिये अथवा रेलो में जाकर देखिये; हमारे लोगों का चरित्र ऐसा हीन है, उनके विचारो मे इतनी गन्दगी है कि वे ऊंची बात सोच ही नही सकते। जहां कही ठट्ठा-मसखरी की बातें होगी वही अश्लीलता, बुरा मज़ाक सुनाई देगा। हमारे शिक्षित कवि अपना सम्मेलन करने बैठते है, तब वहा भी उनके मस्तिष्क की गन्दगी की धारा बहने लगती है। ऐसा क्यो है ? केवल इसलिए कि हमारा पिछले पाच सौ वर्षो का संस्कृत और हिन्दी का साहित्य बहुत अधिक शृङ्गार-रस मे रगा हुआ है।

सक्षेप में इस विषय पर हमारा कहना यह है कि यदि भारतवर्ष पिछले एक हजार वर्षों से विदेशियो के पॉवो-तले रौदा गया, तो इसके विशेष कारण थे। इसमे किसी को दोष देने की आवश्यकता नही। हमारे खुशामदी लेखको और कवियो ने अपनी कलम का सारा जोर राजाओं की खुशामद और धनियो की तारीफ मे लगा दिया। जैसा साहित्य उन्होने पैदा किया, जैसे विचारो को उन्होने गाया, वैसा ही जनता को उन्होने बनाया। साहित्य प्रजा की आत्मा होती है। उन ग्रन्थो से हिन्दू जनता की निर्बल आत्मा का दर्शन होता है। शताब्दियो से पडे हुए वे बुरे संस्कार आज हमें इस बीसवी सदी में कैसे भौडे और नीच मालूम होते है और हमे आश्चर्य मालूम होता है कि वे हमारे पूर्वज कैसे थे जो केवल दूसरों को खुश करने में ही अपना मस्तिष्क खर्च करते थे ! आज हमे उनके पापो का प्रायश्चित्त करना है और ऐसे साहित्य की रचना करनी है जो विशाल भारत का निर्माण करे और भारतीयो को उनकी श्रेष्ठतम संस्कृति के योग्य बनावे। आज कवियो और लेखको का उत्तरदायित्व बहुत बडा है। पुस्तकें लिखने से यदि धन मिलता है तो उसे गौण

समझना चाहिये; मुख्य हेतु आदर्श की पूर्ति के लिए सामग्री जुटाना है। यदि हमारी कोई पुस्तक, हमारा कोई विचार, हमारी कोई कविता और कोई लेख जनता को आदर्श से भ्रष्ट करने वाला हो, तो तत्काल उसका गला घोंट देना चाहिये और लाखो रुपये मिलने पर भी जनता को पथ-भ्रष्ट होने देना उचित नही। साहित्य-सेवियो का राष्ट्र के उत्थान में बहुत बड़ा भाग है। वे उसके निर्माता होते है। उनका काम रचनात्मक कार्य करना है, कल्पना-शक्ति के घोडे दौडाना नही; खाली पत्तो, फूलो, हवा और पानी के शब्दो से मनमाने भाव निकाल कर अपना चित्त प्रसन्न कर लेना या दूसरे बेकार धनियो को प्रफुल्लित करने मे किसी कविता का महत्व नही। वह है केवल मानसिक विलास। कवि के रंगीले शब्दों की आप प्रशसा कर ले, उसकी कल्पना-शक्ति की उडान के आप गीत गा ले और उसकी अलबेली बातो से आप सन्तुष्ट हो जाएं, परन्तु उससे जन-साधारण का कोई कल्याण नही हो सकता। इस प्रकार की कविताए और लेख बहुत लिखे गये, उनके लिये कवियो ने धनवानों से खूब पैसा भी पा लिया और उपाधियाँ भी ले ली, परन्तु उनसे राष्ट्र का उत्थान नही हुआ। राष्ट्र का उत्थान तो उन कविताओ से होता है जो जन-साधारण मे बल भरती है, उन्हे आत्म-विश्वास सिखलाती है, उन्हे मनुष्य बनाती है, और उनके चरित्र को ऊँचा करती है। कवि और लेखक तो राष्ट्र से अलग हो ही नही सकते। वे राष्ट्र की रोटी खाते है और उसी के नागरिक है। उन्हे कोई अधिकार नही कि वे थोथी बातो मे अपना और दूसरो का समय नष्ट करे और सामने खडी हुई भयकर समस्याओं के हल करने में जनता की मदद न करे। आज तक किसी हिन्दी कवि ने कोई लोक-प्रिय राष्ट्रीय गीत नहीं दिया, जिसे हजारो नागरिक मिलकर गा सके और उसके अर्थ समझ सके। 'वन्दे मातरम्' का गीत ऐसा विकट, जटिल और दुर्बोध है कि उसका अर्थ भी लोग नही समझ सकते, फिर जबरदस्ती उसे गाया जाता है। आज इस बात की बडी जरूरत है कि हम स्वाधीन-भारत के आदर्श की पूर्त्ति के अनुकूल साहित्य की रचना

करें; तभी हमारा उत्थान सुदृढ होगा।

हमने आपके सामने दो बाते रक्खी है—आदर्श और आदर्श का प्रचार करने वाला साहित्य। जब आदर्श स्पष्ट हो जाय, तो सुन्दर और सुबोध साहित्य द्वारा उसका प्रचार जनता मे किया जाना चाहिए। परन्तु इतने ही मे किसी राष्ट्र का उत्थान नही हो सकता। तो फिर तीसरा ऐसा कौन सा साधन है जिसकी सहायता से राष्ट्रो का उत्थान हो सकता है? लीजिये, अब हम आपके सामने अत्यन्त उपयोगी तीसरे साधन की विस्तृत व्याख्या करते है।

प्रकृति मे हम क्या देखते है? क्या प्रकृति हमे यह नही सिखलाती कि ससार सग्राम-भूमि है? हमारे चारो तरफ़ युद्ध हो रहा है। कोई भी पौधा पनप नही सकता, उसका विकास नही हो सकता, वह वृक्ष नही बन सकता, जब तक कि उसमे विरोधात्मक वातावरण का सामना करने की शक्ति न हो। सरल-हृदय किसान भी इस बात को जानता है कि उसका लहलहाता खेत कभी मनोवाछित फल नही दे सकता, यदि वह कोमल पौधो को इर्द-गिर्द के नाशकारी निकम्मे झाड-झंकाड़ो और कीट-पतगो से नही बचायेगा। कुहरा भी उसके खेत का शत्रु है। ओले भी उसकी खडी हुई फसल का सत्यानाश कर देते है। जिन शत्रुओ को दूर करने की योग्यता उसमे मौजूद है, उनका सामना वह अपनी पूरी शक्ति लगा कर करता है और जहाँ वह अपनी बेबसी देखता है वहाँ वह सिर झुकाकर भाग्य के भरोसे पर रह जाता है।

स्मरण रखिए, व्यक्ति और राष्ट्र के उत्थान का रहस्य इस एक बात पर अवलम्बित है कि विरोधात्मक ताकतो का मुकाबिला करने की शक्ति व्यक्ति और राष्ट्र मे किस दर्जे तक है। छोटा-सा ठण्डी हवा का झोका हजारो मनुष्यो को व्याधियो से जकड़ देता है और बहुत से भाग्य-शाली वीर्यवान् पुरुष ऐसे है जो बर्फीले मैदानो में भी नंगे सिर मस्त होकर घूमते है—शीत उनका कुछ भी नही बिगाड़ सकता। ज्येष्ठ-आषाढ की जिस धूप में भारतीय किसान निःसंकोच होकर अपने खेत में

घूमता-फिरता है, वही धूप सुकुमार लोगों को बीमार कर देती है और कुछ को मृत्यु के घाट भी उतार देती है। कहने का तात्पर्य यह है कि किसी व्यक्ति अथवा राष्ट्र को यदि अपना उत्थान करना है, तो उसे बड़ी सावधानी से अपने इर्द-गिर्द निरीक्षण करना होगा। विरोध करने की शक्ति (Power of Resistence) जितने दर्जे तक आप में मौजूद है, उसी निस्बत से आपका उत्थान अवश्यम्भावी है। लाखों मनुष्य और स्त्री उत्थान के इस रहस्य से अनभिज्ञ है, इसी कारण उन्हें जीवन में सफलता प्राप्त नही हो सकती।

आप भारतवर्ष के इतिहास को ही ले लीजिए। इस देश पर आक्रमणकारी आए, परन्तु हम मे विरोध करने की शक्ति नही थी, इस लिए उनके सामने सिर झुका दिया। चार सौ लडाकू शस्त्रधारी पठानो ने प्रान्त विजय कर लिए। क्यो ? क्या उन प्रान्तो मे बलवान् स्त्री-पुरुष नही थे ? थे, किन्तु उनमें विरोध करने की हिम्मत नही थी, उनमे सगठन नही था। भारत का पिछले एक हजार वर्ष का इतिहास हिन्दुओ की इस नासमझी का इतिहास है। हिन्दू कभी भी अपने इर्द-गिर्द नही देखता, मानो आत्मरक्षा की भावना उसमे से नष्ट होगई हो। वह इतना अधिक वेदान्ती, झूठा वैरागी और किस्मत का गुलाम है कि उसने उत्थान के इस सत्य सिद्धान्त पर कभी भी गम्भीरता से विचार नही किया। जो मानसिक अवस्था जन-साधारण की होती है उसी के अनुसार राष्ट्र का मस्तिष्क बन जाता है। भारतवर्ष मे ऐसा ही हुआ। हमारे पडोस में ज्वालामुखी पर्वत फटा। उसमे से निकला हुआ लावा इर्द-गिर्द के देशो को भस्म करता हुआ हमारे देश की सीमा तक आ गया, किन्तु हमे खबर तक नही हुई। एक प्रान्त मे विदेशी डाकू भयकर मार-काट कर रहे है, मन्दिर तोड रहे है, खजाने लूट रहे है, पर दूसरे पड़ोसी-प्रान्त के लोग चुपचाप बैठे ताक रहे है। क्या आप आशा कर सकते है कि इस प्रकार का राष्ट्र कभी उठ सकता है ? ऐसे राष्ट्र के लोगों को तो दूसरो की लकडियाँ चीरना और उनका पानी भरना ही पडेगा।

अतएव सावधान होकर सुनिए। संसार का पिछले हजारो वर्षों का अनुभव यह है कि प्रत्येक राष्ट्र का यह परम धर्म है कि वह परिस्थिति के अनुसार अपने में विरोधात्मक शक्ति (Power of Resistence) तैयार रक्खे। ऐसा न साचे कि अवसर आने पर सब कुछ हो जायगा। घर मे आग लगने पर कुआँ नही खोदा जाता। यदि इगलिस्तान के लोग इस नियम को भली प्रकार समझ कर अपनी जंगी जहाजी शक्ति को इर्द-गिर्द के शत्रुओ के मुकाबिले में तिगुनी न रखते, तो क्या वे आज अपना साम्राज्य कायम रख सकते थे? नही नही। उनका अस्तित्व ही मिट जाता, उनकी स्वाधीनता नष्ट हो जाती, यदि वे फ्रान्स, जर्मनी और इटली, इन तीन शक्तियो के मुकाबिले की सामुद्रिक शक्ति अपनी मुट्ठी मे न रखते। शेखचिल्ली बनने से ससार के काम नही चला करते। दुनिया ठोस चालों की शतरज है। यदि आप उन ठोस बातो को मिथ्या समझ कर भाग्य के भरोसे बैठे रहेगे, तो आपको गुलामी सहनी ही पड़ेगी। क्या अमरीका अपना ऋण योरुप की शक्तियो से वसूल कर सकता है, यदि उसके पास ठोस लडवैये न हो? उस छोटे से जापान को देखिये जो सारी दुनिया की सम्मति की परवाह न कर, रूस के विरुद्ध मचूरिया मे अकड़ कर खड़ा होगया था। वह किस बूते पर? इसलिए न कि उसके पास दुर्दमनीय सेना थी!

हम यह नही कहते कि आप सदा अपने इर्द-गिर्द चोर-डाकू ही देखते रहें, या सदा दूसरो से लडने के स्वप्न ही आपको आते रहे। हमने जापान का उदाहरण आदर्श के तौर पर पेश नही किया और न हम गुण्डेबाजी की राजनीति के पक्षपाती ही है, परन्तु हम यह भी नही चाहते कि आप अपने इर्द-गिर्द के लोगो को बिल्कुल देवता समझ कर अफीमचियो की तरह बैठकर ऊँघा करे। हम बुरी-से-बुरी परिस्थिति के लिए सदा तैयार रहने के पक्षपाती है। व्यवहारकुशल राष्ट्र ही अपना उत्थान कर सकता है—जो व्यवहार में कच्चे है और कोरे आदर्शवादी है, वे अपना उत्थान नही कर सकते। यह सत्य है कि हमें संसार में भ्रातृ-भाव

फैलाना है; यह भी सत्य है कि हम युद्ध के विरोधी है और संसार में शान्ति चाहते है; परन्तु यह भी ध्रुव-सत्य है कि केवल हमारी इच्छा-मात्र से ही दुनिया के नियम नही बदल सकते। हमारा पिछले एक हज़ार वर्ष का अनुभव बडा कडुआ है, लेकिन दुःख की बात यह है कि हम लोग अब तक भी बुद्धू-के-बुद्धू ही बने हुए है। हमने अभी तक भी संसार-संग्राम के रहस्य को नहीं समझा। जंगली जातियाँ भी अपनी परिस्थिति के अनुकूल विरोधात्मक शक्तियाँ पैदा करने का प्रयत्न किया करती थीं और जब वे अपने से अधिक बलवान् के साथ संघर्ष मे आईं तो उनका नामोनिशान मिट गया। हम लोगो ने भी जब मुग़ल-शक्ति को पराजित कर अपना राष्ट्र स्थापित कर लिया, तब उस बलिदान से प्राप्त किये हुए राष्ट्र की हम योरुपीय जातियो के मुकाबिले में रक्षा न कर सके, क्योकि हम लोगो ने प्रकृति के इस उपयोगी सिद्धान्त की महत्ता को नही समझा था। प्रकृति माता के साम्राज्य का यही अटल नियम है—अपने अन्दर विरोधात्मक शक्ति पैदा करना। जिन जातियो को भोजन आराम से मिल सकता है, वे कठिनाई से भोजन पैदा करने वाली जातियो के मुकाबिले में ठहर नही सकती।

पिछले महासमरो ने इस सिद्धान्त को बहुत स्पष्ट कर दिया। जर्मन राष्ट्र इतना शक्तिशाली था कि वह सारे संसार के मुकाबिले में डटा रहा और उसके सिपाही ऐसी वीरता से लडे कि उनके विरोधी भी उनकी प्रशसा किए बिना नही रह सके। विरोधात्मक शक्ति के अन्त होते ही जर्मनी को पराजित होना पड़ा। आज तो विज्ञान के युग में शारीरिक बल के स्थान पर विरोधात्मक मानसिक शक्ति की अधिक आवश्यकता है। वह विरोधात्मक मानसिक शक्ति राष्ट्र में कैसे उत्पन्न हो सकती है, इसकी विवेचना करना परमावश्यक है।

आदर्श, साहित्य और आरोग्यता—इनके विषय में तो हम बतला ही चुके हैं; व्यायाम की व्याख्या हमने विस्तार से अभी तक नही की। विरोधात्मक शक्ति उत्पन्न करने के लिए देश में व्यायामशालाओ का होना तो

परमावश्यक है ही, परन्तु बलशाली नागरिको को हम किस प्रकार परिश्रमी, धैर्यवान् और अध्यवसायी बना सकते है, यह बात गम्भीरता से विचार करने के योग्य है। जब अच्छे-अच्छे बलवान् मनुष्य कठिन परिश्रम के सामने कायर हो जाते है और एक पतला-दुबला मनुष्य घण्टों लगातार कष्ट सह कर उस काम को पूरा कर लेता है, तब हम बेइख्तियार कह उठते है, "यह है विरोधात्मक शक्ति का उदाहरण !" यह शक्ति राष्ट्र मे कैसे उत्पन्न होती है ?

अब हम उतरते है शिक्षा के क्षेत्र मे। जिस दर्जे की शिक्षा कोई राष्ट्र अपनी सतान को देता है, उसी दर्जे तक वहाँ के नागरिक उपयोगी सिद्ध हो सकते है। शिक्षा-प्रणाली भी परिस्थितियो के अनुसार बदलती रहती है। एक समय था जब कि योरुप मे लैटिन और ग्रीक भाषाओ के पडित बडे विद्वान् माने जाते थे और कोई भी शिक्षित मनुष्य इन भाषाओ को जाने बिना पढे-लिखो में आदर नही पा सकता था। परन्तु आज वह परिस्थिति नही रही। यह है विज्ञान और कला-कौशल का युग। इस युग मे भाषाओ का पाण्डित्य धनोपार्जन कही करा सकता और न राष्ट्र के लिए लाभदायक ही बना सकता है। अतएव वर्तमान युग में विज्ञान और कला-कौशल के सीखने की बडी जरूरत है। पग-पग पर इसका काम पड़ता है और जो औज़ारो का प्रयोग नही जानते उन्हें साधारण कारीगरो की भी गुलामी करनी पडती है। इसलिए जो राष्ट्र अपनी शिक्षा को तात्कालिक आवश्यकताओ के अनुसार नही बनाता, वह पिछडा हुआ राष्ट्र कहलाता है। उसके नागरिको मे विरोधात्मक शक्ति पूरे दर्जे तक नही आ सकती। शिक्षा के विषय पर आजकल चिन्तनशील विद्वानो मे बहुत कुछ विचारभेद है, परन्तु हम अपनी स्वतन्त्र राय आपको कल के व्याख्यान मे बतलायेंगे।

चौबीसवाँ पुष्प

शिक्षा का आदर्श

[शिक्षा-सम्बन्धी श्री स्वामी जी का व्याख्यान सुनने के लिए आज नहर पर बडी भीड़ हुई, क्योकि इस व्याख्यान को स्वामी जी महाराज ने भारत के बड़े-बड़े नगरो में हजारो श्रोताओ के सामने दिया था। यह उनका अत्यन्त प्रसिद्ध व्याख्यान होने के कारण हरिद्वार के साधु-महात्मा इसे सुनने को बड़े उत्सुक थे और शिक्षा के विषय मे स्वामी जी का विचार जानना चाहते थ। उसी व्याख्यान को आधुनिक रूप में हम अपने पाठकों के सामने रखते है।]

"Decisive changes in human opinion—political, religious, or scientific—involve corresponding change in the purpose and methods of education".

—*Compagre.*

भारतवर्ष में इस समय शिक्षा की पुकार मची हुई है। देशहितैषी सज्जनों ने इस बात को भली प्रकार समझ लिया है कि बिना शिक्षा के इस देश का कल्याण नही हो सकता। भिन्न-भिन्न बिरादरियों के नेता लोग अपने-अपने कार्यक्षेत्र मे शिक्षाप्रचार का यत्न कर रहे है। कायस्थो की पाठशालायें तथा कालेज खुल रहे है, राजपूत-सभाये अपने अनपढ भाइयो की शिक्षा का प्रबन्ध कर रही है, वैश्य-सभाये अपने वार्षिकोत्सव रच कर शिक्षा फैलाने में उद्यत है, सिक्ख भी गाँव-गाँव स्कूल खोल कर अपनी अविद्या दूर करने पर कटिबद्ध है; सब से बढकर जागृति के चिन्ह ये है कि तेली, बढई, लोहार और अस्पृश्य कहलाने वाले मजदूरी-पेशा भारतीय भी शिक्षा ग्रहण करने के लिए चिन्तित है। कहने का तात्पर्य यह है कि आज भारत के एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक यही आवाज हमारे कानो में आती है—"शिक्षा के बिना भारत का कल्याण नहीं हो सकता।"

परन्तु प्रश्न यह है कि किस प्रकार की शिक्षा हमारे बच्चो को इस बीसवी शताब्दी मे अन्य सभ्य जातियों के सम्मुख खड़े होने के योग्य बना सकती है, नही, बल्कि किस प्रकार की शिक्षा द्वारा हम स्वाभाविक जीवन बना कर ससार की जातियो का सामना करते हुए मनुष्य-जीवनोद्देश्य को पूर्ण कर सकते हे । यदि शिक्षा से अभिप्राय उस सड़ी, गली, बोदी, सकुचित, शब्दाभास, हेत्वाभास, अवच्छेदिकावच्छिन्न वितण्डावाद से है, तो हम निश्चय रूप से कह सकते है कि ऐसी शिक्षा द्वारा देश का कल्याण होना असम्भव है । यदि शिक्षा से मतलब समय-कुसमय अग्रेजी की टाँग तोड़ना हो, अथवा मुँह में चुरट दबा, कोट पतलून की सेवा करनी हो, अथवा नौकरियो की तलाश मे 'हाँ हजूर' का अभ्यास करना हो, तो ऐसी शिक्षा से अशिक्षित रहना अच्छा होगा ।

ससार परिवर्तनशील है । शिक्षा का ढंग भी देश-काल की आवश्यकताओ के अनुसार बदलता है । जो आवश्यकताएँ हमारी आज से दो हजार वर्ष पहले थी, वे आज नही है । जिन चीजो की जरूरत आज से पाँच सौ वर्ष पहले थी, आज उनके स्थान पर नई-नई जरूरते खड़ी हो गई है । देश की अवस्था जो आज से तीन सौ वर्ष पहले थी, वह अब नही है । इसलिए स्वाभाविक ही हमारी शिक्षा का ढग वह नही हो सकता जो कि आज से कई सौ वर्ष पहले था; क्योकि जैसी शिक्षा जाति के बच्चो को दी जायेगी उसी के अनुसार जाति की सभ्यता होगी । यदि शिक्षा देश-काल के अनुसार वर्त्तमान जीवन-सग्राम को पूरा करने के योग्य नही है, तो कभी भी उस शिक्षा मे पले हुए व्यक्ति जीवन-दौड के भयकर संग्राम में नही ठहर सकते । गति जीवन का दूसरा नाम है । जो सभ्यता गतिवान् है, जिसकी शिक्षा काल की गति के अनुसार है, उसके नष्ट होने का भय नही । शिक्षाप्रणाली भी नये-नये आविष्कारो से विभूषित, नई-नई आवश्यकताओ को पूरा करने वाली तथा जीवनप्रद होनी चाहिए । जैसे नदी का बहता हुआ जल सदा ताजा और जीवनदाता होता है, वैसे ही किसी पोखर का स्थिर जल गंदगी और बीमारियों को फैलाने वाला

होता है। यद्यपि दोनों प्रकार के जल जलत्व के समान गुण रखते है—उनमे जल के प्रधान गुण विद्यमान है—किन्तु भेद केवल इतना ही है कि एक गतिवान् है, दूसरा स्थिर। जो स्थिर है वही पीछे है, वही मृतप्राय है, उसी का अन्त निकट है।

हम आज संसार से पीछे तथा अन्य जातियो के घृणापात्र क्यो है? इसका कारण हमारी शिक्षा है। हमारे देश में सैकडो पाठशालायें है, जिनमे हजारों विद्यार्थी पढते है। इन पाठशालाओ के चलाने में देश का लाखो रुपया खर्च होता है। वे विद्यार्थी जब संस्कृत की उच्च से उच्च परीक्षा पास करके निकलते है, तो उनको बीस-पच्चीस रुपये की नौकरी भी नही मिलती और यदि उनसे देश, जाति, इतिहास, भूगोल, शिक्षा और विज्ञान आदि विषयो पर कोई प्रश्न किया जाये, तो वे बेचारे बगले झाँकने लगते है। उनकी शिक्षा न तो उनको इस योग्य बनाती है कि वे अपना जीवन-निर्वाह भली भाँति कर सकें और न वे अच्छे नागरिक ही बन सकते है। उनकी वही दशा है जो आज से तीन सौ वर्ष पहले योरुप के विद्वानो की थी। भारत की अवनति का बडा भारी कारण यदि कोई हुआ है तो वह यह कि हमारी जाति के नेताओ ने कालक्रमानुसार शिक्षा-प्रणाली के बदलने का यत्न नही किया। यूनानी यहाँ पर आये; उन्होने हमें ठोकरे लगाई; हमारे ग्रन्थ चुराकर ले गये; परन्तु हमने उनसे कुछ भी शिक्षा ग्रहण न की। मुसलमानो के जबरदस्त धावे हुए। वे हमारे ग्रन्थ, हमारे रत्न, हमारा धन चुरा कर ले गए, परन्तु हमने तिस पर भी कुछ न सीखा। हम अपने अभिमान मे चर रहे; हमने दूसरो से कुछ भी शिक्षा न ली। चाहिये तो यह था कि हम काल की गति के अनुसार अपने पडोसियो के सद्गुणो से अपनी भाषा का भण्डार भरते और अपने बच्चो को अपनी उच्च सभ्यता की शिक्षा देते हुए उनको काल की गति के अनुसार अन्य जातियो के इतिहास तथा उन्नति के उपायो से परिचित रखते। यदि ऐसा किया गया होता तो कभी भी भारत की यह अधोगति न हुई होती और न हम अन्य जातियों से इतने पीछे होते।

यहाँ पर नई और पुरानी शिक्षा के परिणाम भारतीय इतिहास के द्वारा हम दिखलाते है। हमारे इतिहास मे महाराणा प्रताप और महाराजा शिवाजी दो ऐसे महापुरुष हुए है जिनकी तुलना द्वारा पुरानी और नई शिक्षा का परिणाम भलीभाति समझ मे आ सकता है। महाराणा प्रताप प्राचीन सभ्यता के ज्वलन्त उदाहरण थे। उनकी वीरता, साहस, ब्रह्मचर्य तथा आत्म-बलिदान की शक्ति अलौकिक थी। परन्तु इन गुणो के होते हुए भी वे अपने उद्योग मे सफलता प्राप्त न कर सके, क्योकि उन्होने अपने काल की युद्ध-विद्या तथा कुटिल-नीति को नही समझा था। यदि वे अपने वैदिक गुणो के साथ-साथ जमाने की युद्ध-नीति को भी जान लेते, तो वे अकबर के राज्य को जड से उखाडकर फेक देते। मानसिह के साथ उनका झगड़ा करना इस बात को स्पष्टतया सिद्ध करता है कि उन्होने जमाने की नीति को अच्छी तरह नही समझा था। जहाँ एक ओर अकबर अपने कट्टर शत्रुओ को, अपनी बुद्धि-वैचित्र्य से, वश मे कर मुगलो के राज्य की नीव को सुदृढ करने मे लगा हुआ था, वहाँ दूसरी ओर महाराणा प्रताप अपने ही भाई-बन्धुओ तथा राजपूताने के बड़े-बड़े सरदारों को अपने साथ न मिलाकर उलटी उनसे घोर शत्रुता कर रहे थे। हमारा यह अभिप्राय कदापि नही है कि वे अपने धर्म को त्याग कर देते, परन्तु हाँ, यह हम अवश्य कहेगे कि यदि वे देश और काल की गति को समझ कर काम करते तो उनको अपने कार्य मे महान् सफलता प्राप्त होती और वे मुसलमानी राज्य की नसे ढीली कर देते।

अब नए युग के उदाहरण छत्रपति शिवाजी की ओर देखिए। उन मे जहाँ अपने प्राचीन धर्म के लिए अति श्रद्धा थी, वहाँ वे उस समय के राजनीतिक सूत्रो मे भी पारगत थे। औरगजेब जैसा कूटनीतिज्ञ हमारे इतिहास मे दूसरा शायद ही कोई हुआ है। उसके काल मे मुसलमानी राज्य भारत के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैल गया था। हिन्दू-राज्यो का विरोध मिट चुका था। ऐसे समय मे साधन-रहित वीर शिवाजी का खड़ा होना और औरगजेब जैसे बादशाह को नीचा दिखा देना इस बात

का जाज्वल्यमान प्रमाण है कि देश-कालानुसार शिक्षा और शक्ति से सम्पन्न मनुष्य असम्भव को भी सम्भव कर सकता है । संसार एक युद्धक्षेत्र है । उस क्षेत्र में वही पुरुष विजयी होगा जो काल की गति के अनुसार शिक्षा-सम्पन्न होगा । पुराने जर्जर साधन किसी काम नही आ सकते; वे केवल म्यूज़ियम मे रखने लायक रह जाते है ।

इसलिए सोचो और विचार करो । यदि हमारी पाठशालाओ में संस्कृत भाषा द्वारा पाश्चात्यों का इतिहास, पदार्थ-विज्ञान, राजनीति, अर्थ-शास्त्र, रसायन-शास्त्र आदि विषय पढ़ाये जाते होते तथा साथ ही अपना साहित्य, अपने आदर्श पुरुषो के जीवनचरित्र, अपने देश का गौरव भारतीय बच्चों को सिखलाया जाता तो हम कभी किसी जाति से पीछे न रहते । क्या दूसरों से कुछ सीखना लज्जा की बात है ? कदापि नही । अङ्गरेज़ संस्कृत साहित्य पढ हमारे गुणों से लाभ उठा रहे है; जर्मनों ने संस्कृत युद्ध-विद्या के ग्रन्थों का मान किया है; फ्रासीसी हमारे दर्शनो के अनुवाद अपनी भाषा में कर फायदा उठा रहे है । इसके विपरीत हम केवल न्याय, व्याकरण और वेदान्त को घोटने मे मस्त हो रहे है । बस, उन्ही से हमें जन्म भर छुट्टी नही मिलती । जिस इङ्गलैंड में एक शताब्दी के पहले लेटिन और ग्रीक भाषाओ से अनभिज्ञ पुरुष विद्वान् नहीं समझा जाता था, वहाँ आज विज्ञान ने पैर जमाया है । विकासवाद ने अपनी प्रभुता शिक्षा पर कर ली है; वह धीरे-धीरे साहित्य के प्रत्येक अङ्ग में घुस गया है । जर्मनी की शिक्षाप्रणाली में रसायन-शास्त्र, पदार्थ-विज्ञान, बढई का काम, नकशा खीचना, लोहार का काम आदि प्रधान अङ्ग हो गये है, क्योकि आज उनके बिना कला-कौशल का मर्म समझना कठिन है । जिस नील के द्वारा भारतवर्ष की करोड़ो रुपये की तिजारत होती थी, उस व्यापार को जर्मनी ने अपने विद्याबल से अपने हाथ में कर लिया था । पिछली शताब्दी से शिक्षाप्रणाली के क्रम में बड़े-बड़े अद्भुत परिवर्तन हुए है, परन्तु भारत उन्हीं पुराने जर्जर शस्त्रो से ही संसार का सामना करना चाहता है !

भारत में अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार होते ही कुछ-कुछ जागृति के चिन्ह दिखाई देने लगे थे। उन चिन्हों को देखकर बहुत से देशहितैषी समझने लगे कि अंग्रेजी शिक्षाप्रणाली ही भारतोद्धार का कारण होगी। उन्होंने अपनी सारी शक्तियों को उसी के प्रचार में लगा दिया। बहुत से स्कूल और कालिज खुल गए। उनमें से हजारों विद्यार्थी हर साल पढ़-पढ़ कर निकलने लगे। परिणाम क्या हुआ? क्या हमारी उस शिक्षाप्रणाली ने हमको आज आधुनिक जीवन-दौड़ के योग्य बना दिया है? क्या आज हम अन्य जातियों के मुकाबिले में खड़े हो सकते हैं? क्या इस अंग्रेजी शिक्षाप्रणाली ने हमारा स्वाभाविक जीवन बना दिया है? इन सब प्रश्नों का उत्तर 'नहीं' के सिवा दूसरा क्या हो सकता है! हां, इस शिक्षा-प्रणाली से इतना लाभ अवश्य हुआ है कि हमें अपनी भयानक दुर्दशा का पता लगने लगा है; हमें अपनी तथा दूसरों की पोल मालूम होने लगी है। वह भी उन्हें, जो अपने साहित्य तथा अपनी सभ्यता से परिचित हैं, जो अपनी सभ्यता के गुण-दोष जानते हैं।

असल में हमें उस प्रकार की शिक्षाप्रणाली की आवश्यकता है कि जिसके द्वारा हम अपने भारतीय गुण तथा भारतीय सभ्यता रखते हुए पाश्चात्य सभ्यता के गुणों को धारण कर अपनी उन्नति कर सकें; हम अर्वाचीन जीवन-संग्राम में शस्त्र-शास्त्र-सम्पन्न हों। इस जागृति के काल में हमें अपनी सारी शक्तियों को उस स्वाभाविक शिक्षाप्रणाली के प्रचार में लगाना चाहिए जिसके द्वारा हमारा जातीय-जीवन स्वाभाविक हो—उसमें सर्व प्रकार की उन्नतियों का समावेश हो।

वह शिक्षाप्रणाली कैसी हो? उसका आदर्श क्या होना चाहिये? बीसवीं शताब्दी के भारत को कैसी शिक्षा की आवश्यकता है? इस व्याख्यान में हम इन महत्वपूर्ण प्रश्नों पर अपने विचार प्रगट करेंगे। संसार-भ्रमण के अनुभवों ने हमें इन प्रश्नों के सम्बन्ध में क्या सिखाया है, उसको आप भाइयों के सामने धरते हैं।

स्मरण रखिए, किसी जाति में प्रचलित शिक्षा-प्रणाली की पहचान

उसके इतिहास से होती है। जैसे महापुरुषो के जीवन-चरित्र अपने-अपने नायक की जीवन-घटनाओ को सामने रख, उसकी मानसिक अवस्था का फोटो उतार देते है, इसी प्रकार जाति के जीवन की भिन्न-भिन्न काल की घटनाये, उसके आदर्श, उसकी सामाजिक व्यवस्था, उसकी मानसिक स्थिति का पूरा परिचय देते है। विचारशील मनुष्य उन घटनाओ द्वारा जाति के सामाजिक गुण-दोषो का ब्यौरा जान लेता है। जिस समय की वे घटनाऐ है, वे उस जाति मे प्रचलित उस समय की शिक्षाप्रणाली की व्यवस्था भली प्रकार विदित कराती है। थरमापली के वीरशिरोमणि लियोनीडास की युद्धकथा हमे स्पार्टा जाति की शिक्षा-प्रणाली का रहस्य बतलाती है। यूनानी कला-कौशल की उन्नति का इतिहास तथा उसकी संस्कृति का योरुप पर प्रभाव हमें आश्चर्य मे डालता है, परन्तु वह आश्चर्य बहुत जल्द दूर हो जाता है, जब हम यूनान की तत्कालीन शिक्षा का इतिहास पढते है। रोमन साम्राज्य के पतन के कारणो को समझने के लिए हमें उस काल की प्रचलित पाठ्यप्रणाली को जान लेना चाहिए। दुर्दमनीय मुसलमानी फौजो की जगत्प्रसिद्ध विजयो का कारण हजरत मुहम्मद साहब की धार्मिक शिक्षा में छिपा हुआ है; उनके अध.पतन का इतिहास उनके उस समय के सकुचित विचारो और भोग-विलास की शिक्षा का द्योतक है।

भारतवर्ष के इतिहास मे जिस समय हम महमूद गजनवी के सत्रह धावो का वर्णन पढते है तो चकित हो जाते है। सोमनाथ से सैकडो मील दूर गजनी। उस गजनी से फौज लेकर महमूद आता है, उत्तर-पश्चिम के पहाड, नदियाँ, मैदान सब तय करता है; तय करके बेखटके लूट-मार करता है और करोडो रुपयो का माल-असबाब लेकर अपने घर को लौट जाता है। ये उपन्यास की बाते नही, यह इतिहास है। ब्रिटिश-काल मे तो लोग कहते थे—"हम आर्म्स एक्ट के कारण नामर्द होगए है।" उस समय तो कोई ऐसा कानून अस्त्र रखने के विरुद्ध न था। सोचने की बात है कि एक लुटेरा सत्रह बार आपका घर लूटने आता है;

आपके पास उससे अधिक मनुष्य और शस्त्र है, तिस पर भी आप उसको रोकते नही। इसके विपरीत अधिक सेना और श्रेष्ठ अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित, योरुप का विजेता नेपोलियन रूस पर धावा करता है। मास्को जा पहुँचता है; नगर को जला हुआ पाता है; रास्ते के खेत सब जले हुए है। उसकी फौज भूखी मरती है; बेचारा अपने अधिकांश रणकुशल सिपाही खोकर घर लौटता है।

भारतवर्ष और रूस के लोगो में इतना भेद क्यो ? एक तो अपना घर, जायदाद, बाल-बच्चे और स्वतन्त्रता की रक्षा करने में इतना उदासीन, और दूसरे अपने घर को बचाने मे बड़े-से-बड़ा बलिदान करने के लिए उद्यत है। जो बलिदान रूसियो ने किया, यदि वैसा भारतवासी भी करते तो उन्हे कभी भी महमूद के धावो का दुख न भोगना पड़ता। हिन्दुओ ने वैसा क्यो नही किया ? इसका उत्तर उस काल की हिन्दू शिक्षाप्रणाली से मिलेगा। आप इतनी दूर क्यो जाते है ? हमारे पड़ोसी जापान के बच्चो ने जब पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त की, तो अपनी योग्यता और विद्या को अपने देश की सेवा में लगा दिया। स्थान-स्थान पर स्कूल कालेज खोल कर अपने अशिक्षित भाइयो को अपने बराबर बनाने की धुन मे लग गए। पचास वर्ष के अन्दर उन्होने अपने देश को खड़ा कर दिया। इसके विपरीत हमारे यहाँ योरुपियन शिक्षा पाए हुए लोग अपने ही देश से घृणा करने लगे है। उन्हे अपनी भाषा, अपना भेष, अपना रहन-सहन ही अच्छा नहीं लगता; अपने बन्धु उनको बुरे मालूम होते है। नौकरी के सिवाय दूसरी उनको धुन नही। अपनी योग्यता, अपनी प्रतिभा को वे बेचते जरा नही लजाते। कहने का तात्पर्य यह है कि अपने पिछले डेढ हजार वर्षो के इतिहास को देखकर तथा आज की दशा को सामने रख कर निःसकोच हमारे अन्दर से यह आवाज उठती है—

"कही-न-कही कोई-न-कोई भारी त्रुटि हम मे है।" आज भी हमारा समाज रेत के दानो की तरह बिखरा हुआ है। पैतीस करोड केवल नाम

लेने के लिए है; उनकी कुछ भी हकीकत नही, उनमें कुछ भी बल नहीं। यद्यपि दूसरो ने हमें अपने ढग की शिक्षा देकर, संगठन कर, हम में बल उत्पन्न कर अपनी कार्य-सिद्धि की है, परन्तु हमारे अपने लिए उस बल ने कुछ भी काम नही किया। जब संगठन और बल भरने वाली बाहरी शक्तियाँ अलग हो जाती है तो हम फिर बिखरे हुए रेत के कणो की तरह गिर पडते है।

भारतीय समाज मे सघशक्ति की ऐसी कमी क्यो रही? उसके सभ्यों मे सर्वहित कार्यो के लिए बलिदान का भाव क्यो कम रहा? इन प्रश्नों का उत्तर तथा भारतीय जनसमाज की अपने देश के प्रति उदासीनता का कारण समझने के लिए हमे पिछले दो हजार वर्षो के भारतीय साहित्य पर दृष्टि डाल लेना काफी होगा। इसमें कोई सन्देह नही कि वैदिक काल के आर्यों की शिक्षाप्रणाली मे सगठन-शक्ति को बहुत बड़ा स्थान दिया गया था, क्योकि यदि ऐसा न होता तो वे भारतीय साम्राज्य की स्थापना कैसे कर सकते थे? वेदो के बहुत से मन्त्र संघशक्ति की महिमा प्रतिपादित करते है। परन्तु यह बात भी स्पष्ट है कि बौद्धो के समय के बाद या उससे पहले (क्योकि इसका ठीक-ठीक पता लगाना बडा कठिन है) भारतीय शिक्षाप्रणाली मे 'पृथग्भाव—isolation' ने स्थान ले लिया था। बौद्धो के समय के बाद तो इसकी प्रबलता मालूम होती है। इस 'पृथग्भाव' के सिद्धान्तानुसार व्यक्ति अपने आपको समाज से अलग कर सारी उन्नतियो का केन्द्र अपने आपको मान, केवल अपने ही कल्याण की चेष्टा में रत रहना अपना धर्म समझने लगा। संसार और समाज के प्रति जो उसके कर्त्तव्य थे, वे बन्धन समझे जाने लगे। मनुष्यत्व-लाभ करने के उच्च साधन—गृहस्थ सम्बन्धी सग्राम—को 'जंजाल' की उपाधि दी गई। राजकार्य, सेनासाज, किलेबन्दी, युद्धविद्या आदि देशहितकर कार्य 'जगलीपन' की गणना में कर दिये गये। शिक्षा का सबसे बड़ा उद्देश्य 'No Law' 'सब नियमो से रहित' अर्थात् 'जीवनमुक्त' होगया।

चरमसीमा पर पहुँचे हुए इस व्यक्तिवाद की शिक्षा ने भारत की

सब नसें ढीली कर दी है। हमारे पिछले दो हज़ार वर्षों का साहित्य इसी रंग में रगा हुआ है। हमारी शिक्षा का सबसे बड़ा आदर्श 'त्याग' और 'जीवनमुक्त' बन गया। पाठशालाओ में इसी की शिक्षा भिन्न-भिन्न रूप में दी जाने लगी। चाहे कोई मतावलम्बी हो, चाहे किसी आचार्य का शिष्य हो, किन्तु उसकी शिक्षा का अन्तिम स्वर यही होगया। जाति-की-जाति इसी रग में रगी गई। कवियो ने इसी पर कविता की, साधु लोग घूम-घूम कर इसी का उपदेश देने लगे, लेखको ने इस ही पर बडे-बड़े पोथे लिखे। जिस पुस्तक को उठाओ, उसमे यही राग अलापा गया है। सब यही कह रहे है—"संसार कुछ नही, गृहस्थी सब जजाल है।"

इस व्यक्तिवाद का भयंकर प्रभाव भारत पर पडा। लोगों ने जब यह समझा कि उन्होने सबसे उच्च आदर्श पा लिया, तो उनकी उन्नति रुक गई। सामाजिक समुदाय को आपस में मिलाने की जो ताकत थी, वह निकल गई। सभी फिलासफर होगये। जब मनुष्य अपने दिमाग में यह जँचा ले—"मेरे लिये कोई कानून नही है, मे कानून से मुक्त हूँ," तो या तो वह देवता ही बन जाता है या असुर ही। अधिक रुचि असुर बनने की ओर होती है। भारत में उस व्यक्तिवाद का सहारा लेकर उन व्यभिचारो का धर्म के नाम पर प्रचार किया गया जिनके ज्वलन्त प्रमाण आज भी हमारे पवित्र तीर्थस्थानो में मौजूद है। "जीवनमुक्तो के लिये कोई सामाजिक नियम नही, उनके लिए कोई पाप-पुण्य नही।" इस प्रकार की भयंकर गोलाबारी के सामने भारतीय सदाचार की दृढ दीवारें गिर गई। ब्रह्मचर्य और ऊर्ध्व-रेताओ की प्रशंसा करने वाले व्यभिचारियों की पूजा करने लगे। जिन नीरोग और निर्दोष नियमो के सहारे प्राचीन आर्यो ने भारतीय राष्ट्र को सगठित किया था, उस राष्ट्र के अभेद्य दुर्ग को इन 'जीवनमुक्तो' ने अपने व्यभिचार की ठोकरो से जर्जरित कर दिया। आचार-भ्रष्ट कोई जाति खडी नही रह सकती।

किसी राष्ट्र का सुरक्षित रखने के लिए यह आवश्यक है कि वहाँ की प्रजा उत्फुल्लनयन (wide awake) हो अर्थात् अपने आँख-कान खुले

रक्खे। यदि वह अपना अस्तित्व, मान और प्रतिष्ठा के साथ कायम रखना चाहती है तो उसे अपने पड़ोसियो की उन्नति-अवनति का ध्यान रखना चाहिए। भारत के पश्चिम, अरब के रेगिस्तान मे, एक जबरदस्त शिक्षक का प्रादुर्भाव हुआ। उसकी शिक्षा से मानो ज्वालामुखी फट पडा। उस ज्वालामुखी की लपटे फारस और स्पेन तक पहुँची। इतना जबरदस्त भूचाल आया, परन्तु भारतीय ससार ने करवट तक न बदली। यहाँ के लोगो की बुद्धि बिगड़ गई थी। इनकी पाठशालाओ मे 'संसार-असार' की शिक्षा दी जाती थी और 'पृथग्भाव' का सिद्धान्त जोरो पर था। यहाँ के बच्चे व्यक्तिवाद के सूत्र पढ कर सब प्रकार के 'बन्धनो' से मुक्त होने की चेष्टा मे थे। यहाँ के विद्वानो के दिमाग मे गुरुडम का भूत घुस गया। वे समझते थे कि जीवन का सब से उच्च रहस्य उन्होने जान लिया है; अब किसी से कुछ सीखने की आवश्यकता नही। इसलिए वे मस्त सोते रहे। 'अप्रतिबन्ध' (non-resistence) के सिद्धान्त ने सैकडो रूप धारण कर यहाँ के लोगो को अपना शिष्य बना लिया। कई शताब्दियो तक बिना रोक-टोक के ऐसी ही शिक्षा भारत में फैलती रही। परिणाम यह हुआ कि जब सर्व-जन-हित (common interest) की जबर्दस्त जजीरो से बँधे हुए मुसलमान योद्धाओ ने भारत पर हमला किया, तो यहाँ की प्रजा उदासीन भाव से उन्हे देखती रही। महमूद गजनवी के सत्रह धावे भारत पर हुए और यहाँ की जनता ने उसके प्रतिकार मे कुछ भी नही किया। इसमें आश्चर्य की कोई बात नही। जिस देश मे शताब्दियो तक कायरता, अकर्मण्यता तथा व्यभिचार को वैराग्य, त्याग और जीवन-मुक्त की उपाधियो से विभूषित कर आदर्श रूप बना दिया गया था, उस देश के बच्चे यदि जूतो से पिटने पर भी उसको 'माया' ही कहें तो आश्चर्य ही क्या है! आज भी उन्ही गन्दे, लचर, कायरतापूर्ण सिद्धान्तो पर पले लाखो भारतीय विद्यमान है, जो अपने समाज तथा अपने देश पर होते हुए अन्याय के विरुद्ध एक अंगुलि भी नही उठायेगे।

यहाँ पर स्वाभाविक ही प्रश्न उठता है कि भारतीय धर्माचार्य, शिक्षक

इन देशघातक सिद्धान्तो के प्रवर्तक और प्रचारक कैसे बन गए ? इसका उत्तर सहज है। जब भारतीय जाति में ऐश्वर्य की वृद्धि होगई, चक्रवर्ती-राज्य-सुख मिलने लगा, सब प्रकार के भोगो की प्राप्ति होने लगी, तो वही सघशक्ति—वही नीरोग बलबर्द्धक शिक्षा—जिसके आधार पर सब सामाजिक उन्नति तथा समृद्धि निर्भर है, उन्हे बन्धनरूप बोध होने लगी। आरण्यको के लिखने वाले उपनिषद्कारो ने आत्मा-सम्बन्धी विचार प्रकट कर ही दिए थे; वह सामग्री इनके लिए आवश्यकता से अधिक काफी थी। मनुष्य मे पशुपन अधिक है। वह खुला घूमना चाहता है। स्वाभाविक ही ऐसे सिद्धान्तो का शीघ्र प्रचार होने लगा। यद्यपि उपनिषदे आध्यात्मिक शिक्षा के सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्तो का प्रतिपादन करती है और उनका अभिप्राय ससार मे शान्ति फैलाना है, परन्तु जाति के वे उच्च साहित्यरत्न अनधिकारियो के लिए नही लिखे गए। फुरसत के समय बैठ कर मनुष्य उन रत्नो को देख भले ही मन को शान्त कर ले, परन्तु व्यावहारिक ससार मे जीवन निर्वाह करने के लि किसी और ही चीज की आवश्यकता है। इससे हमारा अभिप्राय कभी भी उन पूज्य ग्रन्थो का अनादर करना नही है। हम केवल यह कहते है कि भारतीय जनता ने उनसे यथोचित लाभ नही उठाया। यहाँ उनके उलटे-पुलटे अर्थ लगाकर व्यक्तिवाद का सिद्धान्त निकाला गया और धीरे-धीरे शारीरिक और राजनैतिक जिम्मेदारियो की जडो पर कुल्हाडा चला कर जनता को बिलकुल 'ब्रह्म ही ब्रह्म' बनने का उपदेश दिया जाने लगा। जब सब ही ब्रह्म होगए, तो किसी का हुक्म मानना कैसा ? बस, खुली छुट्टी होगई, सघ-शक्ति का बीज-नाश होगया।

यही कारण है कि अकबर और औरगजेब के हिन्दू सेनापतियो ने जो कार्य अपने प्रभुओ के लिए किए, उन्हे वे अपने देश-हित के लिए न कर सके। डण्डे के जोर से उनसे जो चाहे करवा लीजिये, परन्तु जब जरा भी उन्हे अपनी मरजी पर छोड दिया जाय तो उनकी नसें ढीली होने लगती है। यही कारण है कि राष्ट्रीय सकट आने पर यहाँ नेता तत्काल सामने

नही आते। महमूद, तैमूर, नादिर, अहमदशाह आदि योद्धाओं के धावों की भाँति सैकडो विपत्तियाँ भारत पर आई, पर यहाँ कोई नीतिकुशल नेता खडा ही नही हुआ। सारे भारतीय संकट के इतिहास में महाराणा प्रताप, वीरकेसरी शिवाजी, गुरु गोविन्दसिह जी और रणजीतसिह जी इन चार नरपुङ्गवो का नाम सामने आता है। बस हो गया ! जब एक लीडर मर जाता है, तो दूसरा उसकी पूर्ति करने वाला खड़ा नहीं होता। जो एकाध महापुरुष कभी संकट दूर करने को हो भी गए, तो उन्हें केवल अपवाद रूप ही समझिये। यहाँ आत्म-स्फूर्ति (initiative) की बड़ी कमी है।

भारतीय समाज को सैकड़ो वर्षो की उस बीमारी से छुडाने के लिए, तथा व्यक्तिवाद के स्वार्थरजित सिद्धान्त के जहरीले प्रभाव से भारत की जनता को निकालने के लिए किस प्रकार की शिक्षा-प्रणाली की आवश्यकता है ? इस कठिन कार्य को हमने हाथ में लिया है। ईश्वर की दया से भीषण दुर्भिक्षो के कारण झूठे ब्रह्मवादियो और स्वार्थी जीवनमुक्तो के होश बहुत कुछ ठिकाने आ गए है, रास्ता बहुत कुछ साफ हो चुका है। कुलियो से बदतर 'प्रतिष्ठा' पाने पर हमारा गुरुडम भी किसी कदर भग चुका है, झूठे त्याग की गप्पो का प्रभाव भी अब उठता जाता है। सघशक्ति-सम्पन्न पाश्चात्य जातियो की हवा भी हमें कुछ लग गई है। अपने देश के निर्धन भाइयो की शिक्षा के लिए लोग अपनी जेबो में हाथ भी डालने लगे है। ऐसे समय में शिक्षा जैसे महत्वपूर्ण विषय पर जो कुछ कहा जायगा, हमें पूर्ण आशा है कि हमारे देशबन्धु उसे ध्यान से सुनेगे।

शिक्षा की व्याख्या

सबसे पहले हमे 'शिक्षा' अथवा 'शिक्षित व्यक्ति' इन शब्दो की विवेचना करने की जरूरत है। इन शब्दो का अभिप्राय भिन्न-भिन्न समाज के लोग भिन्न-भिन्न अर्थों में लेते है। अधिकांश लोग तो ऐसे है जो लिखने-पढ़ने की जानकारी को ही शिक्षा समझते है। कुछ बैठने-उठने के ढंग, बोलने-

चालने के सलीके को ही अच्छी शिक्षा समझते है। बहुत से अधिक विषयो पर वार्तालाप करने वाले को ही शिक्षित की पदवी देते है। जैसे-जैसे ख्यालात, जैसी सभ्यता जिस समाज मे है, उसी के अनुसार उसकी कसौटी भी शिक्षा के सम्बन्ध मे है। पर यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो ससार में कोई मनुष्य अशिक्षित नहीं कहला सकता। प्रकृति माता प्रत्येक समय, प्रत्येक दशा मे हम सबको कुछ न कुछ शिक्षा दे रही है। जिनको हम अत्यन्त असभ्य, निपट गँवार कहते है वे भी कुछ न कुछ शिक्षित है। भारत के गोड, भील, जिनको हम जङ्गली समझते है, असल मे वे जङ्गली नही है। उनके समाज मे शिक्षा का अपना नियम है। उनके यहाँ बच्चो को आरम्भ से जीवनसम्बन्धी शिक्षा दी जाती है। शिकार करना, युद्ध-कौशल, झोपड़ा बनाना आदि जो उनकी साधारण आवश्यकतायें है, उन की शिक्षा का आदर्श बस वही तक खत्म हो जाता है। उनके यहाँ भी समाज के कुछ नियम होते है, जिनको वे अपने बच्चो को सिखलाते है। उन नियमो से अनभिज्ञ मनुष्य उनके यहाँ अशिक्षित समझा जाता है।

इसलिए प्रत्येक देश अथवा प्रत्येक समाज मे शिक्षा का आदर्श समाज की आवश्यकताओ के अनुसार बदलता रहता है। जिनको हम अशिक्षित जंगली कहते है, वे हमको भी जंगली असभ्य कह सकते है। हमारे यहाँ बहुत से लोग ऐसे है जो मास खाने वालो को जगली समझते है। उनके ख्याले-शरीफ मे मास खानेवाला कभी सभ्य कहला ही नही सकता। करोडों मुसलमान ऐसे है जो सूअर के मास खानेवालो को जंगली पशु से भी बदतर समझते है। योरुप और अमरीका के करोडो कट्टर ईसाई भारतवर्ष के लोगो को काफ़िर(Heathen)समझते है और हमे सभ्य बनाने के लिए करोडो रुपया खर्च करते है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार के आदर्शों से रंगे हुए लोग केवल अपना ही रंग देखते है, दूसरा रंग उनको दिखाई ही नहीं देता, क्योकि उनका वैसा ही वातावरण और उनके वैसे ही संस्कार होते है।

ऐसी दशा में शिक्षासम्बन्धी प्रश्नो पर विचार करनेवाले को उन

पक्षपातो और सकुचित विचारो से ऊपर उठना होगा, जो शुद्ध कल्पना के भारी बाधक है। आज उन तग भावनाओ और मजहबी वैमनस्यो के दिन नही रहे। अब ससार उस शिक्षा का उत्सुक है जो झगड़ो को मिटाने वाली और सार्वदेशिक उन्नति का कारण हो। प्रत्येक समाज में शिक्षासम्बन्धी उलटे-पुलटे विचारो के होने के कारण ही आपस में झगड़े और फसाद फैले हुए है। प्रत्येक देश अपने बच्चो को अपने आदर्शानुकूल शिक्षा देता है। उस शिक्षा मे पले हुए लोग उसीको ठीक समझ कर, दूसरों के आदर्शो को तुच्छ जान कर, जहाद का झण्डा उठाते है। इसी से बड़ी खूनखराबी होती है।

शिक्षा क्या है ? यह प्रश्न है जिस पर हमें विचार करना है। यद्यपि प्रकृति माता हमे बराबर शिक्षा दे रही है, यद्यपि जगली से लंगली जातियाँ भी माता की उस शिक्षा से विहीन नही है, यद्यपि आधुनिक युग में शिशुशिक्षा के सम्बन्ध मे नित्य नये आविष्कार हो रहे है, तथापि परमात्मा ने हम मनुष्यो को दो ऐसे साधन—हृदय और बुद्धि—दिए है जिनके द्वारा हम प्रकृति माता के रहस्यों का बहुत आसानी से आनन्द ले सकते है, तथा अपने दु ख-सुख, उन्नति-अवनति के कारणों को शीघ्र जान सकते है। हमारे विद्वानो ने शिक्षाविहीन मनुष्य की तुलना पशु से की है, जो बिल्कुल ठीक है। पशु हजारो, लाखो वर्षो से जंगलों मे रहते चले आये है, उनका जीवन स्वार्थ का जीवन है। जो बलवान् है, जिसके नख, दाँत तीखे और दृढ है, वही सरदार है; वह अपने से कमजोर पशुओ को चाहे मारे, चाहे काटे। वहाँ मक्कारी खूब चलती है और भोलापन नाश का कारण बनता है। वहाँ बलवान् के हाथ मे ही न्याय है, कमजोर का कोई ठिकाना नही। लाखो वर्षो से जगलो का यही क़ानून है, उनमे से न तिल भर बढा है, न घटा है। यदि मनुष्य को भी जगली जनवरो की (Beast of the jungle) तरह रहना हो, तो फिर किसी नये शिक्षा-सम्बन्धी आविष्कार की आवश्यकता नही, क्योकि वह शिक्षा तो हमें पहले से ही भरपूर मिल चुकी है। हाँ, यदि हमे उस अन्धकारमय

पशु-राज्य से निकलना है, तो अलबत्ता हमें शिक्षा के विषय मे गम्भीरता से विचार करना चाहिए। इसलिए जो पद्धति हममे से पशुपन निकाल दे, मक्कारी दूर कर दे, स्वार्थ नष्ट कर दे, अन्यायी बलवान् का राज्य हटा दे, प्रकृति माता के भोगो का न्यायपूर्वक भोग करना सिखा दे, उस पद्धति का नाम श्रेष्ठतम शिक्षा-प्रणाली है। शिक्षा बहुत अच्छी अंग्रेजी या सस्कृत बोलने मे नही है, शिक्षा काले-गोरे-पीले रङ्ग के भेद मे नही है, शिक्षा बहुत से विद्वानो के नाम रट लेने मे नही है, शिक्षा लम्बे-लम्बे व्याख्यानो में नही है; शिक्षा टोपी, अचकन, पतलून पहनने मे नही है; शिक्षा बहुत सा धन सग्रह करने या बडी डिग्रियाँ प्राप्त करने मे नही है—शिक्षित वह है जिसमे पशुपन का अभाव और मनुष्यत्व की वृद्धि हो। जैसे चारो वेदो से लदा हुआ गधा पण्डित नही हो सकता, ऐसे ही बडी-बडी डिग्रियो का धारण करने वाला, अच्छे सूट-बूट पहनने वाला शिक्षित नही कहला सकता। फोनोग्राफ मे हम बडे-बडे लेक्चर, उपदेश और राग भर सकते है, इससे फोनोग्राफ महाशय शिक्षित नही बन सकते; इसी प्रकार शिक्षा की पहचान दिमाग मे ठसाठस भरी हुई पुस्तको से नही होती और ना ही वैज्ञानिक यन्त्रो से सुसज्जित समाज सुसस्कृत ही कहला सकता है। शिक्षा तो व्यक्ति के सुन्दर व्यक्तित्व और उसके सद्-व्यवहार से ही पहचानी जाती है, जो वह दूसरे मनुष्यो के साथ करता है। आप अपने नित्य के जीवन मे 'बगल मे छुरी मुँह मे राम-राम' कहावत को चरितार्थ करने वाले लोगो से मिले होंगे, जो आपको 'प्राणियो मे मनुष्य की सगोत्रता' शीर्षक पर लच्छेदार सरमन' सुना देंगे, पर यदि मौका मिले तो आपको समूचा ही निगल जाने का प्रयत्न करेंगे। कभी-कभी हम आश्चर्य करते है कि फलाँ-फलाँ आदमी बी० ए० है, एम० ए० है, पर उनमे जरा भी मनुष्यत्व नही। इसमे आश्चर्य की क्या बात है ? बी० ए०, एम० ए० पास करने से यदि मनुष्यत्व नही आया, तो समझ लो कि वह शिक्षाप्रणाली मनुष्यत्व सिखाने के लिए नही है। यदि आप स्कूल में पढनेवाले किसी विद्यार्थी से पूछे कि उसकी पढाई का उद्देश्य

क्या है, अथवा वह पढकर क्या करेगा—तो इसका उत्तर वह 'नौकरी' के सिवाय और कुछ नही देगा, क्योकि भारतीय शिक्षाप्रणाली की बुनियाद 'नौकरी' पर है, इस लिये उससे मनुष्यत्व के गुणो की आशा रखना निरर्थक है।

यह सत्य है कि शिक्षा का विषय भी आज विकास की वस्तु बन गया है। बच्चो को किस प्रकार शिक्षित किया जाए, कैसे उनका स्वाभाविक विकास हो और किस प्रकार वे आसान से आसान ढंग से कठिन विषय को समझ सके, इस सम्बन्ध मे सभ्य देशो के विद्वान् प्रयोग कर रहे है। यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तू के समय से यह बात स्वीकार कर ली गई थी कि मनुष्य एक सामाजिक सभ्य है। उसी सिद्धान्त के अनुसार वर्ग और सामूहिक शिक्षा का विकास हुआ। समूह मे व्यक्ति को प्रोत्साहन मिलता है, उसकी स्पर्धा बढती है, वह दूसरो के उदाहरण से शीघ्र उन्नति कर सकता है और पुरस्कार उसे कठिन काम करने में सहायक होते है, इसीलिए प्रत्येक सभ्य देश में भिन्न-भिन्न वर्गो द्वारा शिक्षा का प्रबन्ध किया गया था। पहले उच्च घरानो के बच्चे शिक्षा पाते थे। अब जब सर्वसाधारण के लिए शिक्षा अनिवार्य हुई, तो अन्धे, लूले, लंगडे, बुद्धू और पागल बच्चो के लिए भी शिक्षा के ढंग सोचने पडे। प्रत्येक देश में चिन्तनशील विद्वानो ने इसी खोज में जीवनियाँ लगा दी। साम्यवादी रूस में समष्टिवाद की प्रधानता है और व्यक्ति के व्यक्तित्व को हेय समझा जाता है, इस कारण वहाँ पर उसी आदर्श के अनुसार प्रयोग होने लगे। गृहस्थाश्रम का अन्त कर सब श्रेणियों के बच्चो को बोल्शिविक शिशुशालाओ में रक्खा गया और माताओ से अलग रखकर कम्यूनिज्म के कठोर सिद्धान्तो को इन बालको के कोमल गलो से उतारने का भगीरथ प्रयत्न हुआ। दूसरी ओर बाल-ब्रह्मचारिणी वृद्धा मोन्टीसोरी व्यक्तिवाद की रक्षा के लिए खड़ी हुई और उसने यह घोषणा की कि प्रत्येक शिशु एक स्वतन्त्र व्यक्ति है। उसका स्वाभाविक विकास वर्गो और समूहो में नही हो सकता, वहाँ वह नकलची बन जाता है और दूसरो की अस्वा-

भाविक बाते उसे चिमट जाती है । बच्चे की शिक्षा स्वतन्त्र और स्वयं-विकास-पद्धति के अनुसार होनी चाहिए, तभी वह संसार को अपना स्वाभाविक फल दे सकता है । प्रत्येक वृक्ष जैसे अपना स्वतन्त्र उपयोग रखता है, इसी प्रकार प्रत्येक स्त्री और पुरुष का अपना स्वतन्त्र मिशन है । वर्गीय और सामूहिक शिक्षा स्वाभाविक विकास की शत्रु है, इसलिए संसार में आज तक अँगुलियो पर गिनने लायक ही महापुरुष हो सके है और ब्रह्माण्ड का अशमात्र ज्ञान ही हमे हो सका है ।

व्यक्तिवाद की इस शिक्षापद्धति का प्रचार भारतवर्ष के प्राचीनकाल के आर्यों मे था । इसी कारण वे व्यक्तिवाद के उपासक थे और वे यह मानते थे कि व्यक्ति के सुधार के बिना समाज का सुधार नही हो सकता । उन्होने बड़े-बडे विश्वविद्यालय स्थापित नही किये थे, बल्कि प्रत्येक वानप्रस्थी अपने आश्रम मे पाँच-सात विद्यार्थी रखता था, जिनके स्वतन्त्र और स्वय विकास का अध्ययन कर वह उन्हे उसी ढग की शिक्षा देता था और बाद मे उनका ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण निश्चित करता था ।

शिक्षा-सम्बन्धी विकसित पद्धतियो के विषय मे समय के परिवर्तन के साथ नये-नये आविष्कार होते रहेगे, लेकिन शिक्षा के आदर्श के विषय मे जिस अटल सिद्धान्त की हम व्याख्या करने लगे है, शिक्षित मनुष्य के जो लक्षण हम बतलाने लगे है, उन्हें सभ्य समाज सदा मानता रहेगा, क्योकि उन्ही पर व्यक्ति तथा समाज के विकास का पूरा दारोमदार है । पशु और मनुष्य में कहाँ पर भेद प्रारम्भ होता है, पशुपन से निकल कर मनुष्यत्व की ओर जाने वाला जो मार्ग है, ऐसी जो पद्धति है, ऐसी जो शिक्षा-प्रणाली है, वही शिक्षा का सच्चा आदर्श सिद्ध कर सकती है । एक मनुष्य अच्छा इजीनियर हो सकता है, किसी भाषा का कुशल मर्मज्ञ हो सकता है, निराले ढंग के दुरूह छन्द रच सकता है, परन्तु यदि वह मनुष्यत्व से परे है, यदि उसमे इन्सानियत नही है तो वह शिक्षित नही कहला सकता । मनुष्यत्व से विहीन पशुपन का एक उदाहरण देखिए ।

हाथी कितना बड़ा भारी पशु है। उस हाथी के सिर पर एक छोटा-सा महावत बैठ जाता है और अंकुश से हाथी को मारता है। हमें यह देखकर ताज्जुब होता है। हाथी इतना बडा बलशाली पशु उसको काबू में करता है छोटा-सा आदमी ! इसमे ताज्जुब की कोई बात नही। वह हाथी चाहे कितना ही बडा है, पर वह है तो पशु। पशु का लक्षण यही है कि जो अपनी शक्तियो को न जाने। इसलिए जिस समय आर्य विद्वानो ने यह फैसला किया—"विद्याविहीन पुरुष पशु के तुल्य है" तो उनका अभिप्राय यह भी था कि शिक्षित मनुष्य वह है जो अपनी शक्तियो को पहचानता है। जो शिक्षा मनुष्य को उसकी आन्तरिक शक्तियो की पहचान नही कराती वह शिक्षा नही है। मनुष्य को परमात्मा ने गज़ब की शक्तियाँ दी है और प्रकृति का असीम भण्डार उसके सामने रख दिया है। शिक्षा द्वारा मनुष्य की उन शक्तियो का विकास होना चाहिये। जो शिक्षा कमलरूपी मनुष्य की बुद्धि को खिला नही सकती, जो मनुष्य को अपना स्वरूप पहचानने में सहायता नही देती, वह शिक्षा कदापि शिक्षा नहीं कहला सकती। ससार में इसी एक कमी के कारण करोडो आत्मायें दुःखी होकर परलोक सिधार गईं। क्यो ? इसलिए कि वे अपने स्वरूप को न पहचान सकी। उन्होने सदा अपने आपको छोटा समझा, सदा अपनी योग्यता पर अविश्वास किया, सदा अपने को अभागी ख्याल किया, परिणाम यह हुआ कि वे सदा दुःखसागर मे गोते खाते रहे। उनमें योग्यता थी, थोडे से परिश्रम से वे अपने आपको उच्च बना सकते थे, पर उन्हें ऐसी शिक्षा ही न मिली थी। बेचारे क्या कर सकते थे ?

और उदाहरण देखिये। एक खेत में बाड बनाकर चार-पांच सौ बैल बन्द कर दीजिये। वे बैल चुपचाप उस बाडे में रहेंगे। क्या उन बैलों में यह शक्ति नहीं है कि आपकी बाड को तोड दें ? क्या पांच सौ बैलो के सींग आपकी मामूली बाड़ को तोडने के लिये काफी नही है ? वे निस्संदेह उस बाड़ के चिथड़े उड़ा सकते है, पर इतना उन्हें ज्ञान ही नहीं। वे अपनी संयुक्त शक्तियों का बल नही जानते। इसलिए शिक्षा का एक बडा

भारी अग यह भी है कि उसके द्वारा मनुष्य कठिनाइयों को दूर भगाने के योग्य बन सके, न कि हाथ पर हाथ धर कर ईश्वर के सहारे बैठ जाए। जिस शिक्षा में 'सूझ' की शक्ति नही, वह बुद्धि के विकास में सहायता नही देती; जिसमे सकट दूर करने के उपाय ढूढ निकालने की योग्यता नही, वह शिक्षा केवल शाब्दिक वितण्डावाद है। ऐसी शिक्षा से किसी व्यक्ति, किसी देश का उपकार नही हो सकता। पशु सब प्रकार के कष्ट सहते है, पर वे उन दु:खो को दूर करने का कुछ उपाय नही कर सकते। उनमे बुद्धि नही। वे अपने दु:खो को दूर करने में हम पर निर्भर है। हमे ईश्वर ने बुद्धि दी है। यदि हम भी अपने दु:ख दूर करने में अपनी सहायता आप नही कर सकते, तो फिर हम मे और पशुओ में ज़रा भी भेद नही है। निर्भरता पशुपन का चिन्ह है। जो समाज अपने कष्ट दूर करने मे दूसरो पर निर्भर है, वही समाज अशिक्षित है। जिस समाज मे स्वावलम्बन की शक्ति नही, जिसके सदस्य अपनी योग्यताओ से फायदा उठाना नही जानते, जिनमें संकटो का मुकाबिला करने का बुद्धिबल नहीं, वे अशिक्षित है। सिर पर सीग होने से पशु नही होता, बल्कि पशुपन के लक्षण होने से बिना सीग वाला मनुष्य नामधारी व्यक्ति भी पशु ही है।

जिन दिनो मे अमरीका मे पढा करता था तो मुझे प्राय: अपने देश-बन्धु सिक्ख भाइयों की देख-भाल रखने के लिये उनके डेरो पर जाना पड़ता था। अमरीका-प्रवासी ये सिक्ख लोग शिक्षाविहीन होने के कारण कुलियो का काम करते थे। उनके लिए काला अक्षर भैस बराबर था। अधिकांश उनमे से अपना नाम लिखना भी नही जानते थे। अपने घर को चिट्ठियाँ भेजने के लिए उन्हें दूसरो की सहायता लेनी पड़ती थी। सोचने की बात है कि उस भले मानस की क्या दशा होगी, जो अपनी स्त्री को समाचार भेजने के लिए दूसरो पर अवलम्बित है। ऐसे मनुष्य भारतवर्ष मे लाखो है। उन सिक्खो को जब कभी कोई चिट्ठी लिखवानी होती थी तो वे मुझसे लिखवाया करते थे। एक बार ऐसा हुआ कि

कारणवश मे उनके डेरे पर न जा सका। उन्होने किसी नावाकिफ़ चलते-पुरजे को बुलाकर उससे अपने घर भेजने के लिए मनीआर्डर लिखवाए। उस धूर्त ने उन मनीआर्डरो को अपने घर के पते से भेज झूठमूठ की रसीदें बनाकर उनको दे दी। वे मूर्ख क्या जानते थे कि उनके पसीने से कमाए हुए धन को एक बदमाश आदमी ऐसी आसानी से ठग लेगा ? परन्तु अविद्या का टैक्स बड़ा भयकर है। जो इस अविद्या देवी की पूजा करता है उसकी खाल तक भी उतार ली जाती है। अमरीका से हज़ारों मील दूर भारत ! वहाँ से चिट्ठी आने-जाने में अढ़ाई-तीन महीने चाहिये। इतने दिनों के बाद उन भोले सिक्खो को मालूम हुआ कि वे ठगे गए, पर—'अब पछताए क्या होत है जब चिडियां चुग गई खेत।' वह धूर्त कही का कही चला गया। करोड़ो मनुष्य दुनिया मे ऐसे है, जिनके पसीने का कमाया हुआ धन निखट्टू लोग मुफ्त मे ठग कर ले जाते है और उन पशु-तुल्य मनुष्यो को मालूम भी नही होता कि उनका धन कहां जाता है। ज्येष्ठ-आषाढ के दिनो मे कष्ट सहकर अन्न पैदा करने वाले भूखो मरते है और चालाक बदमाश लोग मौज मे बैठे चैन उडाते है। ये सब अविद्या देवी के टैक्स है। इसीलिए हमारे शास्त्रकारो ने जहाँ पांच क्लेशों का जिक्र किया है, वहां 'अविद्या' को सबसे मुख्य रक्खा है। जितनी सामाजिक बीमारियां पैदा होती है, उन सबका कारण अविद्या है।

उस अविद्या से निकलने के लिए सबसे पहला साधन लिखना-पढना सीखना है। यद्यपि अविद्या सत्सङ्ग से भी दूर हो सकती है, किन्तु उससे पहले लिखना-पढना सबको सीखना चाहिये। यही है परिचयदायक पत्र, जिसके द्वारा 'शिक्षा' के पवित्र भवन में प्रवेश हो सकता है। लिखना-पढना जान लेना शिक्षा नही है। यह केवल सरस्वती देवी के मन्दिर म प्रवेश करने की तय्यारी करना है। ऐसे भी लाखो अभागे है जो श्रीगंगाजी के किनारे जाकर उसके पवित्र जल में शराब की बोतले डाल कर पीते है। इसी प्रकार बहुत से लोग पढ-लिख कर भी 'शिक्षा' के मन्दिर में प्रवेश नही करते। यह अपराध उनका है। वे उसी लिखने-पढने को शिक्षा समझकर

वही तक उसकी इतिश्री मान लेते है। परिणाम यह होता है कि वे भाषा के धुरन्धर विद्वान् होने पर भी विद्यादेवी के दर्शनों से वञ्चित रह जाते है। अन्तःकरण की शुद्धि के लिए, भले-बुरे की पहचान के लिए, अपनी शक्तियो के विकास के लिए और आत्म-दर्शन करने के निमित्त विद्यादेवी के भवन में प्रवेश करने की नितान्त आवश्यकता है।

इसलिए शिक्षा सम्बन्धी प्रश्न पर विचार करनेवालो को लिखने-पढने का ज्ञान तो मामूली बात समझनी चाहिये। यह तो भूमि तय्यार करने का आरम्भ मात्र है। इसके बिना तो कुछ हो ही नही सकता। आप इसको प्रारम्भिक शिक्षा के नाम से पुकारिये। परन्तु मै शिक्षा का प्रारम्भ उस साधना—उस प्रणाली—से करता हू, जिसके द्वारा पशुपन का नाश और मनुष्यत्व का विकास होने लगता है। शिक्षित मनुष्य का सबसे पहला गुण यही है कि उसमें स्वार्थ की मात्रा कम हो, क्योकि पशुओ के राज्य मे स्वार्थ की ही प्रधानता पाई जाती है। जिस शिक्षा द्वारा मनुष्य सार्वजनिक हितो को सर्वोपरि समझ कर अपने स्वार्थ को उनके सन्मुख तुच्छ समझता है, वही मनुष्य हमारी परिभाषा मे शिक्षित होने की पहली शर्त को पूरा करता है। मुझे विश्वास है कि आप लोग शिक्षा के पहले अग की महिमा भली प्रकार समझ गये होगे।

शिक्षा का दूसरा अङ्ग विचारशक्ति का विकास है। पशुओ में 'भेड़ चाल' प्रसिद्ध है। जिस समाज के सदस्य अपनी विचारशक्ति नही रखते, जो 'अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः' अर्थात् अन्धो के पीछे अन्धो की तरह चलने वाली कहावत को चरितार्थ करते है, वे कभी भी शिक्षित नहीं कहला सकते। उदाहरण के तौर पर यदि मै किसी पेड की जड में एक कील गाड कर, थोडा सा सिन्दूर इर्द-गिर्द लगा, एक फूलो की माला उसमें टांग दू तो जितने देखने वाले उधर से निकलेगे वे बिना कारण समझे हुए ही उस कील को पवित्र जान, हाथ जोड वहाँ फूलो की माला लटकाते जायेंगे, क्योकि उनके मोटे विचार मे जिस व्यक्ति ने पहले-पहल माला लटकाई है, उसने अवश्य ही कुछ सोच-समझ कर ऐसा किया होगा। बस,

यही उनकी दलील है। इसी को 'भेडियाधसान' कहते है। हमारे देश में बहुत से शिक्षित नामधारी मनुष्य इसी बीमारी के शिकार है। यदि किसी ने बहका दिया कि अमुक मनुष्य बड़ा भारी सिद्ध और योगी है तो बस उसके दर्शनार्थ झट दौड़ने लगते है। कुछ वर्ष पहले की बात है कि जायस ग्राम के एक मुसलमान फकीर के विषय मे यह गोगा उड़ा था कि वह सब प्रकार की बीमारियो का इलाज करता है। बस, फिर क्या था, सब छोटे-बड, औरत-मर्द, दूर-दूर से उस फकीर के पास जाने लगे। सैकडो यात्री नित्य जाते और फकीर का जूठा पानी लेकर चले आते। भारतवर्ष का कोई ही प्रान्त ऐसा होगा, जहाँ के लोग उस धोखे-बाज फकीर से बचे हो। अन्त को जब बीमारी का इलाज न हुआ और मनोकामना निष्फल हुई, तो कहीं इस मूर्खता ने उनका पिण्ड छोड़ा।

यही पशुपन है। जैसे पशु एक दूसरे के पीछे बिना सोचे-समझे चले जाते है और कारण-कार्य के सम्बन्ध को नही समझते, ऐसे ही जो मनुष्य अपनी बुद्धि से काम नही लेते वे पशु ही है। इसलिए शिक्षित मनुष्य का दूसरा गुण यह होना चाहिये कि उसमे विचारशक्ति हो। वह दूसरो की देखादेखी कोई काम न करे, बल्कि सदा ही अपनी बुद्धि को काम में लाकर, हित-अहित का विचार कर, किसी कार्य मे हाथ डाले। परमात्मा ने हमें बुद्धि इसीलिए दी है कि हम इसका प्रयोग करना सीखे। यही पशु और मनुष्य में भेद है। पशु हजारों वर्षों से जैसे रहते-सहते आये है, वैसे ही अब भी उनकी चाल-ढाल है। शिक्षा द्वारा आवश्यकता इस बात की है कि बुद्धि का विकास हो और हम काल की गति के अनुसार उन्नति का पथ अवलम्बन करें। यदि हमारी शिक्षा हमको देशकालानुसार उन्नति के मार्ग पर नहीं चलाती तो वह 'शिक्षा' शिक्षा नही कहला सकती।

शिक्षा का तीसरा अंग अपने स्वरूप का पहचानना है। शिक्षित मनुष्य को मालूम होना चाहिये कि उसके जीवन का उद्देश्य क्या है? वह संसार मे किस लिए आया है? ईश्वर ने उसको दुनिया में किस मतलब

के लिये भेजा है ? खाना, पीना, बच्चों को पालना, इन्द्रिय-सुख—ये बाते तो पशु में भी विद्यमान है, यदि हमने भी पढ-लिख कर ऐसे ही जीवन व्यतीत किया तो हमारा पढना-लिखना निरर्थक है। आवश्यकता तो इस बात की है कि हम अपनी दैवी शक्तियो का बिकास कर उनको दूसरों की सेवा में लगावें। हम अपने आपको केवल पेट भरने वाला भारवाहक पशु न समझे। परमात्मा की सृष्टि मे प्रत्येक छोटी-बड़ी वस्तु का कोई-न-कोई उद्देश्य है। ईश्वर ने कोई चीज़ निरर्थक नही बनाई। जो मनुष्य अपने आपको कुछ नही समझते, वे बडी भूल करते है। उनको विश्वास करना चाहिये कि उनके अन्दर ईश्वरदत्त गज़ब की शक्ति है। यदि वे शिक्षा द्वारा अपने स्वरूप को पहचान ले तो वे ससार मे महान्-से-महान् कार्य सम्पादन कर सकते है। ज़रूरत केवल इस बात की है कि बीज रूप उनकी शक्तियो को श्रेष्ठ विचाररूपी खाद पहुँचाई जाए। ऐसा होने पर वे बीज वृक्ष के रूप में प्रकट होकर ससार को मधुर फल प्रदान कर सकते है।

अब आप लोग समझ गये होगे कि शिक्षा से मेरा क्या अभिप्राय है। हमारे देश का करोडो रुपया सस्कृत पाठशालाओ मे खर्च किया जाता है; वहाँ से शिक्षा पाये हुए हमारे देशबन्धु शिक्षा के किसी अग की पूर्ति भी नही करते। पिछले हज़ार डेढ हज़ार वर्षों का इतिहास हमे इस बात की सूचना देता है कि जिस प्रकार की पुरानी शिक्षा-प्रणाली पाठशालाओ में प्रचलित है, उसके द्वारा हमारा जातीय जीवन स्वाभाविक ढग से विकसित नही हो सकता। पाठशालाओ के सस्कृत पढे हुए विद्यार्थी आत्मिकबल से हीन, सकुचित विचारो मे पड़े हुए अपना जीवन व्यतीत कर रहे है। बड़े-बड़े दिग्गज विद्वान्, धाराप्रवाह सस्कृत बोलने वाले यह नही जानते कि उनके जीवन का उद्देश्य क्या है। धन के हेतु अपनी आत्मा के विरुद्ध झूठी-से-झूठी व्यवस्था देने के लिये वे उद्यत रहते है। वे नही जानते कि गवर्नमेंट क्या है ? शासन किस को कहते है ? भारतवर्ष क्यो निर्धन हो रहा है ? जापान ने उन्नति कैसे की ? अमरीका की तिजारत का

भारतवर्ष पर प्रभाव क्यो पड़ता है ? इङ्गलिस्तान की शासन-पद्धति क्या है ? भारतीय समाज में फूट होने का कारण क्या है ? ऐसे-ऐसे आवश्यक प्रश्नों के विषय में वे कुछ नही जानते, अलबत्ता न्याय के अवच्छेदकावच्छिन्न और व्याकरण की फक्किकाओ में सिर पटकना खूब जानते है। जो दशा योरुप के विद्वानों की १४वीं-१५वीं शताब्दियों में थी, वही दशा आज हमारे संस्कृतज्ञ विद्वानो की है। योरुप के ईसाई पादरी विद्वान् उन दिनों "सुई की नोक पर कितने फरिश्ते बैठ सकते है ?" ऐसे जटिल प्रश्नों पर महीनों शास्त्रार्थ किया करते थे। परन्तु अपनी उस मूर्खता से योरुप के लोग अब निकल गये। उन्होंने शिक्षा के उद्देश्य को धीरे-धीरे समझना शुरू किया और आज योरुप शिक्षा की उन्नत अवस्था में है। इसके विपरीत हमारे सस्कृत के विद्वान् अभी "पत्राधारम् घृतम् घृताधारम् वा पत्रम्" घी पत्ते के ऊपर है, या पत्ता घी के ऊपर है ? ऐसे प्रश्नों के हल करने में लगे हुए है। भला कहिये, देश की उन्नति हो तो कैसे हो ? आज से ५०० वर्ष पहले जो हमारी आवश्यकतायें थीं वे आज नही है, आज से ५० वर्ष पहले जो देश की दशा थी वह अब नही रही। हम को देश-काल के अनुसार अपनी आवश्यकताओं को समझ कर शिक्षा का प्रबन्ध करना है। आज भारत पुराने दो हज़ार वर्ष पहले का भारत नहीं है। आज यदि अमरीका मे रुई की फसल मामूली से अधिक होती है तो उसका प्रभाव भारतवर्ष पर पड़ता है। आज हमारा सम्बन्ध ससार के सभ्य देशों से हो गया है। हमारा मरना-जीना इसी पर निर्भर है कि हम दूसरी जातियों के नये वैज्ञानिक आविष्कारों से परिचित हों और अपनी शिक्षा-प्रणाली को आधुनिक कला-कौशल के अनुसार बना डालें। पुराने जर्जर हथियारो से काम नही चलेगा। अब हमे आँखें खोलकर चलना चाहिये। यदि संस्कृत पाठशालाओ में बराबर नई आवश्यकताओ के मुताबिक ग्रन्थ पढाये जाते, तो आज हमारी यह दुर्दशा कदापि नहीं होती।

दूसरी शिक्षाप्रणाली अँग्रेज़ी ढंग की है। बहुत से भाई यह समझते

हैं कि अँग्रेज़ी शिक्षा द्वारा हम शिक्षा के महान् उद्देश्य की पूर्ति कर सकते है, परन्तु पिछले १०० वर्षों का अनुभव हमें बतलाता है कि जिस ढङ्ग की अँग्रेज़ी शिक्षा भारतवर्ष में प्रचलित है, उससे कभी भी देश का कल्याण नही हो सकता । अँग्रेज़ी स्कूलो में शिक्षा पाये हुए लाखों भारतीय आज गवर्नमेंट के भिन्न-भिन्न विभागों में नियुक्त है । हज़ारों रेलवे कर्मचारियों का काम करते है । इन शिक्षित लोगों से देश का क्या उपकार होता है ? देश के अनपढ, इन अँग्रेज़ी शिक्षितो के हाथ से त्राहि-त्राहि कर रहे है । स्टेशनो पर बाबू लोग किस निर्दयता से तीसरे दर्जे के मुसाफिरों को लूटते और कष्ट देते है ! अदालतो के मुन्शी-मुहर्रिर गरीब किसानों के साथ कैसा अत्याचार करते है ! जिधर देखो, उधर ही अँग्रेज़ी शिक्षितों के हाथों से भारत-जनता अत्यन्त दुःखी है । अँग्रेज़ी पढे-लिखे अपने दूसरे जाहिल देश-बन्धुओ को घृणा की दृष्टि से देखते है और उनके साथ बुरा व्यवहार करते है । दूसरी ओर करोडो अशिक्षित भारतीय इन बाबुओ पर तनिक विश्वास नही करते । वे इनको ठग और मक्कार समझते है ।

कहने का तात्पर्य यह है कि स्कूल और कालिजों की शिक्षा द्वारा भारत को लाभ की अपेक्षा हानि अधिक हुई है । थोड़ी-सी अँग्रेज़ी पढा हुआ लड़का अपनी भाषा, भेष तथा भूषा से घृणा करने लगता है । उसके लिए अँग्रेज़ी बोलना और अँग्रेज़ी सभ्यता की नकल करना ही शिक्षा का आदर्श है । वह कोट-पतलून पहन, गले मे कुत्ते जैसा पट्टा डाल, मुह में चुरट ले, अपने भाइयों से घृणा करना ही शिक्षा की सीढी पर चढना समझता है । अपनी भाषा तो उसे अच्छी लगती ही नहीं और न अपने प्राचीन ऋषि-मुनि उसकी आँखो मे जँचते है । उसके लिए तो अच्छा बूट-सूट, अच्छी गिटपिट और किसी दफ्तर में क्लर्क की नौकरी ही स्वर्गीय जीवन है । रुपये के लिये घृणित-से-घृणित कार्य करने को वे उद्यत है । नौकरी के लिए यदि इनको अपने देश-बन्धुओ का गला भी काटना पड़े तो उसको ये लोग "ड्यूटी" के नाम से पुकारते है और

तनिक नहीं सोचते कि अँग्रेजी के इस पवित्र शब्द का अर्थ क्या है ? वेश्याओ की तरह धन के लिए शरीर और आत्मा को बेचना ही इनके लिए 'ड्यूटी' है। हम लाख बार ऐसी शिक्षा को धिक्कारते है। अपने देश की ममता छोड, प्यारे देश-बन्धुओ से पशुपन का व्यवहार कर, प्यारी मातृभाषा से मुंह मोडना तथा अपने देश के पहरावे से घृणा कर, अपने पूर्वजों को तुच्छ दृष्टि से देखना, यदि ये ही इस अँग्रेजी शिक्षा के फल हैं, तो हम इसको दूर ही से नमस्कार करते है।

हम शिक्षा और अशिक्षित मनुष्यो के गुणो की व्याख्या पहले कर चुके है। अब आप लोग समझ गए होगे कि हम प्राचीन ढर्रे की शिक्षा-प्रणाली तथा स्कूल-कालेजो की वर्तमान शिक्षा-पद्धति इन दोनो के विरोधी है। हमने जो आदर्श शिक्षा का रक्खा है, जब तक उसकी पूर्ति करने वाली शिक्षा देश में प्रचलित न होगी तब तक हमारा कल्याण नही हो सकता। आज हमे बहुत सोच-विचार कर काम करना है। आज हमें ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जो हमारे पशुपन को निकाल कर हममे देश की ममता भर, मनुष्यत्व के मार्ग पर ले जाने वाली तथा वर्तमानकाल की आवश्यकताओ को पूर्ण करने वाली हो।

आप मुझसे पूछेगे कि वह शिक्षाप्रणाली कौन सी है और उसके बड़े-बडे साधन क्या है ? अब हम विस्तारपूर्वक शिक्षा के आदर्श की पूर्ति करने वाले साधनो का वर्णन करते है।

शारीरिक स्वतन्त्रता

परमात्मा के रचे हुए इस ससार के सौन्दर्य्य का आनन्द लेने के लिए शरीर एक साधन है। प्रकृति के दैवी रहस्यो की गांठें खोलने के लिए मनुष्य को परमात्मा ने शरीररूपी मशीन दी है। यही एक नीव है जिस पर उन्नति की दीवार खडी की जा सकती है। जिनका शरीर निर्बल है, जिन्होंने बुरे संस्कारो का अपने अन्दर सग्रह किया है वे कभी भी जीवन का आनन्द अनुभव नही कर सकते। एक तन्दुरुस्त आदमी को जो सुख

मिलता है उसे बीमार आदमी कभी स्वप्न में भी नहीं जान सकता। संसार भर के ऐश्वर्य्य के साधन यदि मौजूद हो और शरीर तन्दुरुस्त न हो तो वे सारे भोग मिट्टी के बराबर है। इसी लिए आरोग्यता को हजारो सुखो की खान कहा गया है, जो अक्षरशः सत्य है। ससार के संग्राम मे प्रवेश करने के लिए नीरोग शरीर की पग-पग पर आवश्यकता पड़ती है। पशुओं के राज्य में निर्बल को कोई स्थान नही मिलता। वह केवल दासता के लिए ही जीता है।

इसलिए शिक्षाप्रणाली में सबसे पहला स्थान शारीरिक स्वतन्त्रता को मिलना चाहिये। इसका अभिप्राय यह है कि हमारे शरीर मे स्वावलम्बन की शक्ति हो, इसमें किसी प्रकार का रोग न हो, यह अपने अधिकारो की रक्षा करने की सामर्थ्य रखता हो। जब सारी उन्नतियो का साधन तथा आध्यात्मिक विषयो के समझने की मशीन शरीर ही है तो पाठ्य-प्रणाली मे इसका स्थान सब से पहले होना चाहिये। एक विद्वान् ने कहा भी है—

"शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्"

अर्थात् धर्म करने का सबसे पहला साधन शरीर है। इसकी पुष्टि पर सारी भावी आशाए निर्भर है। कैसा ही विद्वान् क्यो न हो, यदि उसका शरीर रोगी है तो वह अपनी विद्या से पूरा लाभ नही उठा सकता। श्रेष्ठ विचार भी स्वस्थ्य शरीर में ही रह सकते है। अंग्रेजी मे कहावत है—Sound mind in sound body.—नीरोग विचार नीरोग शरीर में ही रह सकते है। इसी भाव को यूनानी दार्शनिको ने कला के रूप मे—"A beautiful soul in a beautiful body."—अर्थात् सुन्दर आत्मा सुन्दर शरीर में निवास करती है, प्रदर्शित किया है। जिस शिक्षाप्रणाली मे शारीरिक उन्नति पर ध्यान नही दिया जाता उसकी इमारत रेत की भीत पर है। कहने का तात्पर्य्य यह है कि शिक्षित बनने के लिए शारीरिक स्वतन्त्रता सब से पहली सीढ़ी है।

आप शायद इसको कोई नया विचार कहेंगे, परन्तु यदि आप अपने शास्त्रो को ध्यानपूर्वक पढें तो पता लगेगा कि उन्होने शिक्षा की बुनियाद ही ब्रह्मचर्य्य पर रखी है। वीर्य्यरक्षा किये बिना शरीर पुष्ट हो ही नही सकता। इस हेतु स्थान-स्थान पर विद्यार्थी को वीर्य्यरक्षा का उपदेश दिया गया है; क्योकि प्राचीन काल के आर्य्य लोग इस बात को भली प्रकार जानते थे कि जाति के उच्च आदर्शों की पूर्ति नीरोग सन्तान ही कर सकती है। भला जिस जाति के बच्चे मन्दाग्नि से ग्रस्त है, जो अपना खाया-पिया हज्म नही कर सकते, वे भला बलिष्ठ विचारो को कैसे ग्रहण कर सकते है। उत्तम बीज के लिए अच्छी भूमि की आवश्यकता है, वही पर वह फूल-फल सकता है। बीमार, पीले चेहरे वाले, दुबले-पतले नपुंसक लोगों के सामने यदि कर्म्मवीर बनने का पवित्र उपदेश दिया जाता है तो भला वह किस काम आ सकता है ? कोई जाति शारीरिक अवस्था सुधारे बिना अपने पवित्र मिशन को पूरा नही कर सकती। आज योरुप की जातियां शारीरिक स्वतन्त्रता की महत्ता को समझ कर अपने बच्चों को बलशाली बनाने के लिए करोडो रुपया खर्च करती है।

जब मै अमरीका मे जाकर शिकागो विश्वविद्यालय मे भर्ती हुआ, तो मुझे व्यायाम की शिक्षा की उपयोगिता मालूम हुई। विश्वविद्यालय की ओर से एक डाक्टर केवल विद्यार्थियो की तन्दुरुस्ती देखने के लिए नियुक्त था और कोई विद्यार्थी भी व्यायाम की शिक्षा से वचित नही रह सकता था। जैसे पढाई के और विषय लाज़मी समझे जाते है, उसी प्रकार शारीरिक दशा की उन्नति भी समझी जाती है। प्रत्येक विश्व-विद्यालय के साथ बडी बढिया आधुनिक-साधनसम्पन्न व्यायामशाला है, जहां पर विद्यार्थीगण प्रतिदिन व्यायाम कर अपने अग-प्रत्यग दृढ करते है। जो विद्यार्थी व्यायाम सम्बन्धी शिक्षा मे त्रुटि करता है, वह युनिवर्सिटी की डिग्री प्राप्त नही कर सकता।

अब ज़रा अपने यहां के स्कूल-कालेजो की दशा देखिये। अच्छे-भले तन्दुरुस्त लड़के स्कूलो में जाकर बुरी-बुरी आदतो को सीख जाते है और

जब परीक्षा पास करके निकलते है तो उनका शरीर अति दुर्बल हो जाता है। वे लोग यही समझते है कि स्कूल में पढने का अभिप्राय केवल इम्तिहान पास करना है और प्रत्येक अध्यापक लडको की शारीरिक अवस्था की तनिक परवाह न कर परीक्षा मे उत्तीर्ण छात्रो की सख्या बढाना ही अपना परम कर्त्तव्य समझता है। हजारो विद्यार्थी अपनी शारीरिक अवस्था को स्वाहा कर परीक्षा के हेतु बलिदान होते है। यही कारण है कि जब परीक्षा पास करके विद्यार्थी कालिजो से निकलते है तो उनसे कुछ देश-सेवा नही बन सकती। वे बेचारे डाक्टरो के दरवाजे देखते रहते है या झूठे वैद्यों के विज्ञापनो को पढकर अपना रहा-सहा बल भी खो बैठते है।

विचार कीजिये कि ससार के इस उन्नत काल में निर्बल भारत-सन्तान क्या कर सकती है? आज जीवन-दौड़ का भीषण सग्राम है। पग-पग पर जबर्दस्त शक्तियो का सामना करना है। अपने नित्य की जीवनचर्य्या में देखिये, निर्बल शरीर कैसी ठोकरे खाता है! आपके पास तीसरे दर्जे का टिकट है और रेलगाड़ी मे चढने के लिए आप आगे बढते है। जब दरवाजा खोल कर अन्दर चढना चाहते है तो एक मोटा-सा गँवार आपको धक्का देकर बाहर निकाल देता है। उस समय आपकी अवस्था क्या होती है? ज़रा विचार तो कीजिए। शारीरिक बल न रहते आप कैसा छटपटाते है। यद्यपि आपके पास भी टिकट है और आप को पूरा अधिकार गाडी मे बैठने का है, लेकिन आप अपने उस अधिकार का कुछ भी लाभ नही उठा सकते, यदि उसकी रक्षार्थ आपमे शारीरिक बल नही है। स्मरण रखिए, अधिकारो की रक्षा शारीरिक शक्ति प्राप्त किए बिना नही हो सकती। अच्छा यदि आप स्टेशनमास्टर या रेलवे-गार्ड की सहायता से उस गाडी में चढ भी गये तो क्या वह मोटा गँवार आप को आराम से बैठने देगा? वह मजे से टाँग पसार कर लेट जाता है और आप गाड़ी के एक कोने में खड़े झूठे वैराग्य का पाठ पढ रहे है—"यह दुनिया मुसाफिरखाना है, दो-तीन घण्टे की तो बात ही है, इस रेल

में क्या किसी को घर बनाना है ? अरे भाई ! हमारे लिए कोना ही अच्छा है।" इस प्रकार मन को तसल्ली देकर आप अपनी यात्रा पूरी करते है और ससार की जातियाँ आपको धक्के लगाकर कोने में फेंक रही है। जिसे आप वैराग्य समझते है, वह कायरता है। अपने भीरुपन को वैराग्य के पवित्र आवरण मे मत छिपाइये। शारीरिक बल प्राप्त कीजिये। अपने अधिकारो की रक्षा करने की शक्ति बढाइये और सदा अपने प्राचीन वीर आदर्श को सामने रखिये। पाश्चात्य जातियो का सिद्धान्त—"Might is right"—जिसकी लाठी उसकी भैस है, किन्तु हमारा आदर्श—'Right is might" है अर्थात् जिसका जो अधिकार है, वही उसकी शक्ति है। इसलिए शारीरिक बल की प्राप्ति कीजिए, परन्तु उद्देश्य यह रखिए कि हम इसके द्वारा अपने और दूसरो के अधिकारो की रक्षा करेगे। जहाँ कही बालक, वृद्ध और बालिकाओ पर अत्याचार होता हो, वहाँ अपने शारीरिक बल से दुष्टों को दण्ड दीजिए। बल गरीबो को सताने के लिए नही होता, बल्कि उनकी सहायता करने के लिए है। यही सच्चा कर्मयोग है। जिसके पास अपनी रक्षाहेतु किसी प्रकार की शक्ति नही है, उसके लिए वैराग्य के गीत गाना केवल अपनी भीरुता प्रगट करना है।

अब जरा अपने यहाँ के शिक्षित लोगो की दशा देखिये। हमारे यहाँ जो कोई हट्टा-कट्टा शारीरिक बल से हृष्ट-पुष्ट नवयुवक हो तो उसको लोग गुण्डा समझते है और इनकी परिभाषा मे भलामानस वह है जो दुबला, पतला, सिर मे तेल लगाये हुए, बाल-कंघी किये हुए, नये फैशन का बाबू फूँक से उड़ने वाली छड़ी रखने वाला हो। माँ-बाप बड़े अभिमान से कहते है—"मेरा बच्चा किसी से लड़ता-झगड़ता नही। जो कोई इसको मारता भी है तो यह भले मनुष्यो की तरह चुप-चाप मार खा लेता है।" यह हमारी आजकल की भलमनसाहत है। मेरी आप लोगो से प्रार्थना है कि ऐसी कायरता की शिक्षा को बच्चों के दिलों से निकाल दीजिए और उनके हृदय पर स्वत्वाभिमान की शिक्षा खचित कीजिए। जो

कोई उनका अपमान करे और वह विनय अथवा नम्रता से न माने तो उन्हें उसकी यथायोग्य पूजा करने के लिए उद्यत रहना चाहिये। प्रत्येक माता-पिता का यह धर्म्म है कि वे अपने बच्चो को नियमपूर्वक व्यायाम करावें और कसरत किये बिना कभी भी भोजन खाने को न दे। यदि वे इस नियम में असावधानी करेगे तो उनकी सन्तान को अपने भावी जीवन में सदा दूसरो से मार खानी पडेगी।

मै एक बार इलाहाबाद से देहरादून जा रहा था। एक दुबला-पतला बङ्गाली मेरी बगल मे खिडकी के पास बैठा था। लखनऊ के स्टेशन पर वह बेचारा अपनी टोपी अपनी जगह पर रखकर पानी पीने को नीचे उतरा। पीछे से एक लम्बा-चौडा जवान आदमी आकर उसकी टोपी ऊपर फेक आप उसकी जगह पर बैठ गया। जब बङ्गाली पानी पीकर आया और अपनी जगह पर उस गुण्डे को बैठे देखा तो बेचारा भीगी बिल्ली की तरह चुपके से अपनी टोपी उठाकर दूसरी जगह जा बैठा। मुझसे न रहा गया। मैने उस गुण्डे को प्रेम से समझाना चाहा, पर भला वह क्यो मानता था। अन्त को मैने उसे कहा कि यदि आप इसी प्रकार मेरी जगह पर बैठ जाते तो मै आपकी खूब मरम्मत करता। इस पर वह बिगड कर बोला—

"आप जैसे पूजा करने वाले मैने बहुत देखे है!"

"अच्छा मै उठता हूँ, तुम मेरी जगह पर बैठ कर देखो!"

यह कहकर मै उठ खडा हुआ और ज्यो ही वह मेरी जगह पर बैठा, मैने उसकी गरदन दबा, टाँगे पकड़ नीचे पटक दिया और छाती पर चढ़ दो घूसे ऐसे लगाए कि उसके रुधिर बहने लगा। लोगो के छुडा देने पर वह उठकर कहने लगा—

"आप फकीर होकर इतना गुस्सा करते है, यह आपके लिए वाजिब नही था।"

इस पर बङ्गाली हँस कर बोला—"ये स्वामी जी महाराज है, इनका काम उपदेश देना है। जो मनुष्य बात से नही मानता, उसको लात से

भी समझाते है ।"

इस पर सब लोग खिलखिला कर हँस पड़े । कहने का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक मनुष्य के अन्दर अपने अधिकारो की रक्षा करने के लिए बल होना चाहिये ।

इसी प्रकार की एक और घटना मेरे साथ हरदोई में हो गई । हरदोई में नागरी-प्रचारार्थ मै व्याख्यान देने गया था । वहाँ अपने कार्य से निपट कर प्रयाग लौटने के लिए ड्योढे दरजे का टिकट ख़रीद मै गाडी में जा बैठा । एक दस वर्ष का बालक भी मेरे साथ हरदोई से कही दूसरी जगह जा रहा था । उसके लिए बैठने को जगह न थी । एक 'भला मानस' सारी बेञ्च पर कब्जा कर मुह ढाँपे लेटा हुआ था : गाड़ी पर चढ़ते समय मैंने उसे मुह खोले देखा था । मुसाफिरो को देख कर उसने मुंह ढाँप लिया और टांग पसार कर सोने का बहाना किया था । उसका यह स्वार्थपूर्ण आचरण मुझे अच्छा न लगा, इसलिए जब उस बालक को बैठने की जगह न मिली और उसने मुझसे पूछा——

"स्वामी जी ! मै कहाँ बैठू ?"

तो मैने तत्काल ही उसको लेटे हुए आदमी के ऊपर बैठने का इशारा किया । वह बालक मेरा इशारा पाकर उस स्वार्थी पर चढ बैठा । अब क्या था ! वह धूर्त चिल्ला कर उठा और लडके को मारने की धमकी दी । तब मैने कहा—"उस बालक को क्यो धमकाते हो, वह मेरे कहने पर आपकी छाती पर बैठा था ।"

यह धूर्त देखने में मजबूत था, इसलिए गरज़ कर कहने लगा—

"आप कौन है उसको मेरे ऊपर बिठलाने वाले ?"

मै मुस्करा कर—"लाल-पीली आँखें तो दिखलाओ नही । सारी बेंच सँभाल कर टाँग पसार लेना, यह आपका अनुचित कार्य्य था। जब आपने मुसाफिरों को आते हुए देखा तो स्वयं ही आपको उठकर बैठ जाना था । आपने ऐसा न कर, मुँह ढाँप, झूठा बहाना बनाने की चेष्टा की तो मुझे लाचारी से लड़के को आप पर बिठलाना पड़ा ।"

धूर्त (अकड़ कर)—"अगर मै इस लडके को दो-चार लगा देता तो आप क्या करते ?"

"मुझे आपकी पूजा करनी पडती ।"

इस पर वह बहुत बिगडने लगा । तब मैंने उसे कहा—

"देखो, घबराओ मत । लखनऊ का स्टेशन निकट ही है । वहाँ उतर कर आपकी और मेरी कुश्ती होगी ।"

बस इतना काफी था । उसके क्रोध का नशा उतर गया और वह बेंच के एक कोने मे सिमट कर बैठ गया । फिर प्रेम से मैंने उसे समझाया—

"हम सबको एक दूसरे के अधिकारो का ध्यान रखना चाहिये । जब हम दूसरे के आराम का ख्याल करेंगे तो दूसरा भी हमारे आराम का ध्यान रक्खेगा । आप बलवान है, मजबूत है, अतएव आपका कर्तव्य अपने से कमजोरों को सुख देने का है । यदि हम सब प्रेमपूर्वक रहना सीख जाये तो हमारी सब कठिनाइयां दूर हो सकती है ।"

इस पर शान्ति होगई और दूसरे सब यात्री बड़े प्रसन्न हुए । संसार में अपने अधिकारो की रक्षा-हेतु युद्ध करने की आवश्यकता पडती है और बहुत से सुधार बिना सग्राम और शक्तिसचय किये हो नही सकते । व्यक्तियों की शक्ति पर राष्ट्र की शक्ति निर्भर है, अतएव शिक्षा-प्रणाली के महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर विचार करते समय देश-हितैषियो को सबसे पहले 'शारीरिक स्वतन्त्रता' का प्रबन्ध करना चाहिये । इसके लिए स्थान-स्थान पर "Gymnasium, अखाड़े, व्यायामशालाये" खोलना ठीक होगा । उन व्यायामशालाओं में धनी और निर्धनो के बालक, सुबह और शाम दोनो समय आकर व्यायाम करे । आधुनिक योरुपीय ढग की कसरतो का प्रबन्ध होना चाहिये । तैरना सीखने के लिए निर्मल जल का तालाब होना उचित है । स्नान के लिए स्नानागार हों । यदि इन व्यायामशालाओं के साथ-साथ सच्चरित्रता सिखाने तथा पुस्तकावलोकन के साधन भी हो तो क्या कहना है !

ज़रा आँख उठाकर अपने बालकों की दशा देखिये । उनकी शारीरिक अवस्था बिगाड़ने के कैसे-कैसे भयानक साधन विद्यमान है ! गन्दे गली-कूचे, अश्लील गीत और बुरी आदतें सिखाने वाले साथी किस निर्दयता से उनके मनुष्यत्व का नाश कर रहे है ! हमारे नगर-नगर में मन्दिर, देवालय तथा शिवालय है । उनमें हज़ारों उपासक नित्यप्रति जाते है । क्या हमारे उपास्यदेव दुर्बलेन्द्रिय, विषयी और नपुसक सन्तान की भेट ग्रहण कर प्रसन्न हो सकते है ? कदापि नहीं । आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक मन्दिर के साथ एक व्यायामशाला होनी चाहिये । सवेरा होते ही नागरिको के दल-के-दल वहाँ पर उपस्थित हों, बालक अपने-अपने लगोटे लिये वहाँ आवे । नवयुवक कन्धे पर जाँघिए रखे खिले चेहरो से व्यायामशाला में प्रवेश करें; वहाँ ईश्वर-प्राप्ति के पवित्र साधन, मनुष्यत्व की खान, आत्मा की शक्तियो का प्रादुर्भाव करने वाले यन्त्र—'शरीर'—को पुष्ट किया जाये । गतका, फरी, पटा आदि का भी अभ्यास करना चाहिये । खूब शारीरिक परिश्रम करने के बाद थोडी देर आराम कर स्नानादि से निश्चिन्त हो, धूप-दीप-नैवेद्य हाथ मे लेकर श्रद्धा से अपने पूज्य उपास्यदेव के मन्दिर मे प्रवेश कीजिये । हमारी भगवती देवी, हमारे भगवान् कृष्णचन्द्र, मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्र जी तथा कैलाशपति महादेव जिस समय बलिष्ठ, वीर्यवान् और नीरोग उपासको को मन्दिर मे प्रवेश करते देखेगे तो उनके आनन्द की सीमा न रहेगी । परीक्षा के समय जब कभी उस देवालय की रक्षार्थ बलिदान की आवश्यकता पडेगी तो वीर्यवान् सन्तान ही अपनी विशाल भुजाओ से अपने इष्टदेवों की सेवा कर कीर्ति-लाभ कर सकती है । नपुसक और रोगी उपासको से देवता कैसे प्रसन्न हो सकते है ! परमात्मा की प्राप्ति का साधन—शरीर—यदि बिगड़ गया तो फिर भला ईश्वर-दर्शन कैसे हो सकता है ? इसीलिए उपनिषद् कहती है—

"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः ।"

अर्थात् बलहीन व्यक्ति को आत्मा और परमात्मा प्राप्त नहीं हो

सकते। प्रभु की गोद में बैठने के लिए भी सुन्दर शरीर चाहिये। जो लोग शरीर को तुच्छ समझ कर इसकी अवहेलना करते है वे ईश्वरीय आज्ञा का पालन नही करते।

स्मरण रखिए, संसार एक संग्राम-क्षेत्र है। इस क्षेत्र में हम सब सिपाही है जो युद्ध हेतु यहां आये है। बिना युद्ध-विद्या सीखे हम इस क्षेत्र मे विजयश्री लाभ नही कर सकते। पग-पग पर हमारा कठिनाइयो से सामना है। बाधाओं को जीतने वाला साधन शरीर है। यदि शरीर निर्बल है तो हम कभी भी संग्राम में ठहर नही सकते; हमें दुम दबा कर भागना पड़ेगा। वे ही विजयलक्ष्मी के सिहासन पर बैठ सकेगे जिन्होंने शारीरिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति की है। ब्रह्मचारी बनने के लिए, वीर्य-रक्षा हेतु और विकट शत्रुओं—काम-क्रोधादि—का सामना करने के लिए भी बलवान् शरीर ही सहायक हो सकता है। भला कमजोर अगों वाले मनुष्य कामदेव का सामना कैसे कर सकते है ? वे जरा से धक्के मे गिर पड़ते है और उनमें सामना करने की शक्ति नही रहती। यदि आप संयमी बनना चाहते है तो पहले शरीर की साधना कीजिए। खूब व्यायाम द्वारा इसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग को बढाइए। जब यह साधन आपके उपयुक्त होगा तभी आपको यह यथेष्ट सिद्धिया दे सकता है। बदन में फुर्ती आएगी, बीमारी दूर भागेगी, मस्तिष्क काम देगा और आप जीवन-सुख का आनन्द ले सकेंगे।

शिक्षा के इस पहले साधन—'शारीरिक स्वतन्त्रता'—पर प्रत्येक देश-हितैषी को ध्यान देना चाहिए और जहाँ-जहाँ शिक्षा का प्रबन्ध किया जाये वहाँ सबसे पहले व्यायामशाला का प्रबन्ध होना उचित है। यह आवश्यक नही कि बड़ी भारी, बहुत खर्च की ही व्यायामशाला हो। कम खर्च पर—दो-चार सौ रुपये लगाने से भी काम चल सकता है। यदि इतना भी न हो सके तो खुले मैदान में दौड, कबड्डी, कुश्ती, मुगदर, सौची, बैठकी, फरी, गतका आदि कसरतों का अभ्यास कर लेना ही काफी होगा। कुछ-न-कुछ उपाय, कुछ-न-कुछ व्यायाम के साधन प्रत्येक स्कूल व

पाठशाला के साथ होने चाहिएं।

'शारीरिक स्वतन्त्रता' मनुष्य को शिक्षित बनाने का पहला साधन है। इसकी उपयोगिता आपने देख ली, इसकी व्याख्या भी सुन ली। अब दूसरे साधन—'आर्थिक स्वतन्त्रता'—के विषय मे जो-कुछ मेरा निवेदन है उसे भी कृपया ध्यानपूर्वक सुनिये।

आर्थिक स्वतन्त्रता

शिक्षित मनुष्य मे धनोपार्जन की योग्यता का होना भी परमावश्यक है। जो मनुष्य अपने-आप को पढ़ा-लिखा कह कर स्वतन्त्र रोटी कमाने की भी शक्ति नही रखता, उसका पढना-लिखना व्यर्थ है। आज हमारे स्कूल और कालेजो मे पढने वाले छात्र किस प्रकार इधर-उधर मारे-मारे फिरते है! छः वर्ष के हुए, माँ-बाप ने स्कूल मे पढने को भेजा, दस वर्ष मेहनत करके परीक्षा पास की, चार वर्ष दिमाग खाली कर बी० ए० की डिग्री ले ली, डिग्री लेने पर भी प्रश्न वही सामने है—"हमे रोटी कैसे मिलेगी?" माता-पिता ने अपनी जायदाद बेच कर लड़के को पढाया, हजारो रुपये खर्च होगये, कर्ज़ सिर पर होगया, जब पढ-लिख कर बाहर निकला और माता-पिता को आशा हुई कि अब सारा दरिद्र दूर हो जायगा तो उस समय एक नई समस्या खड़ी हो जाती है। अब चाहिए नौकरी की सिफारिश करने वाला। कही सिफारिश लग जाय, किसी साहब के सामने जाकर गिड़गिड़ाया जाय, उसको डालियाँ दी जायँ, किसी गरीब की नौकरी हटवा कर अपना उल्लू सीधा किया जाय, तब कही जाकर नौकरी लगती है और उस बी० ए० की डिग्री का 'सब्ज़ बाग' देखने में आता है। उस सब्ज़ बाग के नज़ारे देखिए। वहाँ मिलता है उन कालेज की डिग्रियों का सुन्दर पहला पुरस्कार—

Yours faithfully

आपका वफादार

यह तो हुआ पहला नजारा। अब दूसरे पुरस्कार की ओर

आइये। जिसकी सिफारिश से 'आपका वफादार' बने हैं, उसकी सडकें नापना, यह उस सब्ज़ बाग का दूसरा नज़ारा है। तीसरा पुरस्कार है अपना आत्म-सम्मान खोकर अफसरों की गालियाँ सिर-माथे पर लेना। अब सुनिए चौथे पुरस्कार की बात। दास का धर्म-कर्म कुछ नही होता। उसे 'जी हजूर' बन कर केवल हुक्म मानना पड़ता है। आज लाखों भारतीय इन चार प्रकार के पुरस्कारो से लदे हुए अपना दुःखमय जीवन व्यतीत कर रहे है। उनसे जाकर पूछिये। कैसे-कैसे झूठ, कैसी-कैसी मक्कारियाँ उनको नौकरी की खातिर करनी पड़ती है! अपने अफसरों को खुश करने के लिए उन्हें कैसे-कैसे स्वाँग रचने की ज़रूरत पड़ती है! लड़का घर में बीमार है, छुट्टी चाहिए, अब छुट्टी कैसे मिले? अपने अफसर से जाकर छुट्टी माँगते है। वह 'काम अधिक है' का डर दिखाता है, छुट्टी नही मिलती। अब क्या किया जाय? किसी डाक्टर मित्र के पास जाकर, दस-पाँच रुपये दक्षिणा देकर, उससे अपनी बनावटी बीमारी का सार्टिफिकेट लेते है और बीमारी (Sick Leave) की झूठी अरज़ी भेज कर आत्मा को धोखा देते है। जानते है कि पाप कर रहे है, पर क्या करें—'मरता क्या नही करता'—लड़के के इलाज के लिए छुट्टी ज़रूर चाहिए। जब हाकिम छुट्टी न दे तो उसकी आँखो मे धूल झोकने के लिए कुछ बहाना करना ही पड़ता है।

और तमाशा देखिए। नगर मे कोई प्रसिद्ध व्याख्यानदाता आता है। लोग उसका जोशीला प्रभावशाली व्याख्यान सुनने के लिए जाते है, पर यह क्रीतदास बाबू बेचारा मन मसोस कर घर बैठा रहता है। वह अपने देश-हितैषी बन्धुओ के उपदेश तक नही सुन सकता। नौकरी क्या की कि मानों शरीर और आत्मा बेच दिये। देश का हित साधन करने वाली सभाओ के अधिवेशनो मे वे जा नही सकते। वाह री शिक्षा! वाह रे इसके सब्ज बाग! ऐसी शिक्षा से तो अनपढ रहना अच्छा है। क्या शिक्षा के ये अर्थ है कि आप अपनी स्वतन्त्रता बेच दे? हाँ, इस अभागे देश में इसके यही अर्थ समझे जाते है। जब इन नौकरी-पेशा शिक्षितों से

देश-सेवा के लिए कुछ कहा जाता है तो वे आहें भर कर रह जाते है।

भला कौन समझदार इस स्कूली, स्वतन्त्रता का अपहरण करने वाली और जीवन को नरकसम बनाने वाली शिक्षा को 'शिक्षा' कह सकता है। यह शिक्षा नही है, यह मकडी का ताना-बाना है। जो इसमें फसा, वह गया। एक बनिये का लड़का चार आने का चना खरीदता है। वह उसको उबाल कर, नमक मिर्च लगा कर, बाजार में बेच कर आठ आने के पैसे पैदा करता है। वह कलमघिस्सू, कुरसी तोड़ने वाले, तथा अफसर की हाँ मे हाँ मिलाने वाले 'जी हजूर' महाशय से लाख दर्जे अच्छा है, उसको अपनी आत्मा का हनन तो नही करना पड़ता! वह जब चाहे तभी स्वेच्छानुसार घूम सकता है। वह अपनी मरजी का मालिक है। उसे किसी के सामने गिड़गिड़ाना नही है, उसे छुट्टी माँगने की जरूरत नही, देश-सेवा कर सकता है, देश-भक्तो से मिल सकता है, उनके व्याख्यानो का आनन्द ले सकता है; पर हमारा कालेज का ग्रेजुएट बेचारा 'मिल' और 'स्पेन्सर' पढ कर भी अपने गले मे जञ्जीर बाँधे हुए है और अपनी शक्तियो को बेच रहा है।

वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के ऐसे जहरीले फल क्यो है? उत्तर स्पष्ट है। स्कूल और कालिजो की शिक्षा असल मे शिक्षा नहीं है, यह केवल परीक्षा पास कराने की मशीन है। खूब रट-रट कर, घोटा लगाकर परीक्षा पास कर लेना ही इसका मुख्य उद्देश्य है। प्रत्येक कालेज का अधिष्ठाता परीक्षोत्तीर्ण छात्रो की संख्या बढाना—फी सदी अधिक लडके पास कराना—ही अपना उद्देश्य समझता है। स्कूलो के अध्यापक निरीक्षको को बड़े गौरव से कहते है—"देखिये महाशय! हमारे स्कूल मे से सेन्ट-पर-सेन्ट लड़के पास होते है।" बस, मतलब पूरा होगया, शिक्षा की इति-श्री होगई। लड़को की तन्दुरुस्ती, उनका चरित्र बिगड़ जाय तो बिगड जाय, पर 'पास' होना चाहिये। लड़के परीक्षा पास करना, अपना मुख्य कर्तव्य समझ कर, सब कुछ उसके लिए बलिदान

कर देते है और परीक्षा पास कर लेने पर समझ बैठते है—"बस, अब मैदान मार लिया। अब ससार के दुःखों से छूट गये।"

बेचारे यह नही जानते कि उनके जीवन का सबसे अच्छा समय गुजर गया और अब मुसीबतो का आरभ होने लगा है। फोनोग्राफ की भाँति उन्हें पढाई की सब बाते याद है और जब चाहे तभी उन्हें उगल कर दूसरो का मनोरञ्जन कर सकते है। बेचारे अपने लिए कुछ नही कर सकते, वे केवल दूसरो के मनोरञ्जनार्थ है। मिल और स्पेन्सर के उपदेश तो उन्हें कण्ठ है, पर उनसे रोटी कमाने में कुछ भी सहायता नहीं मिल सकती।

सहायता हो कैसे ? पहले तो इस शिक्षा द्वारा शरीर खो दिया—तन्दुरुस्ती नष्ट हुई—जो कुछ बचा उससे आर्थिक स्वतन्त्रता लाभ करने के लिए सर्वथा असमर्थ है। चौदह वर्षों की शिक्षा नवयुवकों को इस योग्य नही बना सकती कि वे स्वतन्त्रतापूर्वक निर्वाह कर सके। घर की पूँजी स्वाहा होगई और परिणाम निकला—नौकरी ! यदि उसी पूँजी से कालेजो मे समय नष्ट न किया जाता, तो अच्छे रहते। दुकान खोलकर मजे मे गुज़ारा कर सकते थे। धन भी गया, शक्ति भी गई, स्वतन्त्रता भी बेच डाली, अब जीवन का साधन केवल दूसरो पर निर्भर रहने पर ही रह गया है। दस रुपये की नौकरी के लिए जूतियाँ चटखाते फिरते है, मगर हाथ से कोई उद्योग-धन्धा नही करेगे। अग्रेज़ी पढकर धन्धा ! स्वतन्त्रता की खान 'उद्योग' से इन्हे घृणा है। हमारे देश में पढने-लिखने का अर्थ यह है कि केवल क्लर्की की जाए और अपने देश के अनपढ़ भाइयो की बेबसी का दुरुपयोग कर रुपया पैदा किया जाय। अब बढिया बूट-सूट चाहिये। घर में खाने को न रहे, मगर फैशन पूरा होना चाहिए। जहाँ अग्रेजो की गिटपिट आई वही भेष बदला और जेन्टलमेनो का भूत सिर पर सवार हुआ। यदि बाप अपने मिडिल पास बेटे को बाजार से आटा खरीद लाने को कहता है तो बेटा बाजार जाकर सौदा खरीदने से हिचकिचाता है। यदि किसी प्रकार मान भी लिया तो दो, चार या दस सेर

आटा उठाने के लिए उसे एक नौकर चाहिए। अंग्रेजी पढ़ने से हाथों में मेंहदी लग जाती है और वे सुन्दर बन कर जेबो मे रखने लायक रह जाते है।

एक बार मै सण्डीले में व्याख्यान देने के लिए गया। किसी स्कूल के अध्यापक ने बुलाया था। वे अपने विद्यार्थियो के साथ रहा करते थे। जब मै उनके स्थान पर जाकर पहुँचा तो उन्होने आदरपूर्वक खाट डालकर उस पर सफेद कपडा बिछा दिया। मै बैठ गया। जब मैने इधर-उधर दृष्टि दौडाई तो खटिया के पास बहुत सा कूडा जमा देखा। उस विद्यार्थी से मैने पूछा—

"क्यों बेटा! यह सब कूडाकर्कट क्यो जमा कर रखा है?"

लड़का बहुत झेंपा; कुछ ठहर कर बोला—"स्वामीजी, हमारा नौकर आज छुट्टी पर गया है।"

मुझे बड़ी हँसी आई। एक दूसरा नौकर जो मेरे लिए जल लाया था, उसकी ओर इशारा कर मैने कहा—"यह आदमी किस लिए है? यह साफ कर सकता था।"

विद्यार्थी—"स्वामीजी, यह तो ब्राह्मण है। यह घर में झाडू नही दे सकता। यह केवल भोजन बनाता है।"

अपने देश के बच्चो की ऐसी अज्ञानता देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। मैने कहा—"क्या झाड़ू देने से हाथ घिस जाते है? तुम स्वयं अपने हाथ से झाड़ू दे सकते थे और कमरा साफ कर सकते थे। लाओ झाड़ू, हम कूड़ा निकालते है।"

मेरे इतना कहने पर वह विद्यार्थी बड़ा लज्जित हुआ। दोनो विद्यार्थी लगे मकान साफ करने। असल बात क्या थी? वे दोनों क्षत्रिय बालक थे; अपने हाथ से झाड़ू देना उन्हें अपने लिए अप्रतिष्ठा का कारण मालूम होता था। तिस पर अंग्रेजी स्कूल में पढ़ने वाले और धनी जमीदार के लड़के! हाथ से काम कैसे करे! और नौकर जो मौजूद है वह ब्राह्मण है! ऐसी दशा में कूड़ा-कर्कट कौन निकाले? यह दशा इस देश के बच्चो

की है। एक सिर्फ रोटी बनाने का काम करेगा, दूसरा केवल बर्तन मांजने का, तीसरा धोती धो सकता है। मेहनत-मजदूरी से डरने वाली भारत-सन्तान आज यदि इस बीसवी शताब्दी मे निर्धन है तो इसमे आश्चर्य ही क्या है! जिस देश के शिक्षित मजदूरी की महत्ता (Dignity of Labour) को नही समझते, मजदूरी करने से भागते है, जो उद्योग-धन्धे को घृणा की दृष्टि से देखते है, जो झूठे जाति-अभिमान मे डूबे रहते है, ऐसा देश यदि निर्भरता के गहरे समुद्र मे डूबा हुआ है तो कोई ताज्जुब की बात नही।

शिक्षा में मेहनत-मजदूरी (Manual Training) को सब से पहले स्थान मिलना चाहिये। जितना धन पैदा होता है, वह सब मेहनत-मजदूरी से पैदा होता है। ईश्वरदत्त इस भूमि से यदि हम मजदूरी द्वारा काम न ले तो हमे किसी प्रकार के धन की प्राप्ति नही हो सकती। हमारे भोगों के जितने सामान है वे सब मजदूरी द्वारा सिद्ध होते है। एक वक्त का भोजन हजारो मनुष्यो के परिश्रम का परिणाम है। फिर मजदूरी से घृणा क्यो? बढई, लुहार, तेली, कहार, मोची, सुनार और किसान हमारी आँखो मे जचते ही नही; वे छोटी जाति के लोग समझे जाते है, वे नीच है। अब इन ऊँचो की दशा देखिये। जो सबको लूट खायें, निर्दयी सूद द्वारा ग़रीबो का खून चूस लें, रिश्वत ले-ले कर बड़े-बडे मकान बना ले, जो दिन मे सैकडो बार झूठ बोले, ऐसे लोग कुलीन, ऊँचे दर्जे के और भद्र समझे जाते है। उनकी सब जगह प्रतिष्ठा होती है।

कितना बड़ा अन्याय है। देश का धन पैदा करने वाले, ज्येष्ठ तथा आषाढ़ की धूप सह कर अन्न उत्पन्न करने वाले तो छोटे दर्जे के समझे जायँ और मुफ्तखोर निखट्टू लोगो की समाज मे प्रतिष्ठा हो। भला ऐसी दशा मे कौन मजदूरी की ओर मुँह करेगा! आज मजदूरी का जमाना है। कल-कारखाने बिना मजदूरी के नही चल सकते, आविष्कार बिना मजदूरी के नही हो सकते, मशीने बिना हाथ हिलाये चल नही सकती। अमरीका, योरुप और जापान आज मजदूरी के बल पर मालामाल हो रहे

है। विदेशी लोग आज उद्योग-धन्धे के सहारे भारत का रहा-सहा रुपया खीच रहे है। यह मजदूरी की शताब्दी है। आज भारतीय बच्चे यदि मजदूरी से घृणा करेगे तो उनका गुजारा कैसे हो सकता है! हमारे यहाँ सब कोई बिना हाथ-पैर हिलाये मालदार होना चाहता है। इसीलिये चारो ओर झूठ-मक्कारी का बाज़ार गरम है। हमारा आदर्श धर्म-प्रचारक वही समझा जाता है जो निकम्मा बैठने की शिक्षा दे और जो कर्मण्यता सिखाता है वह इनकी दृष्टि मे दुनियादार है। भीख माँग खायेगे, पर काम नही करेगे। बड़े-बड़े मोटे-ताजे फक़ीर हाथ फैलाये दुकान-दुकान पैसा माँगते फिरते है। उनसे काम करने को कहो तो काट खाने को दौडते है। कहेगे—"बाबा आपकी जय मनाते है। राम-नाम जपते है।" बस होगया! इन्हें भीख माँगते तनिक लज्जा नही आती। लज्जा कैसे आवे, लज्जा तो रुपया-पैसा देने वालों को आनी चाहिए। मैने ऐसा कोई मूर्ख देश नही देखा जहाँ के लोग घर का पैसा खर्च कर अपने देशवासियो को निकम्मे और आलसी बनाते हो। भारत की यह जोकें ग्राम-ग्राम, नगर-नगर घूम कर भारतीय किसानो का खून चूसती है। मेलों मे देखो, नाना रूप धर कर ये पाखण्डी फकीर जनता का पैसा ठगते है और मुफ्तखोरो की सख्या बढाते है। सर्वसाधारण मे ऐसे ही धूर्तों की पूजा होती है। खबर मिलनी चाहिये कि कोई बाबाजी आए है और वे मौनी है—बस, फिर लोगों का ठट्ठ उनके दर्शनार्थ जमा हो जाता है। सब प्रकार की भेट-पूजा होती है। भोले-भाले लोगो के हजारो रुपये इसी प्रकार ठगे जाते है। देश के बच्चों के सामने अकर्मण्यता का आदर्श रक्खा जाता है। जिनके हाथ सूख गये है, वे सिद्ध समझे जाते है। कहा जाता है कि तपस्या से उनके हाथ सूख गए है। अच्छी तपस्या है! ईमानदार, मेहनती लोग अपने बाल-बच्चों का पेट तक नही भर पाते और ये आलसी धूर्त अपने वारे-न्यारे मुफ्त मे करते है।

भारतीय बच्चो के सामने हमे शिक्षा का नया आदर्श रखना है। उनको कर्मवीर बनाने की शिक्षा देनी है। उनके अन्दर स्वावलम्बन की

संजीवनी शक्ति भरनी है । यह सब तभी होगा जब मजदूरी की महत्ता (Dignity of labour) को शिक्षा मे प्रथम स्थान दिया जायगा, जब देश के लोग चरित्र की कसौटी से ऊच-नीच की परख करेंगे । अकर्मण्यता का जहर जो आज हमारे समाज मे फैल रहा है, हमें उसे निकालना है । जो शिक्षा आजकल स्कूलों में दी जाती है वह केवल एक प्रकार का बपतिस्मा है । उससे मनुष्य केवल किसी भलेमानस की बात समझने लायक बन जाता है । उसको मे शिक्षा नही कहता, शिक्षा दूसरी वस्तु है । पिछले सौ वर्षो से भारत में अग्रेजी शिक्षा का प्रचार हुआ है । यदि यह शिक्षा असल मे शिक्षा होती तो अब तक भारत का उद्धार होगया होता । इस शिक्षा से उलटी भीरुता, कायरता और अकर्मण्यता फैल गई है और हमारा बल-वीर्य्य नष्ट होगया है । इसलिए अब हमें सच्ची शिक्षा की ओर आना चाहिए और अपनी पिछली भूलो को सुधारने का यत्न करना चाहिये ।

इसलिए आर्थिक स्वतन्त्रता का सब से बड़ा साधन मज़दूरी की महत्ता है । आप अपने देश के अनपढ सीधे-सादे मारवाडियो को देखिये । ये लोग बंगाल, बिहार, नैपाल, संयुक्तप्रात तथा भारत के सभी प्रातो मे फैले हुए है । ये अनपढ लोग तो लाखों रुपया कमाते है, पर कालेजो में पढे-लिखे बी० ए० पास बेचारे कठिनाई से पेट भरते है । क्यो ? कारण स्पष्ट है । जिस समय एक मारवाड़ी घर से रुपया कमाने के लिए निकलता है तो वह मजदूरी की महत्ता का पाठ पढ लेता है । कमर पर कपड़ो का गट्ठड लाद कर ग्राम-ग्राम घूमने में इसे तनिक संकोच नही । वर्षों इसी प्रकार दौड-धूप करता है, शीत-उष्ण सहता है । जब कुछ पूंजी हो जाती है तो अपनी दुकान कर लेता है और फिर धीरे-धीरे अपनी सम्पत्ति बढाता है । यह सब मज़दूरी के फल है । स्टेशन पर बहुत बार अपना ट्रक आप उठाये हुए इन मारवाड़ी-पुत्रो को आप लोगो ने देखा होगा; भारी-भारी बोझ उठाने मे ये लोग तनिक भी हिचकिचाते नही । यही इनके धन कमाने का रहस्य है । इसके विपरीत हमारा दस रुपये का

बाबू क्लर्क तथा कालेज का विद्यार्थी मामूली हैण्डबेग भी अपने हाथ से उठाना कसरे-शान समझता है। उसके लिए भी उसे कुली चाहिए। भला कहिये तो रुपया कमाया कैसे जाय ?

कहते हैं कि एक बार स्वर्गीय पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर गर्मी की छुट्टियो मे अपने गाँव गए। रेल के जिस तीसरे दर्जे के डिब्बे में बैठे हुए थे, उसमे कलकत्ता कालेज का एक विद्यार्थी अपना सूटकेस लि अपने घर जा रहा था। वह बंगाल के इस महापुरुष को पहचानता नहीं था। उसका घर भी उसी गांव में था जहाँ विद्यासागर जी का जन्म हुआ था। छोटा-सा गाँव होने के कारण वहाँ रेलगाड़ी का साधारण स्टेशन तो था, लेकिन कुली नही मिलते थे। जब गाडी स्टेशन पर पहुंची तो विद्यासागर जी उतरे और वह नवयुवक भी अपना सूटकेस हाथ में लेकर "कुली ! कुली !!" पुकारने लगा। वहाँ कुली कहाँ से आता ! विद्यासागर जी के पास कोई सामान नही था। उनका सिर नगा और पाओ मे जूता भी नही था—वे पहने हुए थे केवल धोती और कमीज़। जब उस नवयुवक को कोई कुली न मिला तो उन्होने आगे बढकर उसके हाथ से सूटकेस ले लिया और कहा—"चलिए।" उस नवयुवक ने इन्हे कुली समझा और आगे-आगे हो लिया। स्टेशन पर भी किसी ने कुछ ध्यान नही दिया और ये दोनो अपने रास्ते चले। नवयुवक ने घर पहुच कर अपना सूटकेस विद्यासार जी से ले लिया और चार पैसे देने लगा। विद्यासागर जी ने पैसे लेने से इन्कार किया और चुपचाप अपने घर की ओर चल दिये। वह नवयुवक बड़ा खुश हुआ और उसने समझा कि आज अच्छा बेवकूफ कुली मिला।

पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर अपने ग्राम में पधारे हैं, यह खबर बिजली की तरह इर्द-गिर्द के ग्रामो मे फैल गई और ग्राम के नेताओ ने आपके स्वागत का आयोजन किया। हज़ारो आदमी मण्डप मे एकत्र हुए और वह नवयुवक भी इस महापुरुष के दर्शनार्थ और वक्तृता सुनने के लिए सभा में पहुँचा। प्लेटफार्म पर जब उसने फूल-मालाओं से लदे हुए उस

कुली को बैठे हुए देखा तो वह अवाक् रह गया और आँखें मल-मल कर पहचानने लगा। जब उसे बिल्कुल निश्चय होगया कि जो कुली रेलवे स्टेशन से उसका सूटकेस उठाकर उसके घर पहुंचाने गया था, वही आज की सभा का आदरणीय अतिथि है, तो वह लज्जा के मारे मरने लगा। उसने व्याख्यान सुना और दूसरी कार्रवाई भी देखी, किन्तु उस पश्चात्ताप के कारण, उस ग्लानि ने उसे बेसुध-सा कर दिया। जब सभा समाप्त हुई तो वह डरता-डरता विद्यासागर जी के पास पहुँचा और उनके पांओं में सिर रखकर अपने अपराध की क्षमा माँगी। पण्डित जी ने उसे बडे प्रेम से उठाया और बोले—

"मजदूरी किसी मनुष्य को नीच नही बनाती। जो नवयुवक अपना काम स्वय करने की हिम्मत रखता है, जो अपना बोझा आप उठा सकता है, वह संसार-सग्राम मे बाधाओ पर विजय प्राप्त कर सकता है। सदा स्वावलम्बी बनो और जहाँ तक हो सके अपना काम स्वय करना सीखो।"

किसी कवि ने ठीक कहा है—

"उद्योगिनं पुरुषसिहमुपैति लक्ष्मीः।"

अर्थात् उद्योगी पुरुषसिह को ही लक्ष्मी प्राप्त होती है। हालाँकि ये मारवाड़ी, जिनमें कितने ही अनपढ है, अपना तार स्वय नही पढ सकते है, तिस पर भी इनकी हिम्मत देखिए। क्या अग्रेज़ी पढे-लिखे इस प्रकार धन नहीं कमा सकते ? कमा सकते है और मारवाड़ियो से बहुत अधिक कमा सकते है, अगर वे भी इन मारवाड़ियो जैसे उद्योगी बन जाये। आज इस उन्नति के जमाने मे अनपढ आदमी व्यवसाय कर ही कैसे सकता है ? जब तक हम योरुपीय व्यापारिक रहस्यो से परिचित न हो, बैंकिग पूरी तरह न समझे, न्यूयार्क, लन्दन की मण्डियो की पहचान न हो, पक्का माल तय्यार करने वाले कल-कारखानो का ज्ञान न हो, कच्चा माल पैदा करने वाले देशो की जानकारी न रक्खें, तब तक भला हम कैसे सफल व्यापारी हो सकते है ? इन विषयो का परिचय प्राप्त करने

में अंग्रेजी शिक्षित लोग मारवाडियों से अधिक साधनसम्पन्न हैं, परन्तु व्यापारी बनने की प्रारम्भिक शिक्षा के न होने से वे कुछ नही कर सकते। वे समझते है कि मारवाडियो के पास पूँजी है इसलिए वे अच्छे व्यापारी है, यह सरासर भूल है। व्यापार मे पूँजी की आवश्यकता है सही, पर इससे भी अधिक आवश्यकता मजदूरी से प्रेम, मितव्ययिता, ईमानदारी, मधुरभाषण, निरन्तर उत्साह आदि गुणो की है, जिनके बिना बड़ी-से-बडी पूँजीवाला भी व्यवसाय नही कर सकता। ससार के प्रसिद्ध धन-कुबेर स्वर्गीय जान डी० रौकफेलर के पास कोई पूँजी न थी; बेचारा साधारण मजदूरी किया करता था। अपने अध्यवसाय, परिश्रम, मित-व्ययिता और मधुर-भाषणादि गुणो से उसने धीरे-धीरे पूँजी बढाई। यही स्थिति कारनेगी और फोर्ड की भी जानिये।

इसलिए देश में धन की वृद्धि-हेतु हमें अपने बच्चों को ये सब बातें सिखलानी है। हमारे नवयुवक आज इन गुणो की ज़रा भी कदर नही जानते। बनारस मे एक बार कुछ नवयुवक मुझसे मिलने आए। एक नौजवान से मैने पूछा—"कहो भाई, क्या काम करते हो ?"

नवयुवक—"कुछ नही करता।"

मैने आश्चर्य से पूछा—"तो फिर खाते कहाँ से हो ?"

लड़का—"ससुर के घर में रहता हूँ।"

मुझे बड़ा शोक हुआ। ससुर के घर में रह कर पेट भरना, इसमें तनिक भी लज्जा उस नवयुवक को मालूम न हुई। वह मनुष्य जो निकम्मा बैठा रहता है और अपने हिस्से का पैदा नही करता, उसको खाने का क्या अधिकार है ? उससे तो चीटियां अच्छी है, जो उद्योग करके पेट तो भरती है। हमारे यहाँ सम्मिलित कुटुम्ब-प्रथा है। घर में एक पुरुष कमानेवाला है और बाकी बैठकर खाने वाले हैं। यह कहाँ का न्याय है ? घर के प्रत्येक नवयुवक को अपना-अपना बोझ स्वयं उठाना चाहिए। दूसरों की कमाई पर गुलछर्रे उड़ाना मनुष्यत्व नहीं हैं। स्वात्माभिमानी अपनी भुजाओं से पैदा करता है और खाता है।

यदि हम अपना बोझ आप नहीं उठा सकते, यदि हम मेहनत कर रुपया पैदा नही करना चाहते तो हमें चाहिए कि श्रीगंगाजी में डूब मरें ताकि हमारे इस स्वार्थी जीवन का अन्त हो जाए। भारत-जननी पर व्यर्थ का भार बढाना पाप है। हम यदि माता का बोझ हलका नही कर सकते तो उलटा बढाते क्यों है ? यहाँ के धनिको के लड़के पिता, पितामह के कमाये हुए धन पर चैन उडाते है। वे ईश्वर से प्रार्थना करते रहते है कि कब बुड्ढा बाप मरे और वे उसका माल स्वतन्त्रतापूर्वक उड़ावे। हमारा यह स्वभाव-सा होगया है कि हम अपने बुजुर्गों की कमाई पर लट्टू होना ही जानते है और आप स्वय कुछ करना नही चाहते। इस पुरानी बीमारी का अब इलाज करना है और हमे स्वयं अपने पावो पर खड़ा होना सीखना है। यह तभी होगा जब हम हृदय से अपनी कमज़ोरी को अनुभव कर लें और उसके हानि-लाभ स्पष्ट तौर से जान जायें।

इस व्याधि का इलाज हमारे मौजूदा स्कूल, कालेज और विश्व-विद्यालय नही कर सकते। हमे अब 'नौकर' घड़ने वाली इन फैक्टरियों की संख्या बिलकुल कम कर देनी चाहिए। नौकरियो के दिन गए, अब क्लर्कों की ज़रूरत नही है। देश को इस समय कला-कौशल सिखलाने वाले विद्यालयों की आवश्यकता है। प्रान्त-प्रान्त में कला-कौशल सम्बन्धी स्कूल (Technical-Schools), विश्वविद्यालय खोलकर विज्ञान और हुनर की वृद्धि करनी चाहिए। साहित्य, विज्ञान, इतिहास और भूगोल आदि विषयो को सिखलाने के लिए अपने ढग के कम खर्च वाले विद्यालय खोलने उचित है। उनमें मातृभाषा द्वारा सभी वैज्ञानिक और साहित्यसम्बन्धी विषयो की उच्च शिक्षा बहुत कम समय मे हो सकती है। हम लोग पैंतीस करोड से भी अधिक है। जिस समय सादा जीवन व्यतीत करने वाले हमारे मजदूर, कला-कौशल सम्पन्न होकर, स्वदेशी पक्का माल तैयार करेंगे तो ससार की सभी जातियाँ हमारे सुन्दर और सस्ते माल की कदर करेंगी और हमारे देश का बाहर गया हुआ धन फिर लौट कर आ सकेगा। हम बुद्धि और मस्तिष्क में किसी जाति

से कम नही। आज भी अपनी इस पतित अवस्था में हमारे विद्यार्थी योरुप और अमरीका के विश्वविद्यालयो में जाकर दूसरी सभ्य जातियों के विद्यार्थियों का मुकाबिला करते है और किसी बात में भी उनसे कम नही निकलते। हम में कमी यदि है तो यही कि हम अन्य जातियो की तरह साधन-सम्पन्न नही है। अतएव अब हमे देशकालानुसार अपने बच्चो को आर्थिक स्वतन्त्रता दिलाने वाली शिक्षा देनी चाहिये।

यह कार्य कैसे हो सकता है? यह कार्य देश के धनिक लोग कर सकते है। आज इस आपत्काल के समय देश के प्रत्येक धनी पुरुष को देश-सेवा पर कमर कसनी चाहिए। जैसे स्वनामधन्य महाराजा महेन्द्र-प्रताप जी ने अपनी जायदाद लगाकर श्री प्रेम महाविद्यालय की जड़ जमा दी थी, इसी प्रकार दूसरे धनिकों को करना चाहिए। अमरीका के धन-कुबेर कारनेगी ने करोड़ो रुपए लगाकर पिट्सबर्ग मे कला-भवन (Technical Institute) की बुनियाद डाली। उस कला-भवन से हज़ारो छात्र कला-कौशल सीखकर लाभ उठाते है। धीमान् बडौदानरेश ने भी अपने राज्य में कला-भवन खोलकर अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया था। स्थान-स्थान पर ऐसे ही छोटे-बड़े 'कला-भवन' खुलने चाहिए। जो-जो पक्का माल हम बाहर से मँगाते है, वह सब हम अपने यहाँ बनाना सीखे। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यो के लड़को को भी दस्तकारी के औजारो का प्रयोग बचपन से सीखना उचित है। उनमें मजदूरी से घृणा का जो भाव है, उसको दूर भगा दीजिए। मै तो एक भङ्गी को, जो ईमानदारी से समाज की सेवा करता है, उस मनुष्य की अपेक्षा लाख दरजे अच्छा समझता हूँ जो धूर्तता से दूसरो का माल ठग-ठग कर अपनी जेब भरता है।

क्या आप जानते है कि अमरीका के धनवान् होने का कारण क्या है? अमरीका में कोई आदमी मजदूरी से नफरत नही करता। सब मेह-नत-मजदूरी करने को तैयार रहते है। परिणाम यह है कि वे जहाँ जाते है, वही धन पैदा कर सकते है। हमारे यहाँ जिनके पास थोड़ा सा रुपया

हुआ, वे झट नौकरों के गुलाम बन जाते हैं। अमीर का लड़का है; वह स्कूल जाता है तो साथ एक नौकर उसका बस्ता उठाने वाला चाहिये। धनवान् होने का अभिप्राय यह समझा जाता है कि अपने हाथ से कोई काम ही न किया जाए। धीरे-धीरे यहाँ तक आदत बिगड़ती है कि चाहे प्यासे बैठे रहें, मगर उठकर पानी नही पी सकते। अपने हाथ से उठ कर पानी पीयें तो अमीरी को बट्टा लग जाये। ये नौकरों के भी नौकर है। इनको पता नही कि धन केवल धर्म करने के वास्ते है; धन निकम्मा बनने के लिए नही। इसका यह अभिप्राम नही कि नौकरों से काम ही न लिया जाए। नौकरो से काम लो, लेकिन उनके गुलाम मत बनो। जब नौकर है तो उससे काम लीजिये, यदि नही है तो झट से उठ कर स्वयं काम कर डालिए। अमरीका मे अमीरो के लड़के अपना कमरा साफ़ करना, किताबें झाड़-बुहार डालना आदि कार्य सब आप कर लेते है; उन्हे अपने ऊपर निर्भर रहने की शिक्षा दी जाती है। यही आर्थिक स्वतन्त्रता का मूल मन्त्र है।

शिक्षा के इस दूसरे ढग—आर्थिक स्वतन्त्रता—पर मैंने अधिक कहने की चेष्टा क्यो की है, इसका विशेष कारण है। उस देश की धार्मिक अवस्था सुधर नही सकती जिसकी आर्थिक अवस्था बिगड़ी हुई है। इस का धार्मिक अवस्था के साथ बहुत बड़ा सम्बन्ध है। भूख से आतुर भारत-वासी आज घृणित से घृणित नौकरिया इसीलिए कर रहे है कि उन्हें पेट भर अन्न मिलने का दूसरा उपाय दिखाई नही देता। बेचारे अपनी आत्मा की हत्या करके जीवन-निर्वाह करते है। इसलिए देश-भक्तो का मुख्य कर्तव्य यही है कि वे देश की आर्थिक स्वतन्त्रता की चिन्ता करे। मै उसी मनुष्य को बड़ा योगी, बड़ा सन्यासी मानता हूँ जो देश के बच्चो के लिए रोटी का प्रबन्ध करता है। जो रोटी के प्रश्न को हल करेगा, वही भारतसन्तान का सच्चा हितैषी होगा।

अपने इस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए देश के कुछ नवयुवको को प्रत्येक वर्ष विदेशों में भेजना पड़ेगा। वहाँ वे आधुनिक वैज्ञानिक ढंग की असली

शिक्षा प्राप्त कर स्वदेश में उसका प्रचार कर सकेंगे। समाज-शास्त्र, राजनीति, विज्ञान आदि विषयों की पूर्ण शिक्षा प्राप्त कर वे अपने यहां के विद्यालय मे उसकी शिक्षा दे सकेंगे। इस प्रकार आर्थिक स्वतन्त्रता के प्रत्येक साधन को जुटाने का उद्योग करना चाहिए। जिस प्रकार जापान ने सभ्य देशो के विश्वविद्यालयो से फायदा उठाया है, उसी प्रकार हम भी लाभ उठावे। साथ ही अपने देश के प्राकृतिक तथा भौगोलिक विषयो का ज्ञान भी हमारे लिए परम अवाश्यक है। इसके लिए भिन्न-भिन्न प्रान्तों मे, समय-समय पर जाकर सब बातो का परिचय प्राप्त करना चाहिए। कौन सी वस्तु कहाँ पैदा होती है ? किस धातु की खान कहाँ पर है ? किस प्रान्त मे अच्छी कृषि होती है ? कहाँ प्राकृतिक सुविधायें अधिक है ? कहाँ का जलवायु नीरोग है ? कहाँ तक लिखें, सैकड़ो बातें है, जिनका परिचय हमें भली प्रकार करना चाहिए। जब इस प्रकार काल्पनिक शिक्षा को छोड़ कर हम व्यावहारिक शिक्षा की ओर आयेगे, तभी हमें 'आर्थिक स्वतन्त्रता' मिल सकती है। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि भारत के स्वतन्त्र हो जाने पर हमारे देश मे विज्ञान, कलाकौशल और कृषि की उन्नति के लिए बहुत सी सस्थाए खुल गई है और हजारों विद्यार्थी विदेशो मे इनकी शिक्षा के लिए जाते है। जिस अभाव के कारण हम सभ्य ससार से बहुत पीछे रह गये थे उसकी पूर्त्ति हमारी सरकार बड़ी तत्परता से कर रही है।

शिक्षित मनुष्य के लिए आर्थिक-स्वतन्त्रता का होना परम अवाश्यक है, इसे मैने भली प्रकार समझा दिया है। अब मै शिक्षा के तीसरे गुण—मानसिक स्वतन्त्रता—की ओर आता हूँ।

मानसिक स्वतन्त्रता

मानव-शरीर मे मन का सबसे ऊँचा दर्जा है। इसी के कारण इस हाड-मांस के पुतले का नाम मनुष्य पड़ा है अर्थात् मननशील मशीन। शास्त्रो ने तो इसके विषय में यहाँ तक कह दिया है कि मनुष्यों के बंधन

और मोक्ष का यदि कोई सबसे बड़ा कारण है, तो वह मन ही है—"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।" इसे इतना महान पद क्यों प्राप्त हुआ ? इसीलिए, क्योंकि यह मनुष्य का बौद्धिक और तार्किक यंत्र है। इसी के द्वारा मनुष्य में समझने की शक्ति आती है, यही अध्यात्म-शक्तियो का केन्द्र है, इसी से आत्मा की पहचान की जाती है। मनुष्य में जो विचारधारा बहती है, जो वस्तुओ को धारण करने की योग्यता है, और जो उसमे भला-बुरा पहचानने का माद्दा है, वह सब मानसिक-शक्ति से ही प्राप्त होता है। इसलि शरीर की सारी चेष्टाओ का मूल मन को माना जाता है। तपस्वियो का कहना है—

"यन्मनसा ध्यायति, तद्वाचा वदति,
यद्वाचा वदति, तत्कर्मणा करोति,
यत्कर्मणा करोति, तदभिसंपद्यते।"

अर्थात जैसा पुरुष मन मे ध्यान करता है, उसी के अनुसार वह मुँह से बोलता है; जैसा वह मुँह से बोलता है, उसी के अनुसार वह कर्म करता है; और जैसा वह कर्म करता है, वैसा ही वह फल पाता है। इस से पता चलता है कि पूर्व और पश्चिम के विद्वान शरीर की चेष्टाओ का बादशाह मन को मानते है। मनुष्य के लाखो वर्षो का अनुभव भी यही कहता है कि 'मन के जीते जीत है और मन के हारे हार।' ऐसे जबर्दस्त शारीरिक साधन की स्वतन्त्रता के विषय मे अब हमें विचार करना है।

हम यह कह चुके है कि शिक्षा का सर्व-प्रथम गुण शारीरिक स्वतन्त्रता है अर्थात् नीरोग शरीर का होना। जब हमने अपने अधिकारों की रक्षा करने वाला बलिष्ठ शरीर पा लिया और आरोग्यता का रहस्य जान लिया, तो दूसरी बात हुई आर्थिक स्वतन्त्रता की। हम अपना स्वतन्त्र धन्धा करते है, किसी के मोहताज नहीं है, किसी के आज्ञाकारी नहीं है, हम अपना पेट पालने में स्वावलम्बी है, ऐसी अवस्था मे हमे ब्रह्मा से भी नही डरना चाहिए। लेकिन हमने ऐसे लाखों मनुष्यों को

देखा है कि जो उपरोक्त दो गुण रखते हुए भी पादरियो, मुल्लाओं और पण्डितों से भय खाते हैं—वे उनके सामने कठपुतली की तरह नाचते है। हमने ऐसे बेवकूफ़ों को भी देखा है कि जो आरोग्यता और स्वतन्त्र धन्धा रखते हुए भी गाँवों के ओझाओं के डर के मारे थर-थर काँपते है, उन्हें भूत-प्रेत का खौफ मारे डालता है, वे स्वयं सोचने की बुद्धि नही रखते। यहाँ तक ही नही, बल्कि बडे-बडे शिक्षित, विश्वविद्यालयों के डाक्टर और प्रोफेसर भी इल्हामी किताबो के सामने अपनी सब विद्या-बुद्धि को तिलाञ्जलि देकर नत-मस्तक हो जाते है और उनमें लिखी हुई विवेक-शून्य बातो को भी सच मानते है। ऐसी अवस्था मे मानसिक स्वतन्त्रता का विषय कितना महत्वपूर्ण है, यह बात निर्विवाद सिद्ध होजाती है। अच्छा तो मानसिक स्वतन्त्रता का अभिप्राय क्या है ? सुनिये।

जो मनुष्य अपनी विवेकिनी बुद्धि से सत्-असत् की पहचान करता है, भलाई-बुराई समझने में किसी आप्त वाक्य पर निर्भर नहीं है, जो प्रमाण के सहारे न चलकर—किसी ग्रन्थ के श्लोक, मन्त्र अथवा आयत पर आश्रित न रहकर—अपनी स्वतन्त्र बुद्धि से सम्मति निश्चित करता है, जो अपनी स्वतन्त्र विचारधारा से वस्तुओ का निरीक्षण कर परिणाम पर पहुँचने का अभ्यस्त है और जिसमे सत्य के प्रति परम निष्ठा, विद्वान् के प्रति परम श्रद्धा और देशकाल के अनुसार परिस्थितियो को समझकर अपने आपको ठीक चला लेने की स्वतन्त्र शक्ति है, वह पुरुष मानसिक स्वतन्त्रता के सद्गुणों से विभूषित माना जाता है। आज संसार में भेड़ों की संख्या अधिक है, जिन्हें चालाक गडिरये मनमाने ढंग से हाँक रहे है। कोई मजहब के नाम पर अपना शासन चलाता है और चेले मूड रहा है; कोई राजनीतिज्ञ बनकर देशहित की आड़ में लोगों को ठग रहा है; कोई समाजवाद की दुहाई देकर मजदूर और किसानों का परम शुभचिन्तक बनकर अपना उल्लू सीधा कर रहा है; कोई पुराने शास्त्रो के सहारे लाखों मनुष्यों को पशुओ की तरह अपने पीछे लगा रहा है—इस प्रकार संसार आज इस वैज्ञानिक युग में भी भेड़ों से भरा हुआ दिखाई देता है। ऐसे

बहुत थोड़े लोग है जिन्हें अपने स्वरूप का ज्ञान है, अपने व्यक्तित्व की पहचान है और जो यह जानते हैं कि उनके जीवन का कोई स्वतन्त्र मिशन है और वे प्रभु के इस विशाल ब्रह्माण्ड में अनन्त ज्ञान की ओर बढ़े चले जा रहे है। मन की गुलामी की वजह से ही हमारा विकास रुक जाता है और हम पंगु बनकर जहाँ के तहाँ खड़े रह जाते है। मानसिक स्वतन्त्रता चिन्ह है उन्नति का स्रोत है विकास का और खज़ाना है व्यक्तित्व का। जैसे कोई पौदा सूखने से पहले अपने नये पल्लव निकालना बन्द कर देता है, नई सुकुमार कोंपलें फूटनी बन्द हो जाती है, इसी प्रकार उस आत्मारूपी पौदे की वृद्धि रुक जाती है जब उसका स्वतन्त्र सोचने का यन्त्र निकम्मा हो जाता है। कोई व्यक्ति हृष्ट-पुष्ट हो, तन्दुरुस्त हो और पैसे वाला भी हो, लेकिन यदि वह स्वतन्त्र सोच नहीं सकता, तो उसे नीरोग पशु ही समझना चाहिए। इस कारण शिक्षा में मानसिक स्वतन्त्रता का बहुत ऊंचा स्थान है। हमे इस प्रकार की शिक्षा चाहिए जो हमे सोचने में स्वाधीन कर दे, प्राकृतिक पदार्थों का निरीक्षण करना सिखा दे, मानवी स्वभाव को समझना बतला दे और सब प्रकार की घटनाओ को तोलकर ठीक परिणाम पर पहुँचने की योग्यता पैदा करे। ऐसी शिक्षा ही हमारा पशुपन दूर कर हमें मनुष्यत्व की ओर ले जा सकती है। हमे जरूरत है सच्चरित्र, सहनशील और विनयी नागरिको की, जो न तो मजहब के बन्धनों से बँधे हों और न जातपात की जंजीरो से जकडे हुए हो—ऐसी शिक्षा ही मनुष्य को मानसिक स्वतन्त्रता दे सकती है और आत्मस्वरूप का दर्शन करा सकती है।

ऐसी शिक्षा कैसे मिले ? वैज्ञानिक ढंग की पद्धति द्वारा। आप अपने बच्चो के मस्तिष्क पर अध्यात्मवाद (Metaphysics) के गुरुतर प्रश्नो को न लादिये; ईश्वर, आत्मा और प्रकृति सम्बन्धी पहले से फर्ज किये हुए सिद्धान्तों को बच्चों के दिमागो में न ठूसिए; अन्धविश्वासी गुरु-पूजा, असम्भव बातो (Miracles) का जंगल और प्रमाणवाद का बोझा शिशुओं के कोमल कन्धो पर न रखिए। उन्हें इनकी आवश्यकता

नहीं और न समाज को ऐसे पचड़ों से कोई काम है। बच्चों को प्राकृतिक पदार्थों को दिखलाइये, उन्हें विज्ञान की बातें समझाइये, आँख, कान, नाक आदि का ठीक उपयोग करने की शिक्षा दीजिए, ताकि वे प्रकृति-माता के स्कूल में बैठकर उसके सच्चे विद्यार्थी बन सकें। हमें कट्टर हिन्दू, कट्टर मुसलमान, कट्टर सिक्ख, कट्टर ईसाई और कट्टर पारसी लड़के-लड़कियाँ दरकार नहीं जो हजारों वर्षों की पुरानी दकियानूसी बातों के लिए आपस में मजहबी झगड़े करें। हमें तो परस्पर सहानुभूति रखने वाले, नागरिकता के कर्तव्य से भली प्रकार परिचित, सेवा-धर्म से दीक्षित और समवेदना से भरे हुए हृदय वाले नर-नारियों की जरूरत है। हमारी पाठशालाओं में भगवान् बुद्ध और महात्मा गाँधी के व्यावहारिक धर्म की शिक्षा होनी चाहिए; पाश्चात्य देशों के विद्वानों की वैज्ञानिक पुस्तकें पढ़ाई जानी चाहिएँ; सब धर्मों के ग्रन्थों में से सुन्दर नैतिक उपदेश निकालकर बच्चों को उनकी उपयोगिता समझानी चाहिए और मज़दूरी की महत्ता की छाप उनके हृदय पर डालने के लिए किसी न किसी प्रकार की कला, दस्तकारी सिखलानी उचित है। अव्यावहारिक सिद्धान्ती शिक्षा विद्यार्थी को दिमागी ऐयाशी सिखलाती है और उसमें अहम्मन्यता भरती है।

याद रखिए, विभिन्नता उन्नति का मूल है। प्रकृति में विभिन्नता के होने से ही ऐसा सौन्दर्य और ऐसा लावण्य है। प्राचीन काल के आर्यों की संस्कृति विभिन्नतामूलक थी और वर्तमान काल के वैज्ञानिकों की शिक्षा-पद्धति भी इसी तत्व से ओतप्रोत है। ज्ञान के भिन्न-भिन्न विभाग आज प्रभु की अनन्त लीला का दिग्दर्शन करा रहे हैं और नये-नये आविष्कारों को सामने रख रहे हैं। हमें यह जान लेना चाहिए कि मानसिक स्वतन्त्रता विचारों की विभिन्नता उत्पन्न करेगी, इसलिए हमें अपने से भिन्न विचार रखने वाले भाई-बहिन का आदर करना होगा। हम एक दूसरे के साथ मानवीयता के सूत्र में पिरोये हुए हैं, साम्प्रदायिक बन्धनों से बँधे हुए नहीं। हमें तो जुदा-जुदा मत रखते हुए आपस की सहानुभूति पैदा

करनी है, क्योंकि इसी में हमारा कल्याण है। कोई-कोई भले लोग यह तर्क करते है कि मानसिक स्वतन्त्रता संगठन की विघातक है। वे मुसलमानों का उदाहरण देकर साम्प्रदायिक गुलामी की महत्ता दिखलाने की चेष्टा करते है और यह कहते है कि मानसिक स्वतन्त्रता की शिक्षा से ही हिन्दुओं का संगठन टूट गया है। हम ऐसे बन्धुओ से सविनय मतभेद रखते है। हमारा निवेदन यह है कि इन्ही साम्प्रदायिक मुसलमानों की फौजें संगठित अंग्रेजी फौजों के सामने ठहर नही सकती। मजहबी जोश का संगठन क्षणिक होता है, स्थायी नहीं। इसके विपरीत जागरूक आत्माओं का सगठन अत्यन्त सुदृढ होता है, उनकी दोस्ती चिरकाल तक रहती है, वे अव्यवस्थित मनुष्यो की तरह शीघ्र ठण्डे-गर्म नहीं होते। मजहबी जोश से अन्धे लोग फौरन मदान्ध हो जाते है और न करने योग्य कृत्यों को भी कर बैठते है। अतएव हमे पाशविक सगठन नही चाहिए, हमें तो जागरूक और चैतन्य नरनारियो के संगठन की आवश्यकता है। हमारे सामने इसका ज्वलन्त उदाहरण पाकिस्तान है, जहाँ अपने ही मत वालो को जरा सा मतभेद के होने के कारण काफिर बना दिया गया है।

संक्षेप में, शिक्षा के इस गुण के आये बिना कोई पुरुष और स्त्री पशुपन से निकल नही सकते। शारीरिक स्वतन्त्रता और पेट पालने की आजादी, मानसिक स्वतन्त्रता प्राप्ति के आवश्यक स्तम्भ है, इनके बिना दिमागी आजादी मिल नही सकते। इसी कारण हमने इनकी व्याख्या पहले की है। हमें विश्वास है कि शिक्षाप्रेमी सज्जन हमारे उद्देश्य को भली प्रकार समझ गए होंगे। अच्छी अंगेजी, संस्कृत, अरबी या फारसी जान लेने से कोई शिक्षित नही बन जाता। चारों वेद यदि गधे पर लाद दिये जायें तो गधा पण्डित नही कहला सकता। इसी प्रकार फोनोग्राफी शिक्षा, शिक्षा होने का दावा नही कर सकती। असली चीज तो अन्दर के भाव है, भाषायें तो केवल दासियाँ है जिनके द्वारा अन्दर के भावों का प्रकाश होता है। यदि कोई एम० ए० पास पुरुष या स्त्री अन्धविश्वास में फँसकर किसी गुरु को आत्म-समर्पण कर देते है, अपनी अक्ल को

ताला लगाकर, गुरु के पैरो का गन्दा पानी पी लेने में अपना मोक्ष सम-झते है, तो हम उनकी किताबी शिक्षा पर धिक्कार देंगे और स्पष्ट शब्दो में गुरुडम में फँसे हुए ऐसे विवेकहीन स्त्री-पुरुषो की, उनकी विश्व-विद्यालयो की डिग्रियाँ होने पर भी, गणना अशिक्षितो में ही करेंगे। मानसिक स्वतन्त्रता का मूल्य न जानने के कारण आज सैकड़ों मत-मतान्तर मानव-समाज को डस रहे है और पारस्परिक कलह फैला रहे है। मानसिक स्वतन्त्रता की कमी की वजह से ही मजहबी ढोंगों की बन आती है और धूर्त लोग आराम से जिन्दगी बसर करते है।

अतएव हम अपने प्रेमियो से सविनय अनुरोध करते है कि वे हर-गिज़-हरगिज़ भी किताबी शिक्षा से शिक्षितो की परख न करें, बल्कि सच्चरित्रता के सद्गुणों, मानसिक स्वतन्त्रता के अमूल्य रत्नों से ही शिक्षा की परख किया करें। हमे ससार को स्वर्गधाम बनाना है, मत-मतान्तरों का जंगल नही; व्यक्तियो के सद्गुणों का विकास करना है, गुरुडम द्वारा उनका उत्थान रोकना नही; हमें सत्यज्ञान की उत्तरोत्तर वृद्धि करनी है, पैगम्बरो की भर्ती कर ज्ञान का दरवाजा बन्द नही करना है। इसलिए हमने मानसिक स्वतन्त्रता की व्याख्या में थोड़ा-थोड़ा प्रकाश उन सब दुर्गुणो पर डाल दिया है जिनके कारण आज मनुष्य-समाज स्वार्थ के वशीभूत होकर ईर्ष्या-द्वेष की अग्नि में जल रहा है। जब हमें मानसिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो जायेगी, तब हम आत्मिक स्वतन्त्रता का दरवाजा खटखटायेगे और इस बात की खोज करेंगे कि इस हाड़-मांस के पुतले में अद्भुत चमत्कार करने वाला व्यक्ति कौन है। तब हम पिछली थोथी गप्पो पर विश्वास न कर अपनी स्वतन्त्र खोज इस विषय में करेगे। तभी इस विभाग में हम भी अपना ज्ञान-अंश दे सकेंगे।

आत्मिक स्वतन्त्रता

शरीर किस लिए पुष्ट किया जाए ? आत्मिक स्वतन्त्रता के लिए। आर्थिक स्वतन्त्रता की आवश्यकता क्यों है ? आत्मिक स्वतन्त्रता हेतु।

मानसिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने से क्या मिलेगा ? उत्तर वही है—आत्मिक स्वतन्त्रता। यही हम सब का लक्ष्य है, यही भारतीय संस्कृति का उद्देश्य है।

आप पूछेंगे कि वह आत्मिक स्वतन्त्रता क्या है ? उसके गुण क्या है ? उसकी व्याख्या होनी चाहिए। यही अब हम करने की चेष्टा करेंगे; क्योंकि मस्तिष्क का विकास, बुद्धि की कुशाग्रता, शरीर का बल, धन की शक्ति सभी तुच्छ है, यदि हमने आत्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त नही की। आत्मिक स्वतन्त्रता के प्रकाश के बिना सभी अन्धेरे में है। क्या आज इस देश में बड़े-बडे लम्बे-चौड़े पञ्जाबी सिक्खो की कमी है ? क्या वे बलिष्ठ नही है ? क्या आज भारत में दानी नही है ? क्या आज हमारे मे ऊँचे मस्तिष्क वाले बाबू नही है ? क्या आज बाल की खाल उतारने वाले पण्डितो का हम में अभाव है ? ये सब है, पर उस ढग के नही जिनकी व्याख्या हमने अपने इस व्याख्यान में की है। यदि उस ढग के होते तो आत्मिक स्वतन्त्रता का बहुत सा प्रश्न हल होगया होता। इसीलिए हमने उन साधनो की व्याख्या और शिक्षा के आदर्श की पूर्त्ति करने वाले अङ्गो की मीमांसा पहले कर दी है, ताकि रास्ता साफ हो जाये और लक्ष्य के आगे जो रुकावटे है वे दूर कर दी जाएँ। जब भूमि साफ़ होगई, बाधाओ को हटा दिया गया, सब सामग्री जुट गई, तब परिणाम पर पहुँचने में कुछ कठिनाई न होगी।

वह आत्मिक स्वतन्त्रता क्या है ? मनुष्य जो ससार मे आया है उसका उद्देश्य खाना-पीना, धन इकट्ठा करना, अच्छे-अच्छे आविष्कार कर लेना—यही नही है, क्योंकि आखिर इन सब वस्तुओ का कुछ परिणाम भी तो होना चाहिए। मनुष्य ससार मे अपने आपको जानने तथा अपने स्वरूप को पहचानने के लिए आया है। अज्ञानवश वह समझता है—"मै कुछ नही हूँ; मुझसे कुछ नही हो सकता; मेरे मे कुछ भी शक्ति नही है।" वह अपने स्वरूप को पहचान नहीं सकता। पहचाने कैसे ? जिस शरीर में उसका निवास है, जिस कमरे में

वह रहता है, उसकी दीवारों पर 'दासता' के लाखों भद्दे चित्र खिचे हुए हैं। यह नियम है कि अपना मुँह खुर्दरी, छेदो से भरी हुई तथा ऊँचे नीचे तल वाली वस्तु में दिखाई नही देता। जरूरत है कि उस खुर्दरेपन को दूर किया जाये, छेद भरे जायें और ऊँच-नीच दूर कर दीवारों को समतल बनाया जाए। जब तक यह कमी दूर नहीं की जायेगी, तब तक हमे अपना स्वरूप दिखाई नही देगा। शरीर एक साधन है, जो इन्द्रियों द्वारा वाह्य जगत् से संस्कारों को ग्रहण करता है। वही अच्छे बुरे संस्कार उसको बना दें या बिगाड़ दें। जिस समय हम यह कहते है कि अमुक पुरुष महान् आत्मा रखता है, या अमुक पुरुष मे बड़ा आत्मिक बल है, तो इसका तात्पर्य यह है कि वह पुरुष अपने स्वरूप को पहचानने लग गया है। आत्मा वढ-घट नहीं सकता, वह तो एक-सा रहता है; केवल भेद इतना हो जाता है कि महान् आत्मा वाला पुरुष अपने शरीर रूपी कमरे की दीवारों में अपना मुँह देखने लग जाता है; उसने उन भेदो, उन छिद्रों तथा उस खुर्दरेपन को कुछ-न-कुछ दूर कर दिया है; इसीलिए वह दूसरे साधारण मनुष्यों से भिन्न हो जाता है। उसे अपने अस्तित्व का पता लग जाता है और जिस पवित्र स्रोत से उसका सम्बन्ध है, उसका कुछ न कुछ ज्ञान उसे हो जाता है। जितना अधिक जिस आत्मा के शरीर रूपी कमरे की दीवारें साफ-सुथरी होती जाती है, उतना ही अधिक उसका आत्मिक बल बढ़ता जाता है; जैसे-जैसे कुसस्कारो से वे दीवारें भोंडी होती जाती है, वैसे ही वह अपने को भूल कर घृणित चेष्टायें और कुकर्म करने लग जाता है। इसलिए आत्मिक स्वतन्त्रता का पहला लक्षण अपने स्वरूप को पहचानना है। 'मैं' जो इस शरीर मे बोल रहा हूँ वह शरीर नही, वल्कि शरीर से भिन्न जीती-जागती, अजर, नित्य और शाश्वत शक्ति है। उस शक्ति—उस आत्मा—को न आग जला सकती है, न तलवार काट सकती है, न बन्दूक की गोली मार सकती है। उस आत्मा का सम्बन्ध अमृत के स्रोत परमात्मा से है, जो सारे ब्रह्माण्ड पर अखण्ड राज्य करता है। इसलिए आत्मा 'अमृत' है। यह ज्ञान, यह जागृति और इस

आत्मिक सत्ता का ज्ञान ही हमारी शिक्षा का आदर्श है। मैं शरीर से भिन्न, लेकिन शरीररूपी साधन द्वारा, अपने पिता परमात्मा का न्याय-शील राज्य स्थापित करने के लिए आया हूँ। मुझे उस प्रभु ने अपना सिपाही बना कर इस ससार में फैले हुए प्रकृतिवाद के दोषो को दूर करने के लिए भेजा है। मैं कमजोर नही हूँ, मैं दुर्बल नही हूँ, मैं किसी का 'ताबेदार गुलाम' नही हूँ। मै आत्मा हूँ आत्मा ! वह आत्मा जिसमे असीम बल है, जो असम्भव को सम्भव कर सकता है, जिसमें पहाड को उड़ा देने की शक्ति है, जो अग्नि, जल तथा वायु, सबको वश में कर सकता है।

इसी आत्मा का ज्ञान आत्मिक स्वतन्त्रता की कुञ्जी है। शरीर आपका पुष्ट है, खाने कमाने की शक्ति आप में है, बुद्धिबल भी है, इतना पाकर अपने स्वरूप आत्मा को पहचानिए। क्या आपको कोई डरा सकता है ? डराता किसको है, आपको ? डर उसमे रह नही सकता जो अपने आपको 'आत्मा' समझता है। शरीर टूट-फूट सकता है, बिगड सकता है; मगर आत्मा ? न किसी से टूटे, न बिगड़ सके। फिर डर किसका ? यदि हमें ईश्वरीय आज्ञापालन करने में कोई डर दिखाये, तो डर दिखाने वाले की यह अपनी बेवकूफी है; वह केवल अपनी भीरुता का परिचय देता है।

अतएव प्रत्येक बालक-बालिका को, प्रत्येक स्त्री-पुरुष को इस पवित्र मन्त्र की दीक्षा देनी चाहिए। यह स्वतन्त्रता का मूल मन्त्र है। इसी का भगवान कृष्णचन्द्र जी ने अपनी गीता मे उपदेश दिया है—

न जायते म्रियते वा कदाचित्,
नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो,
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

फिर आगे कहते है—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय,
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ।।

आर्य्य-सन्तान, सुना आपने ? ऐसा स्पष्ट, ऐसा सुन्दर, ऐसा निर्मल उपदेश आत्मिक स्वतन्त्रता का आपको कहाँ से मिलेगा ! भगवन् कहते हैं—

"यह आत्मा न उत्पन्न होता है, न यह मरता है, न यह कभी हुआ और न इसका अन्त हुआ । यह जन्म नही लेता, यह नित्य है, सदा रहने वाला है, सदा एकरस है; इसलिए जब किसी का शरीर कट जाता है तो आत्मा वैसे का वैसा रहता है, यह नही मारा जाता ।"

"जैसे हम पुराने कपड़े उतार कर नए कपड़े पहन लेते हैं, ऐसे ही आत्मा पुराने शरीर को उतार नया शरीर धारण कर लेता है ।"

आहा ! क्या सुन्दर उपदेश है ! क्या इस उपदेश को धारण करके भी कोई भीरु रह सकता है ? कदापि नही । सब प्रकार के भय, सब तरह की कठिनाइयाँ उसी समय हवा हो जाती है जिस समय इस उपदेश को हम अपने हृदय पर लिख लेते हैं । यह उपदेश सब प्रकार के बन्धनों को काट देता है। यह अन्याय को जड़ से उखाड़ने वाला है, यह असीम आशा, मधुर आनन्द का रस पान कराता है । यह मुर्दों में जान डाल सकता है, यह कायरो को वीर बनाने वाला है ।

यदि शिक्षा पाकर भी हम भीरु ही रहे, यदि शिक्षा ने हमारी कायरता भी दूर न की, यदि शिक्षित होकर भी हम—"हाँ हुजूर, फिदवी आपका गुलाम है, ख़ाकसार है"—आदि दीनता के वचनों से पेट पालते रहे, तो हमारी शिक्षा किसी काम की नही । हमें मनुष्य बनना है और हमें अपने अधिकारों की प्राप्ति करनी है । प्राचीन आर्य्य-मातायें अपने बच्चो को—

"शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि"

के मन्त्र सुनाकर प्यार किया करती थी। इसीलिए उनकी सन्तान "दीनता,

पलायन, आधीनता" इन दुर्गुणो से अपरिचित थी। वे आर्य्य-वीर मृत्यु के साथ कुश्ती करने के लिए सदा उद्यत रहते थे और 'न्याय' तथा 'ईश्वरीय राज्य-स्थापना' हित सिर देना अपना अहोभाग्य समझते थे।

अतएव मेरे प्यारे बन्धुओ, आत्मिक-स्वतन्त्रता के प्रथम गुण—आत्मा का स्वरूप—को भली प्रकार समझलीजिए। अपने आपको शरीर से अलग अजर, अमर और अविनाशी जानिए। अपने सब तरह के डर निकाल डालिए और अपने आपको ईश्वर-पुत्र समझकर प्रभु का पवित्र झण्डा उठाइये। वह झण्डा उठाने से आपको अपने स्वरूप का ज्ञान हो जायगा और संसार मे प्रत्येक शरीर के अन्दर आपको अपने जैसी आत्मा दिखाई देगी। आपको पता लगेगा कि हम सब एक ही पिता के पुत्र हैं और हमारा परस्पर एक दूसरे के साथ द्वेष करना वृथा है। संसार एक सुन्दर उद्यान है, उसमें हम सबके लिए काफ़ी फल लग सकते है, यदि हम न्यायपूर्वक उनका भोग करना सीखे। मनुष्यो के स्वभावो में जो विभिन्नता है वह उनकी आत्माओ के कारण नही, बल्कि भिन्न-भिन्न संस्कारों से युक्त शरीरो का परिणाम है। द्वेषभाव त्याग कर ससार में शान्ति की स्थापना करनी चाहिए। भला जो व्यक्ति अपने जैसे आत्मा को दूसरों मे देखेगा, वह किसी से द्वेष कैसे कर सकता है ? कदापि नही। जब अपना स्वरूप पहचान लेने से प्रकृति के यथार्थ गुणों का ज्ञान हो जायगा, तो ये झूठे सांसारिक मद भी धीरे-धीरे कम होते जाएँगे। अपने सामने संसार में देखो क्या हो रहा है ? किस प्रकार मनुष्य मनुष्य का शत्रु बना हुआ है और एक जाति दूसरी जाति को नीचे गिराने में कूटनीति के कैसे-कैसे गर्हित उपायो का अवलम्बन करती है ! जिसे सभ्य जातियाँ राजनीति (Diplomacy) कहती हैं, वह सचमुच वंचकता की खान है। हा ! इस अधम स्वार्थ के लिए कैसे-कैसे पाप किए जाते है, मनुष्य अपने भाई मनुष्य के साथ कैसी दगा करता है, हिंसक पशु की तरह उस पर कैसे बलात्कार करता है, कैसी-कैसी कुटिल चालें चलकर वह इसे अपने जाल में फँसाता है—ऐसे भयंकर उदाहरण आज नित्य-

प्रति हमारी अदालतों में देखे जाते है और पुलिस की डायरियां ऐसे भीषण कुकर्मों से भरी हुई मिलती है।

मनुष्य ऐसे घोर कुकर्म क्यो करता है ? इसीलिए, क्योकि वह पशु है। उसकी हजारो वर्षों की आदतें उसके अन्दर विद्यमान है। उसका शरीर आदमी का अवश्य है, किन्तु उसके अन्दर के संस्कार पशुपन से आतप्रोत है। इसी पशुपन को दूर करने के लिए ही तो शिक्षा की आवश्यकता है। आज लाखो वर्षो के अनुभव के बाद हमे अपने पशुपन का ज्ञान होने लगा है। आज हम सोचने लगे है अपने इन अधोगति के कारणो को। विज्ञान ने हमें एक दूसरे के निकट लाकर खड़ा कर दिया है, फासला मिटा दिया है, देशो का भेदभाव हटा दिया है। आज हम सचमुच विश्व-बन्धुता का अर्थ समझ सकते है, यदि हम अपने स्वरूप को पहचानने लग जाएँ। हमे ईश्वर की व्यापकता का अर्थ भी आज समझ आ सकता है, क्योकि आज हम शब्द की सूक्ष्म कम्पनाओ को हजारों मील दूर भेज सकते है।

जब भगवान् बुद्ध के हृदय मे ज्ञान की जिज्ञासा उत्पन्न हुई थी, तो उन्हें पहले अपने स्वरूप को जानने की आवश्यकता पड़ी। वर्षों की तपस्या ने उनके मस्तिष्क में सत्यज्ञान का प्रकाश किया। वे पण्डितो के जाल से निकले, उन्होने आत्मिक स्वतन्त्रता पाई, तभी तो उन्हें बुद्धत्व का पद मिला। जब तक हम दूसरो पर अवलम्बित है, जब तक हममे स्वतन्त्र व्यक्तित्व का विकास नही होता, जब तक हम शरीर से भिन्न स्वतन्त्र चेतनशक्ति को पहचानने नही लग जाते, तब तक हममें सात्विक जागृति आ नही सकती। इसी सत्य-सिद्धान्त को समझ कर महात्मा बुद्धदेव जी ने राजपाट को छोड़ कर अक्षय कीर्ति लाभ की और ससार को जीत लिया। इसी बल से हजरत ईसामसीह चक्रवर्ती राजाओ के सिर-ताज बने। इसी ज्योति के प्रकाश से हजरत मुहम्मद साहब ने अरब के रेगिस्तान मे रहने वाले जगलियो को खुदापरस्त बना दिया।

यद्यपि हम पैगम्बरवाद और मसीहावाद को नही मानते और हमारी

यह धारणा है कि इस प्रचार का दावा करने वाले संसार की ज्ञानवृद्धि में अत्यन्त बाधक होते है, परन्तु एक बात बिलकुल स्पष्ट है कि जो पुरुष अपनी शक्तियों को पहचान कर किसी भीष्म व्रत को ले लेता है, तो सफलता उसकी दासी बन जाती है। भगवान् रामचन्द्र, भगवान् कृष्ण, भगवान् बुद्ध, हजरत ईसामसीह और पैगम्बर मुहम्मद साहब ने अपने-अपने आदर्श के लिए अपने समय में काफी बलिदान किया था; यही कारण हुआ कि उन्होने अपने उद्देश्य को पा लिया। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने स्वरूप को पहचाने, अपनी शक्तियो को जाने और ससार के साथ चार आँखे करना सीखे। शिक्षित मनुष्य वही नही कि जो स्वतन्त्र विचार करना जानता हो अथवा जो agnostic, free thinker या नास्तिक हो। मानसिक स्वतन्त्रता प्राप्ति के यह अर्थ नही है कि हम अपने सात्विक गुणो को खो दें, झूठे तार्किक हो जायें, अध्यात्मवाद की खिल्ली उडायें या अपने से भिन्न मत रखने वाले लोगो के धार्मिक भावो का अनादर करे। आजकल मूर्खतावश स्वतन्त्र विचार करने के अर्थ ऐसे ही समझे जाते है। ऐसे अज्ञानी लोग मानसिक स्वतन्त्रता नही रखते, बल्कि स्वच्छन्द बन जाते है और उस स्वच्छन्दता को ही ऊँचे दर्जे की आजादी समझते है।

इसी हेतु आत्मिक स्वतन्त्रता के साथ मानसिक स्वतन्त्रता का गहरा सम्बन्ध है। जैसा हम पहले बतला चुके है, ज्ञान प्राप्ति के लिए सत्य-निष्ठा, श्रद्धा और विवेक का होना अत्यावश्यक है। जब इस ढङ्ग से मानसिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति की जाए, तो वह ससार की विभिन्नता में एकता स्थापित करने की योग्यता को पकडने की शक्ति ग्रहण करती है। सब वस्तुओ मे आत्मिक ज्योति की झलक दिखलाई देने लगती है और व्यक्ति धीरे-धीरे सहानुभूति और समवेदना से भर जाता है। हमारा लक्ष्य है पशुपन का त्याग और मनुष्यत्व की प्राप्ति। आत्मिक स्वतन्त्रता का अर्थ यह है कि हम अपने में उन विकारो को स्पष्ट देखने लग जाये जो हमारे मनुष्यत्व के शत्रु है। शरीर और आत्मा में जो भेद है, शरीर

में पहुँचाना चाहिए। हममें से जितने भी पढे-लिखे लोग है, उन्हें देश में साक्षरता लाने का शीघ्र प्रयत्न करना चाहिए, ताकि हमारे लोग पेड़ों के नीचे बैठकर अपने बच्चों को पढा सकें और राष्ट्रीय साहित्य की कथा करें। एक-एक व्यक्ति यदि एक-एक गाँव मे बैठ जाय तो हम थोड़े ही काल में इस देश को साक्षर बना सकते है। काम बहुत है, केवल करने वाले चाहिएँ। जब हम शुद्ध अन्तःकरण से अपने देश की सेवा में लग जायँगे तो हमारे श्रेष्ठतम उदाहरणो से जनसाधारण के चरित्र मे महान् परिवर्तन होगा। हमे अब निर्भय होकर सब बाते स्पष्ट कहनी सीखनी चाहिएँ। सैकडो वर्षो का कूड़ा-कचरा हमे साफ करना है। बड़े धैर्य और अध्यवसाय से यदि हम काम पर लग जायँगे तो ईश्वरीय कृपा से हमे पूरी सफलता होगी। राक्षसी साम्प्रदायिकता के कारण हमारे बहुत से काम बिगड़े हुए है। बुद्धिवाद ही इसकी हत्या कर सकता है। अनपढ मुसलमान बन्धुओ में जो धर्मान्धता फैली हुई है उसे बुद्धिवाद ही दूर करेगा। पुराने ढर्रे के हिन्दुओ मे जो अस्पृश्यता और सामाजिक कुरीतियो की बीमारिया है, उन्हें भी बुद्धिवाद ही भगायेगा।

अतएव बुद्धिवाद का सहारा लेकर, इसे साम्प्रदायिकता का रूप न देकर, इसके स्वाभाविक गुणो के सहारे, सहानुभूतिपूर्ण हृदय से हमे आज शिक्षा के आदर्श की सिद्धि करनी चाहिये। शारीरिक, आर्थिक, मानसिक और आत्मिक स्वतन्त्रता के अर्थ भली प्रकार समझकर अपनी-अपनी पाठशालाओ और स्कूलो मे शिक्षा-योजना बनानी उचित है। ग्रन्थ चाहे किसी ग्रन्थकार के पढिये, विद्याशाला का नाम चाहे कुछ रखिए, लेकिन ध्येय बिलकुल स्पष्ट रहना चाहिये। उपरोक्त चार प्रकार की स्वतन्त्रताओ को सिद्ध करने वाली योजना आपका यह लोक और परलोक सुधार सकेगी और आपके देश को सच्ची स्वाधीनता प्रदान करेगी। प्रभु से हमारी यही प्रार्थना है कि हम स्वतन्त्रता की कीमत समझें और सदा उसके लिए बलिदान करने को तैयार रहें।

पच्चीसवाँ पुष्प

जीवित जाति के चिन्ह

जातियो का उत्थान और पतन महान् प्राकृतिक नियमो पर अवलम्बित है। निरन्तर बहने वाली नदी जब अपने स्रोत से जल नही पाती तो धीरे-धीरे उसकी धारा सूखने लगती है। वे फूल जो उत्तरी अमरीका के ठडे देशो मे मिलते है, उष्णदेशो का जल-वायु पाकर अपना जीवनान्त कर देते है, लेकिन यदि उन्हे किसी गर्म देश के किसी फूल का पराग चटा दिया जाए तो वे अपना स्वभाव बदल कर शीत और उष्ण दोनो प्रकार के जल-वायु को सहन करने लग जाते है। घुमक्कड जिरगे, जब शीत-प्रधान देशो मे जीवन-निर्वाहार्थ गर्म देशो मे जाते है, तो उन्हे अपने स्वभाव के विरुद्ध बहुत-सी नई बाते पकडनी पडती है, ताकि इर्द-गिर्द की विरोधी परिस्थितिया उनका अन्त न कर दे। शताब्दियो तक जिन्हे मांस खाने की आदत होती है, वे भी विरोधी जल-वायु पाकर शाकाहारी बन जाते है। इतना ही नही, प्रत्येक ऋतु मनुष्य पर अपना प्रभाव डालती है और उसे मजबूर करती है कि वह उसकी आज्ञानुसार अपनी जीवन-चर्या मे परिवर्तन करे।

जो प्रकृति के नियमों के विरुद्ध समय को न समझ कर, काल की गति को न परख कर और परिस्थितियो के प्रभाव की अवहेलना कर जीना चाहता है, प्रकृति उसे पीस डालती है और उसकी जीवन-गति बन्द हो जाती है। जीवित जाति वही है जिसमे काल की गति को समझने की शक्ति है, जो नवीन परिस्थितियो के अनुसार अपने आपको व्यवस्थित कर सकती है और मशीन के पुर्जे की तरह ठीक अपना स्थान बना लेती है। अपने गुण और दोष पहचानने के लिए नवीन परिस्थितिया बिजली के लैम्प का काम देती है। समाज को उस समय पता लगता है

कि उसके अन्दर कौन-कौन से ऐसे गुण है जो उसे आगे बढने मे मदद दे सकते है और कौन से ऐसे दोष है जो उसे घुन की तरह चाट रहे है। आत्म-निरीक्षण के लिए नवीन परिस्थितिया जादू का सा प्रभाव डालती है। हिन्दुओ की यही बीमारी है कि वे देश और काल के अनुसार अपने आपको बना नही सकते। इसीलिए उनका ह्रास अवश्यभावी है। परिस्थितियो का प्रचण्ड प्रभाव व्यक्ति और राष्ट्र के जीवन मे महान् परिवर्तन कर देता है। वह नये सिद्धान्त घडता है और पुरानी दकियानूसी रूढियो को उखाड कर फेक देता है। जो पुरानी रूढियो को नही छोडना चाहते, समय के अनुसार अपने आपको नही बनाते, ताज़गी उनसे दूर भाग जाती है और सडाद उनके चारो ओर पैदा हो जाती है। हम हैरान होते है कि हिन्दुओ के पास ऊँचे दर्जे की अध्यात्म-फिलासोफी, श्रीमद्भवद्गीता का सुन्दर कर्मयोग और उपनिषदो की दिव्य ब्रह्मधारा होते हुए भी फिर उनके जीवन मे ऐसी दुर्गन्ध क्यो है? इसका उत्तर स्पष्ट है।

हिन्दू समय को नही समझते, काल की गति को नही निरखते और परिस्थितियो के प्रभाव का अनादर करते है। इसीलिए उनके सामाजिक जीवन तथा नागरिक व्यवस्था मे इतनी बदबू उठ रही है। हजारो वर्ष की पुरानी आदते वे छोडना नही चाहते, नई समस्याओ के प्रति वे आखे बन्द कर लेते है और मूर्खतावश पुराने गीत गाकर शेखचिल्लियो की तरह ख्याली पुलाव पकाते रहते है; इसी कारण वे आज पराजित अवस्था मे है और उनके मस्तिष्क मे पराजय घर कर गई है।

क्या करें ?

तो करना क्या चाहिये ? वही जो प्रकृति हमे सिखाती है। हम ऋतुओं के अनुसार कपडा बदलते है, मौसमी फल खाकर अपने शरीर का रक्त निर्दोष बनाते है और परिस्थिति समझ कर उपचार करते है। इसी प्रकार हमे अपने मे परिस्थिति के अनुकूल बनाने (Adaptability)

का गुण लाना होगा और वर्तमान काल के विरोधी वातावरण के मुकाबले की तैयारी करनी होगी। तभी हम जीवित जातियो मे अपना नाम लिखा सकेंगे। एक बार जीवन पाकर मनुष्य मे निरन्तर जीने की इच्छा बनी रहती है। अपनी मर्जी से कोई मरना नही चाहता। हिन्दू भी ससार मे जीने की इच्छा रखते है, लेकिन मिमक-मिमक कर जीना घृणास्पद है। मान और गौरव के साथ जीने के लिए सर्वश्रेष्ठ मार्ग यही है कि हम परिस्थितियों को भली प्रकार समझने की चेष्टा करे और अपनी झूठी शेखी छोडकर पिछली भूले सुधार लें, नई आदते पैदा करें, ताकि हम समय के साथ चलने योग्य बन सके। जीने की इच्छा एक ऐसा अकुश है कि जो व्यक्तियों और राष्ट्रो को आगे बढने मे बराबर मदद देता है। जो प्रारब्ध के मायाजाल मे फँस जाते है, उन्हे असाध्य बीमारी लग जाती है, अतएव प्रारब्ध का गला घोटकर पुरुषार्थ को अपने हृदय-मन्दिर मे बिठाना चाहिये। जब जातियो मे झूठे वैराग्य के सस्कार फैल जाते है, अथवा "खाओ, पीओ और मजा मारो" का वाममार्ग अपना असर डाल देता है, तो जातिया शीघ्र ही नष्ट होने लगती है। जीने की इच्छा अत्यन्त प्रबल हो, लेकिन मान और गौरव के साथ, तब आगे बढने का पथ आसानी से मिल जाता है। राजस्थान की वीर गाथाओ के बहादुरो ने बहादुरी से मरना तो सीखा था, किन्तु काल की गति को समझकर कैसे सम्मान के साथ जिया जाता है, इस तथ्य को वे न समझ सके थे, क्योकि उन्होने परिस्थितियो के अनुकूल अपने आपको नही बनाया था। सिक्खो और मरहटो ने नवीन परिस्थिति को समझकर उसके अनुकूल साधन उत्पन्न किये, तभी वे विजेता बन सके, परन्तु आगे चलकर वे फिर गुरुडम मे डूब गये और उन्होने परिस्थितियो का अध्ययन करना छोड दिया। परिणामस्वरूप उन्हें अंग्रेजो के हाथो पराजित होना पडा।

आइये, अपने पिछले इतिहास से शिक्षा ग्रहण करे। राजपूतो की भूलों को न दुहराये और न विजेता सिक्खो और मरहठों के पतन की

रोमाचकारी कथाओ को ही भूल जाये । वे आज हमे पुकार-पुकार कर कह रही है—

"यदि तुम बीसवीं शताब्दी की नवीन परिस्थितियों के अनुसार अपने आपको नही बनाओगे, तो विज्ञान की भयकर शक्ति तुम्हारा अस्तित्व मिटा देगी ।"

अतएव हमारा कर्तव्य यह है कि हम मुर्दा जातियो की कतार से निकल कर जीवित जातियो के मध्य मे खडे हो जाये । महासमर के बाद जर्मनी निराशाओ और झूठे वैराग्य मे डूब गया था, मगर वीरप्रवर हिटलर ने डूबते हुए जर्मनी को उबार लिया, उसे समय के अनुसार अस्त्र-शस्त्रो से सुसज्जित कर दिया । जो विचारधाराये जर्मनी के विवेक पर मिट्टी डाल रही थी, उन्हे उसने सुखा दिया और जो सोसाइटियाँ जर्मन नवयुवको को स्वच्छन्दता और उच्छृङ्खलता की ओर ले जा रही थी, उनका उसने गला घोट दिया । जो पापात्मा कानून के शिकजे से बचकर अपना उल्लू सीधा कर रहे थे, नाजियो ने उन्हे चुपके से मौत के घाट उतार दिया । इस प्रकार इस वीर ने जर्मनी का कूडा-कचरा साफ कर, उसकी दुर्गन्ध को मिटा, उसे आशा की गगा मे नहला दिया । इसी वजह से आज जर्मनी फिर अपने पुराने गौरव को पाने लगा है । जीवित जाति का यही लक्षण है । लेकिन वही वीरकेसरी हिटलर यदि दूसरे योरुपीय-महासमर मे रूस के यूक्रेन प्रान्त मे जाकर आगे न बढता और अपने विश्वासी सेवक हेस (Hess) को चर्चिल के पास न भेजता, तो जर्मनी को उस प्रलयकारी युद्ध मे घोर पराजय का मुख न देखना पडता । घमण्ड के आवेश मे उठाया हुआ एक गलत पग राष्ट्रो का सर्वनाश कर देता है । मुर्दा जाति सिद्धान्तो की माप-तोल मे लगी रहती है । पुराने दकियानूसी सिद्धान्तो की बदबू उसे ऐसी प्यारी लगने लगती है कि वह उसी में अपना कल्याण मानती है । जीवित जाति नये सिद्धान्त, नए शास्त्र और नई स्मृतियो की रचना करती है, ताकि उसके बच्चे नवीन हालात

का मुकाबिला कर सके और गौरव के साथ फूले आर फले । यदि हिन्दू इस वर्तमान युग मे सिद्धान्तो की भूल-भुलैयाँ मे रहेगे, पुरानी रूढियो का मोह नही छोडेगे और व्यावहारिक धर्म को अपने जीवन मे धारण नही करेगे तो परिस्थितियाँ निश्चय ही उन्हे पीस डालेगी ।

अतएव सभी चिन्तनशील लोगो का यह कर्त्तव्य है कि वे बहुत शीघ्र जनता मे नीरोग नवीन विचारो का प्रचार करे, जीवनप्रद गीतो की रचना करे, धर्म-सम्बन्धी पुराने हानिकारक विचारो को नष्ट करे और अपने इर्द-गिर्द की हालत का अध्ययन कर इस बात के समझने की भरपूर चेष्टा करे कि वर्त्तमान समय उनसे क्या परिवर्त्तन माँगता है, क्या तपस्या चाहता है, क्या नवीनता लाने की आज्ञा देता है । यदि हम समय को समझकर जीवन के वर्तमान सग्राम के अनुसार साधन जुटा लेगे तो ससार की कोई शक्ति हमे मार नही सकेगी । तभी हमारा नाम जीवित जातियो की सूची मे लिखा जायगा ।

छब्बीसवाँ पुष्प

क़ौमें कैसे उठा करती हैं

पंचपुरी कांग्रेस कमेटी की ओर से २८ दिसम्बर सन् १९३५ की शाम को हरिद्वार मे श्रीगंगाजी के किनारे विशाल प्लेटफार्म पर काग्रेस का पचासवर्षीय स्वर्णजयन्ती-महोत्सव मनाया गया था। प्लेटफार्म खचा-खच भरा था और बहुत-से नर-नारियो को अत्यन्त भीड़ के कारण पीछे खडा रहना पडा। मै उन दिनों गुरुकुल कागडी में ठहरा हुआ था। जब आचार्य देवशर्मा ने मुझे उस सभा का सभापति होने के लिए कहा तो मैंने सोचा कि इस शुभ अवसर पर अपने देशवासियो को जातियो के उत्थान और पतन के विषय में कुछ सच्ची बाते साफ तौर से कहनी चाहिये। इस कारण मै उस महोत्सव मे सम्मिलित हुआ, झंडा फहराने का पुण्य सचय किया और अन्त मे उपस्थित नर-नारियो को नीचे लिखे आशय की बाते कही।

आज हम लोग कांग्रेस की स्वर्णजयन्ती मनाने के लिए यहाँ पर एकत्रित हुए है। इसका अर्थ यह है कि हम पिछले पचास वर्षों के राष्ट्रीय जीवन का सिहावलोकन करने लगे है। सन् १८८५ मे एक उदाराशय अग्रेज की सलाह से काग्रेस की स्थापना की गई थी। अपने देश की राज-नीति के अनुसार मिस्टर ह्यूम यह चाहते थे कि भारतवर्ष में भी एक ऐसा प्लेटफार्म बन जाये जिस पर यहाँ का शिक्षित समुदाय अपने दिल के फफोले फोड सके और शासन करने वालों को भी समय के अनुसार जागृति को सयमित करने मे सहायता मिल सके। वे इसमें सफल-मनोरथ हुए और देश का शिक्षित वर्ग उस प्लेटफार्म पर जाकर वर्ष मे एक बार अपने दिल की बाते नौकरशाही को सुनाने लगा।

कांग्रेस का बाल्यकाल इस प्रकार प्रारम्भ हुआ। सन् १९०६ की

काग्रेस मे स्वराज्य शब्द का प्रवेश हमारी राष्ट्रीय परिभाषा मे होगया और १९०७ मे जब सूरत मे काग्रेस हुई तो वहाँ कॉग्रेस की सूरत बदल गई। एक नई राष्ट्रीय पार्टी का जन्म हुआ, जिसमे महाराष्ट्र और बगाल के नेताओ ने भाग लिया । लोकमान्य तिलक राजनीतिक सिद्धान्तो के अद्भुत पंडित थे और साथ ही देश-भक्ति की जीती-जागती मूर्ति थे। उनके नेतृत्व मे राष्ट्रीय पार्टी धीरे-धीरे जोर पकडती गई। सन् १९१६ की लखनऊ काग्रेस मे जब देश भर के नेता राष्ट्रीय महासभा मे मुसलमानों को सम्मिलित कर उसे अत्यन्त शक्तिशाली बनाने की व्यवस्था करने लगे, तो दुर्भाग्यवश उन्होने पृथक्-निर्वाचन के सिद्धान्त को स्वीकार कर काग्रेस मे साम्प्रदायिक फूट का बीज बो दिया। यह पहली जबर्दस्त भूल हमारे नेताओ ने की, जिसका दण्ड वे अब तक भोग रहे हैं और आगे भी भोगेंगे।

सन् १९१७ का वर्ष काग्रेस के इतिहास मे क्रान्ति-युग कहलायेगा। उस वर्ष महात्मा गाँधी जी ने मोतीहारी मे पहली बार भद्र-अवज्ञा के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया और देश के लोगो को यह सिखला दिया कि निर्बल-से-निर्बल भी आत्मिक बल रहने पर अत्यन्त शक्तिशाली का मुकाबिला कर सकता है। भारतवर्ष के लोग निरस्त्र किये गये हैं, आत्मरक्षा के लिए उनके पास कोई हथियार नही; ऐसी अवस्था मे लोगो की मनोवृत्ति यही रहा करती है कि वे शस्त्रहीन शस्त्रवालो का क्या सामना कर सकते हैं! महात्मा गाँधीजी ने जनता को यह सिखलाया कि जातियाँ निरस्त्र होने के कारण ही गुलाम नही बन जाती, बल्कि कौमों के उठने और स्वाधीन होने के प्रधान कारण दूसरे ही होते है।

सचमुच सन् १९१७ से ही काग्रेस का राष्ट्रीय जीवन प्रारम्भ होता है और तब से लेकर आज तक इन अठारह वर्षो के राष्ट्रीय जीवन का हमे सिहावलोकन करना है। सन् १९२० की काग्रेस मे महासभा की बागडोर महात्मा गाँधी के हाथ मे आई और उन्होने मुसलमानो को अपने साथ मिलाकर कॉग्रेस की प्रगति को आगे बढाया । यह समय खिलाफत

के आन्दोलन का था। उस मजहबी आन्दोलन को कॉग्रेस का अग बना कर जन-साधारण मे एकता की पुनीत भावना को जबर्दस्त बनाना कोई बुराई की बात नही थी, बल्कि एक अत्यन्त राजनीतिक दूरदर्शिता की बात थी। परन्तु मुसलमानो द्वारा पैदा की गई राष्ट्रीय स्टीम को नियन्त्रित कर उसे नौकरशाही के विरुद्ध काम मे लाना यही अत्यन्त विवेक और कौशल की बात थी, जिसे महात्मा जी न कर सके--वे सफल सेनापति सिद्ध न हुए। जिस दूरदर्शिता के कार्य को उन्होने ऐसी निर्भीकता से उठाया था, जिसे उन्होने वायसराय लार्ड रीडिग को चैलेज देकर पूर्णता तक पहुँचाने का व्रत लिया था, परीक्षा का समय आने पर उनका हृदय सहम गया और वे उस भयकर मारकाट को देखकर डर गये जिसका श्रीगणेश चौरीचौरा मे हुआ था।

मुझे वह सुबह कभी न भूलेगी जब बारडोली मे चौरीचौरा की घटना के बाद कॉग्रेस के भविष्य का फैसला हुआ था। भारतवर्ष के करोडो नर-नारियो मे केवल मैं ही एक ऐसा व्यक्ति हूँ, जिसे उस ऐतिहासिक पराजय का रहस्य मालूम है। महात्मा जी ने जब सबको बाहर निकाल दिया, तो उस कमरे मे मैं और गाँधीजी अकेले ही रह गए। वे चर्खा कात रहे थे और मै उनके चेहरे की ओर देख रहा था। कुछ देर तक चुप रहने के बाद मैंने पूछा--

"क्यो बापू जी, आप ऐसे उदास क्यो है ?"

सर्द आह भर कर वे बोले--"जिस कार्य के करने के लिए मैंने सारी तैयारी की थी, आज मेरा हृदय उस जिम्मेदारी को उठाने मे असमर्थ है।"

इसके बाद जो-जो हुआ, घटा, सलाहकारो की मीटिग मे जो फैसला हुआ, भावी इतिहासकार उस पर खून के आँसू बहायेगे। यदि गाँधीजी उस समय दोनो हाथो मे अपने साहस को लेकर, चौरीचौरा की कुछ परवाह न कर, खिलाफत आन्दोलन द्वारा पैदा हुई उस शक्तिशाली स्टीम को नौकरशाही पर छोड देते, तो मुसलमान सदा के लिए सच्चे भारतीय बन जाते। धर्मान्ध मौलवी और मुल्ला शहीद होकर

स्वर्ग में विहार करते और जनता उन शहीदो के गुण गाकर राष्ट्रीयता का अमृतपान करती और हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य का प्रश्न सदा के लिए हल हो जाता।

देखिये भारतवर्ष का दुर्भाग्य! सन् १९१६ मे लोकमान्य तिलक ने पृथक् निर्वाचन का सिद्धान्त स्वीकार कर देश को फूट के गढे मे गिरा दिया। इसके छः वर्ष बाद जब महात्मा गाँधी जी को एक स्वर्ण अवसर उस भूल को सुधारने का मिला, तो उन्होने केवल उसे खो ही नही दिया, बल्कि ऐक्य के प्रश्न को और भी कठिन बना दिया। इसके बाद काँग्रेस की क्या दशा हुई? स्वराज्य पार्टी ने जोर बाँधा, असेम्बली और कौसिलो मे कलाबाजियाँ हुई, सत्याग्रह सग्राम के शङ्ख फूके गये, हज़ारो नव-युवक ओर युवतियाँ जेलो मे सडी, वीर स्वयसेवको ने माता के नाम पर डण्डे खाये और गालियाँ सही, गाँधी-इरविन समझौता हुआ, काँग्रेस का बोलबाला हुआ—मगर अफसोस! राउण्ड-टेबिल कान्फ्रेस मे जाकर भारत के स्वराज्य का प्रश्न फुटबाल की 'किक' खाकर दूर चला गया।

आज की हालत

आज हम कहां खडे है, इस पर हमे ध्यानपूर्वक विचार करना चाहिए। एक ओर सोशलिस्ट पार्टी वाले अजगर की तरह काग्रेस को निगलने के लिए तैयार बैठे है, दूसरी ओर ओहदों के भूखे कांग्रेस को २० वर्ष पीछे खीच रहे है, तीसरी ओर स्वार्थी मुसलमान नेता कांग्रेस द्वारा पैदा की हुई जागृति का लाभ लेकर अपना उल्लू सीधा कर रहे है और भारतवर्ष मे मुस्लिम राज्य स्थापित करने की तैयारी कर रहे है, चौथी ओर नौकरशाही तीनो तरफ झाँक-झाँक कर उन्हे मुह चिढा रही है और काग्रेस का मज़ाक उडा रही है। हमारी म्युनिसिपैलिटियाँ पार्टीबाजी का घर बन गई है, जहाँ हमारे चुन हुए प्रतिनिधि लूट के माल के लिए लड़ते है। राष्ट्रीय बंगाल दो कैम्पो मे नगी तलवार लिये खडा है, जिसके झगडे निपटाये ही नही जा सकते। पदलोलुप लोग मज़हबी

महन्तो की तरह पब्लिक गद्दियाँ बनाने के लिए निकल पडे हैं—ऐसी अवस्था मे हमे क्या करना चाहिये ?

स्वर्णजयन्ती के इस शुभ अवसर पर हमे आज अपना बही-खाता मिलाना होगा और सोचना होगा कि हमे कितना घाटा और कितना नफा हुआ। यदि घाटा हुआ तो क्यो हुआ है ? उसके कारणो की तलाश कर उन्हे दूर करने का प्रयत्न करना होगा। नफा हमारे सामने है—जनता की जागृति। पिछले २० वर्षो मे जो जागृति देश मे हुई है, वह निःसन्देह अत्यन्त आशाजनक है। स्वराज्य के लिए लोगो के दिलो में चाह उत्पन्न हुई है, दासता के प्रति घृणा के भाव बराबर फैल रहे है, काग्रेस का प्रभाव बहुत व्यापक होगया है, छूत-छात घट रही है, जात-पात के बन्धन ढीले हो रहे है, लेकिन कौमो के उठने में जिस चीज की अत्यन्त आवश्यकता है, वह कुछ और ही है।

स्मरण रखिये, वह शक्ति जो जातियों को उठाती है, वह तेज जो देश को उज्ज्वल करता है, वह बल जो राष्ट्र को शक्तिशाली बनाता है, वह समीर जो उसका यश फैलाता है, जो उसकी नैतिक प्रभुता को उत्पन्न करता है, जो उसका आदर और उसका गौरव बढाता है, जो करोडों आत्माओ के हृदयो को उसके आधीन करता है और इर्द-गिर्द के अभिमानी राष्ट्रो को उनके प्रति विनयी बनाता है, वह आज्ञा पालन करने वाला तेजस्वी साधन, वह आधिपत्य दिलाने वाला सुन्दर स्रोत, किसी राष्ट्र का वह सच्चा सिहासन और राज्याधिकार—अरे मेरे लोगो ! वह शक्तिशाली महत्ता वर्णाश्रम की डीग मारने से प्राप्त नही होती, न वह फैशन और शृंगार मे डूबे रहने से मिलती है, ना ही वह वाक्चातुरी, मज़हबी ढोंग और बुद्धि-कौशल से ही प्राप्त हो सकती है। वह महत्ता तो केवल निर्मल चरित्र रखने वाले नर-नारियो द्वारा ही राष्ट्र को हासिल होती है और मानव-जाति का एकमात्र पथ-प्रदर्शक केवल वह सुन्दर चरित्र ही है।

वह चरित्र क्या है ? उसका क्या स्वरूप है ? उसके मुख्य-मुख्य

अग क्या है ? इन प्रश्नो का उत्तर दिये बिना इस सिहावलोकन का उद्देश्य सिद्ध नही हो सकता, क्योकि दुर्भाग्यवश भारतवर्ष के लोग चरित्र का व्यापक स्वरूप नही पहचानते। वे यही समझते है कि जो पर-स्त्री-गमन नही करता, जो इन्द्रिय-भोग के विषय मे सयमी है, वही चरित्र-वान् है। यह तो इस शब्द का अत्यन्त ही सकुचित रूप है। अब हम इसकी सविस्तर व्याख्या करते है।

अपने पिछले तीस वर्षों के अनुभव से मै इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि हिन्दू-समाज राष्ट्रीय प्रश्नों पर विचार करने की बुद्धि को खो बैठा है। इसका दृष्टिकोण अत्यन्त व्यक्तिवादी हो गया है और वह व्यक्ति-वाद निपट स्वार्थ का रूप धारण कर बैठा है। अभी मैने यह आश्रम लिया है। मुश्किल से एक महीना होने लगा है, लेकिन कैसा अनुभव मुझे हो रहा है ? मैने आश्रम की आवश्यकताओ के अनुसार कुछ मकान बनवाने है। भट्टे वाले, मेमार, बढई, लोहार, मजदूर और ठेकेदारो का कुछ दिन तक ताता लगा रहा। सब का रुख मैने पूर्ण स्वार्थ का देखा। वे यही चाहते है कि दूसरे की आख मे धूल झोक कर, उसे खराब माल दे कर अपना उल्लू सीधा करे। भारतीय मस्तिष्क तो बनियापन के गहरे गढे मे बुरी तरह गिर गया है—यहाँ तक कि स्वार्थ के वशीभूत होकर वह अपने हित को भी हानि पहुचा लेता है। ईमानदार आदमी दरकार है। वे कहाँ से आवे ? जो मिस्त्री आता है, वह अपने-आपको अपने धन्धे मे पूरा जानकार बतलाता है, लेकिन कितना कम जानता है वह ! तीर्थो मे आते है लोग शान्ति के लिए, लेकिन कितनी अशान्ति है वहाँ ! स्वार्थ का तो मानो साम्राज्य है। गिद्धो की तरह यात्रियो पर टूट पडते है, मानो पैसा ठगने का इनका जन्म-सिद्ध अधिकार है। मन बेचैन हो उठता है और मुह से बे-इख्तियार ये पद्य निकलते है—

छन्द भुजङ्गी

धनी की नहीं खोज मे घूमते,
न लिक्खाड़ के पैर को चूमते;

न विद्वान् मक्कार ही चाहिये,
कहीं से खरा आदमी लाइये।

कहाँ है नहीं जो बहा धार में,
रहे जो तना तेग़ की मार में;
सदा जो डटा बीच मैदान मे,
सभी वार दे देश की आन मे।

मसीते रहीं रो इमामी बिना,
मठों मे मची धूम स्वामी बिना;
शिवाले खड़े हैं पुजारी नहीं,
अहो आज मोहन मुरारी नहीं।

('अनुभव' मे से)

भारतवर्ष का हृदयमर्मभेदी क्रन्दन यही है--"Men wanted, अर्थात् मनुष्य दरकार है।" निस्सन्देह राष्ट्रो के उत्थान मे आदर्श का बडा ऊँचा स्थान है। आदर्श के बिना कोई जाति उठ नही सकती। लेकिन आदर्श भी क्या करेगा जब आपके पास सामग्री रद्दी है? आपने सुन्दर सुदृढ राष्ट्रीय भवन बनाना है, लेकिन आपके पास जो मसाला है वह बिलकुल थर्ड क्लास है। पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास कर देने से ही हम इस आदर्श को प्राप्त नही कर सकते। महाराजा रणजीतसिह ने अतुल परिश्रम कर सब सिक्ख मिसलो को मिटाकर एक बलशाली सिक्ख-राष्ट्र पजाब मे स्थापित किया था, लेकिन वह उनकी मृत्यु के कुछ दिन बाद ही धराशायी हो गया। क्यो? इसलिए कि जिस मसाले से उन्होने उस राष्ट्र की बुनियाद डाली थी, वह अच्छा नही था। कौमे बल्लिया लगाने से नही उठा करती। गुरु गोविन्दसिह जी ने अपने बलिदान की बल्ली से सिक्खो को खडा कर दिया था। इसी प्रकार शिवाजी

महाराज ने अपने अविरल प्रयत्न से मराठो को उठाने की कोशिश की थी। पर कौमे ऐसी बल्लिया लगाने से नही उठा करती। कौमो को उठाने के लिए सुन्दर, नीरोग और सच्चरित्रतापूर्ण विचारो की आवश्यकता है। वही एक ऐसा स्थायी सीमेन्ट है जो राष्ट्र को दीर्घकाल तक जोडे रखता है। सुन्दर नीरोग विचार ही नागरिको मे जीवन-स्फूर्ति भरते है और जब वे पवित्र विचार मानव-शरीर मे अवतार लेकर किसी राष्ट्र का अग बनते है तो वह राष्ट्र भाग्यशाली हो जाता है।

जब भगवान् बुद्ध ने सच्चरित्रता की भित्ति पर अपने संघ की बुनियाद रखी थी तो उन्होने ससार को एक अटल सिद्धान्त सिखला दिया, और वह सिद्धान्त यह है--"समाज का पथ-प्रदर्शक सुन्दर निर्मल चरित्र है, जन्म का अभिमान और पाण्डित्य की डीगे जातियो को महान् नही बना सकती।" करीब एक हजार वर्ष तक भगवान् बुद्ध की शिक्षा ने हिन्दू समाज को ऊचा उठाने मे मदद दी, लेकिन ज्यो-ज्यो वह शिक्षा मिटती गई और हिन्दू परिस्थितियो के अनुसार अपना परिवर्त्तन करने मे असावधान रहे तो काल ने उस बौद्ध समाज को पछाड डाला।

श्रेष्ठ साहित्य

हम आज एक नये युग का द्वार खटखटा रहे है। हमे आज अपने राष्ट्र का निर्माण करना है। वह निर्माण कार्य किस सामग्री से होगा? भारतवर्ष मे रहने वाले सात करोड मुसलमान अपनी आत्मिक खुराक कहाँ से लेते है? कोई ऐसी सोसायटी अथवा आन्दोलन उनमे नही है जो उन्हे सच्चरित्रता की ओर ले जाने वाला हो। उनकी सारी शिक्षा साम्प्रदायिक है और मजहबी कठमुल्लापन उनमे ठूस-ठूसकर भरा जाता है। आपका बीस वर्षों का पुराना मुसलमान नौकर, हिन्दू-मुस्लिम झगडा होने पर हमेशा अपने मजहब वालो की तरफ जाता है, न्याय-अन्याय पहचानने की बुद्धि उसके पास है ही नही। वह बुरे-से-बुरा कर्म भी मजहब के नाम पर कर बैठता है। इस प्रवाह को कांग्रेस कैसे रोकेगी?

हिन्दुओ की आबादी इस देश मे सबसे अधिक है। उनका आदर्श-मनुष्य धर्मराज युधिष्ठिर जूए मे अपनी स्त्री तक को हार देता है। इस कुकर्म को आज साधारण-से-साधारण सभ्य मनुष्य भी अत्यन्त घृणित समझता है। यही दशा भागवत के नायक श्रीकृष्णचन्द्रजी की भी है। करोडो हिन्दू उसे माखनचोर, चोर-जार-शिरोमणि और ज्वारियो का सरदार समझते है और भगवद्गीता मे भी भगवान् ने अपने मुह से अपने-आपको सबसे बडा ज्वारिया कहा है। पुराणो मे हजारों वर्षों तक तपस्या करने वाले ऋषि साधारण-सी अप्सरा आ जाने पर कामातुर हो जाते है। दूसरी ओर जब हम डाक्टर स्माइल्स रचित Duty और Character अर्थात् कर्त्तव्य और चरित्र नामक पुस्तकों को पढते है, तो हमारा हृदय गद्गद् हो जाता है। कैसी सुन्दर और परिमार्जित भाषा है इन पुस्तको की और कैसी स्फूर्ति देती है वे हमे! क्या ऐसी पुस्तके हमारे साहित्य मे है? ऐसी ही पुस्तको के कारण ब्रिटिश जाति ने अपने उत्थानकाल मे उँचे दर्जे के चरित्रवान् और वीर पुरुष उत्पन्न किये थे। ऐसे ही साहित्य के बल पर अग्रेज जाति ऐसी शक्तिशाली हुई है। जब से अग्रेजी साहित्य मे थर्ड क्लास जासूसी उपन्यास, गन्दे सिनेमा और वाममार्गी गीत प्रचलित होने लगे है, तभी से ब्रिटिश जाति का वीर्य क्षीण होने लगा है और इसमे ऊँचे दर्जे के राजनीतिज्ञो और वीरश्रेष्ठो की कमी होने लगी है। जातियो का उत्थान श्रेष्ठ साहित्य द्वारा ही हो सकता है, अश्लील और शृगाररस पूर्ण कविताओ से नही।

पुराना कूड़ा कचरा

कांग्रेस की इस स्वर्णजयन्ती के अवसर पर हमे आज बडी गम्भीरता से अपनी दशा पर विचार करना है। जिस देश मे महात्मा गाधी जैसा महा-पुरुष उत्पन्न हुआ, जिसके पीछे लाखो आदमी मरने को तैयार है, वह देश अब तक अपनी स्वराज्य समस्या को हल क्यों नही कर सका? केवल इसीलिए कि हमारे नेता मुसलमान जनता से डरते है और हिन्दुओ को

ठीक मार्ग नही बतलाते। यह सच है कि हमारा आर्थिक प्रश्न भी हमारे रास्ते मे एक बडी बाधा है, लेकिन उसके हल होने पर भी हम उत्थान-पथ पर नही जा सकेगे। पहाडी नदी की बाढ जैसा उत्थान स्वाभाविक नही होता, वह तो नाशकारी ववण्डर होता है। जातियो का उत्थान उस समय माना जाता है जब उनमे रचनात्मक कार्य करने वाले स्त्री-पुरुष उत्पन्न होते है। ऐसे पुरुष तो केवल निर्मल विचारो द्वारा ही बन सकते है। भला सोचिये तो सही कि जिस कुम्भ के मेले पर हमारे लाखो पुरुष एकत्र हो और वे नागे साधुओ की लगोटिया उतरवाने के लिए रुपये भेट करे और हमारे कई एक लोकप्रिय नेता तथा धुरन्धर शास्त्री उसी मेले मे मौजूद हो और इस प्रकार के धार्मिक अनाचार के विरुद्ध भयकर आदोलन न करे, ऐसे देश की जनता भला कभी चरित्रवान् हो सकती है?

भारतवर्ष मे जनता को उत्थान-पथ पर ले जाने का मार्ग तब तक नही निकल सकता जब तक कि हम पुराने कूडे-कचरे साहित्य को निर्भय होकर गगा जी मे न बहा देगे। हिन्दू और मुसलमान जनता प्रमाणवाद के गढे मे गिरी हुई है, उसमे सत्यासत्य पहचानने की विवेकिनी बुद्धि नही। जब तक हम लोकप्रियता की प्रलोभना छोड कर, ख्याति से उदासीन हो, शुद्ध सत्य की शिक्षा अपने लोगो को नही देगे, तब तक इस देश मे सच्चरित्रता का आधिपत्य स्थापित नही हो सकता।

कौन है चरित्रवान्?

वही, जो लाखो रुपये का प्रलोभन मिलने पर भी न्याय पथ न छोडे, जिसमे स्वार्थ न हो, जो दूसरो की हानि को अपनी हानि समझे, जिसमे कर्तव्यनिष्ठा हो, जो वीरता से अत्याचार का सामना करने के लिए उद्यत हो जाये। गुरु तेगबहादुर जी ऊँचे दर्जे के चरित्रवान् थे। अमरीकन रिपब्लिक के पिता जार्ज वाशिगटन सच्चरित्रता की मूर्ति थे। छोटा सा लडका कैसेबियन्का पिता की आज्ञा के लिए जीता जल गया, मगर उसने

अपना स्थान नही छोडा । धर्मी हकीकतराय सच्चरित्रता के ज्वलन्त उदाहरण थे । इस प्रकार के नरपुगव जिस देश में उत्पन्न होते है—वे भी एक दो नही, बल्कि जब साधारण जनता इन पवित्र सिद्धांतों से ओत-प्रोत हो जाती है तब देश सच्ची स्वाधीनता प्राप्त करने के योग्य बनता है ।

हमें आदमी चाहिये—ऐसे आदमी जो तोप के मुह के सामने भी वही कहें जो उनके हृदय मे हो, जो मनों सोना मिलने पर भी देश के साथ द्रोह न करें, जिन्हे जब किसी जिम्मेदार जगह पर खडा कर दिया जाए तो वे हिमालय की तरह अचल हो जाएँ, ऐसे विश्वासपात्र नर-नारी जिन पर हमे सोलह आना विश्वास हो और जिनमें कार्य करने की क्षमता हो, दूसरों के अधिकारों का जो मान कर सके और अपने अधिकारो के लिए प्राण तज सके, जो निर्भय सिंह की तरह कठिनाइयों मे मे निकल सकें और कार्यसिद्धि के लिए जिनमे रक्त की नदी पार करने का साहस हो—ऐसे नर-श्रेष्ठ जब भारतवर्ष पैदा करेगा तभी इसका उद्धार हो सकेगा, क्योंकि हमने शासन की बागडोर अपने हाथ में लेनी है । जब हमारे पास योग्य आदमी ही नही तो हमारा उद्देश्य कैसे सिद्ध हो सकता है ?

स्वराज्य से पहले

लोग हमे यह कहेंगे कि पहले हम स्वाधीनता प्राप्त कर ले, रोटी का प्रश्न हल हो जाये, तब ऐसे आदमी आप ही आप पैदा हो जायेंगे । ऐसा विचार रखनेवाले लोग रेत की भित्ति पर दीवार खड़ी करना चाहते है। ससार में कोई जाति इस तरह से नही उठी । प्रारम्भ के ईसाई अत्यन्त चरित्रवान् थे, उन्ही के पुण्य-प्रताप से ईसाई-साम्राज्य बलशाली हुआ था । इस्लाम के जन्मकाल में जिन लोगों ने इसे आगे बढ़ाने का यत्न किया था वे भी अपने समय के चरित्रवान् और ऊँचे दर्जे के मनुष्य थे । उन्ही वीरों के सहारे इस्लाम का बल बढा और जब उन सच्चरित्र लोगों का

पुण्य समाप्त होगया तो इस्लाम की शक्ति का सूर्य अस्त होगया। अब कमालपाशा पाश्चात्य गुणों की कलम लगाकर नया तुर्की बनाने लगा है। भारतवर्ष भी जब तक यही पथ नही पकड़ेगा, इसका उत्थान नही हो सकता। हिदुओं मे चरित्र को बिगाडने वाला जितना साहित्य है, जितनी अश्लील गाथाये है, जितने शृङ्गार-रसपूर्ण ग्रथ है और जितने गलत आदर्श है, उन सबका अत करना ही पड़ेगा। मुसलमानों में जो भयकर कठमुल्लापन है, उसे दूर किए बिना हमारा कल्याण नही हो सकता। हमे चाहिये कि हम प्रमाणवाद का गला घोट कर बुद्धिवाद का प्रचार जनता मे करे और एसे साहित्य को रचे जो जनता मे सच्चरित्रता के व्यावहारिक धर्म का प्रचार करे। जब ऐसी निर्मल विचारधारा इस देश मे बहेगी, तभी यह देश अपनी स्वाधीनता की रक्षा करने मे समर्थ हो सकेगा।

प्रचुरता बनाम उत्कृष्टता

अतएव मेरी प्रार्थना अपने देशवासियो के सम्मुख यही है कि अब हमे प्रचुरता (Quantity) की परवाह न कर उत्कृष्टता (Quality) का अधिक ध्यान रखना चाहिए। हमे बहुत बड़ी सख्या की आवश्यकता नही, हमे तो थोडे लेकिन चरित्रवान् नर-नारी दरकार है। ऐसा मुट्ठीभर समाज देश की काया-पलट कर सकता है। सब सभा-सोसाइटियो को अच्छे चरित्रवान् नागरिक पैदा करने का प्रयत्न करना चाहिये, तभी हम अपने राष्ट्र को गौरव का स्थान दिला सकेंगे।

सत्ताईसवाँ पुष्प

यात्रा-स्फूर्त्ति

उठ बाँध कमर चल यात्रा पर,
है अन्धकार पथ दूर घना;
तेरा साथी वह है ईश्वर,
निज जीवन मित्र पवित्र बना।

* * *

तेरे पथ में है बाधायें,
हिम्मत से पग आगे रखना;
पूरी होंगी सब आशायें,
निज जीवन परम पवित्र बना।

* * *

दुर्गम पर्वत नद नालों मे,
घनघोर तिमिर से मत डरना;
वह रक्षक है सब कालों मे,
निज जीवन मित्र पवित्र बना।

* * *

कुछ करते है तेरी हाँसी,
कुछ प्रेम करें प्रिय वचन सुना;

तू होकर ईश्वर-विश्वासी,
निज जीवन परम पवित्र बना।

* * *

कुछ निन्दा चुगली है करते,
कुछ द्वेष करे कुछ करे घृणा;
तू पीठ फेर ले इन सब से,
निज जीवन मित्र पवित्र बना।

* * *

यह दुनिया रंग बिरंगी है,
निर्भर इस पर तू मत रहना,
तू चंगा तो यह चंगी है,
निज जीवन परम पवित्र बना।

* * *

तू निर्जन मैदानों में भी,
निर्भय होकर आगे बढ़ना;
वह दूर करेगा कष्ट सभी,
निज जीवन मित्र पवित्र बना।

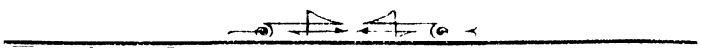
* * *

इस कर्मयोग के मारग में,
नित ओ३म् नाम का जप करना;
है 'देव' सफल होना जग में,
तो जीवन परम पवित्र बना।

ज्ञान के उद्यान में

बाग़ की बहार

एकात्म का पाठ नहीं पढ़ाती, सर्वांगिणी संस्कृति भारती है;
ब्रह्माण्ड सौन्दर्य्य विभिन्नता में, जो एकता-पालन मानती है।



जग में पूजा ना मिले, बिना घिसाये चाम;
रगड रगड़ खाकर बने, पाहन शालिग्राम।

★ ★ ★

पर दुख का बन पारखी, जो जी जान जराय;
वह खींचे ससार को, चुम्बक चरित बनाय।

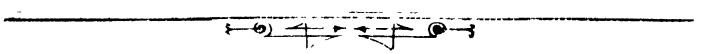
★ ★ ★

जीवन-ज्योति जला गया, प्रिय 'यतीन' प्रणवीर,
जिसने माता के लिए, अर्पण किया शरीर।

★ ★ ★

राखत नांहि मलीन मन, सज्जन 'देव' उदार;
गुण गहते हैं हंस बन, अवगुण लेत सुधार।

('अनुभव' में से)



अट्ठाईसवाँ पुष्प

लुनेता में हवाखोरी

सन् १९०५ के सितम्बर मास मे मैं फिलिपाइन द्वीप-समूह के प्रसिद्ध नगर मनीला मे था। धनाभाव से मै यहाँ पर पैसा कमाने के लिए आया था, क्योकि मेरा विचार सयुक्त राज्य अमरीका मे जाकर विद्याध्ययन करने का था। यहाँ पर मै कई द्वीपो मे घूमा और इधर के प्राकृतिक दृश्यो का खूब आनन्द लिया। अमरीकन लोगो के उदार व्यवहार ने मेरे हृदय पर अच्छा प्रभाव डाला। मनीला नगरी मे मै कई मास तक रहा और एक संस्कृतप्रेमी अमरीकन सज्जन को उपनिषदे पढाता रहा। इन्ही दिनो मै नगर के प्रसिद्ध विहार-स्थल लुनेता मे सैर के लिए जाया करता था। एक ऐसी ही सैर का वर्णन मै यहाँ लिखता हूँ।

दिन ढल गया था। सूर्यदेव अपने दिन के कार्य मे निश्चिन्त हो धीरे-धीरे पश्चिम दिशा की ओर जा रहे थे। मनीला निवासियो ने उनके गमन से मानो प्रसन्नता प्रकट की और सैरसपाटे के लिए घरो से निकलने लगे। एसकोल्टा के धनी दुकानदारो ने दुकानों के पर्दे उठा दिये और बाहर खडे होकर ठडी पवन की प्रतीक्षा करने लगे। वह प्रतीक्षा न थी, मानो आह्वान सुनने के लिए वे लोग इस प्रकार उद्विग्न थे।

आखिर वह आह्वान आया। समुद्रदेव ने अपने शीतल पवन के झकोरो द्वारा मनीला के नर-नारियो, वृद्ध-वनिताओं, निर्धन धनवानो को सप्रेम बुलाया और नगरनिवासी सहर्ष समुद्रदेव के आमन की ओर चल खडे हुए। वह एक सुन्दर दृश्य था। पासिग नदी के पुल पर से होकर समुद्र तट की ओर जाने वाली सडक के किनारे खडा होकर मै उस दृश्य को देखने लगा।

धनी अमरीकन अपनी-अपनी गाडियो मे बैठे हुए अपनी प्रियाओ के

साथ सपाटे भरे जा रहे थे। अमरीकन सिपाही खाकी जीन की वरदियाँ पहिने अपने मित्रो के साथ हँसते-खेलते सडक के एक किनारे चल रहे थे। मोटे-मोटे धनी चीनी लोग इक्को मे सवार होकर समुद्र तट पर सैर करने चले थे। हलके-फुलके जापानी तथा मैलानी फिलीपीनो भी नये कालर-टाई लगाकर अकडते जा रहे थे। पजाबी सिक्ख भी किसी से कम न थे। इनकी पोशाक अजीब थी। किसी की पतलून बडी, किसी का कोट छोटा, किसी के बटन टूटे हुए, पर सभी अंग्रेजी सूट पहिने सैर करने चले थे।

मै भी उनके साथ-साथ हो लिया। दिल मे सोचता जाता था कि आज नई और पुरानी दुनिया की सृष्टि के वन्दरो को देखने का अच्छा अवसर हाथ लगेगा।

× × ×

शहर से करीब डेढ मील के फासले पर 'लुनेता' नाम का स्थान है। वह समुद्र के किनारे है। यहाँ घास के बडे lawns (क्षेत्र) है, जिनके मध्य मे एक ऊँचे चबूतरे पर खुला सुन्दर चोदरा बना हुआ है। यहाँ सन्ध्या के समय बड बजा करता है और मनीलानिवासी सन्ध्या का आनन्द लूटने यही आते है।

यहीं पर आज भी नित्य के अनुसार लोग सैर करने आये थे। मेरे लिए यह दिन अपनी किस्म का नया था, क्योकि भारतवर्ष मे तो गौराग प्रभु अपने क्रीडालयो मे किसी 'नेटिव' को फटकने नही देते और प्राकृतिक दृश्यो के भोक्ता केवल अपने आप ही को समझते थे। इसलिए मुझे यह जानने की बडी उत्कण्ठा थी कि नई दुनिया के श्वेताग सज्जन फिली-पाइन लोगो के प्रति कैसा व्यवहार करते है। यह स्वाभाविक भी था, क्योंकि हम लोग तो यारुपियनो की भाँति आर्य-सन्तान है, विद्या, शिक्षा, बुद्धि और सभ्यता मे योरुप के कान कतरते है, तिस पर भी कई अंग्रेज शासक हमारे साथ बहुत बुरा सलूक करते थे। इन बेचारे फिलीपीनो पर कैसी गुजरती है, अमरीकन इन 'नेटिवों' के साथ कैसा बर्ताव करते

है, यह देख जानने के लिए मैं बड़ा उत्सुक था।

लुनेता पहुँच कर मैंने देखा कि करीब सभी देशों के लोग वहाँ विद्यमान हैं। चीनी, जापानी, भारतीय, अरबी, तुर्की, स्विस, स्पेनिश, अंग्रेज, जर्मन, अमरीकन, नीग्रो (हब्शी) सभी नमूने की मूर्तियाँ वहाँ देखने में आईं। इससे प्रतीत होता था कि मनीला एक अच्छा सर्वमिश्रित (Cosmopolitan) नगर है। यहाँ सभी मिले बैठे थे। भारत जैसी 'महापुरुषता' देखने में नहीं आई। अपने यहाँ तो प्राय जहाँ अंग्रेज खेला करते हैं, वहाँ एक पहरेदार खड़ा रहता है, जो काले 'नेटिवों' को निकट नहीं आने देता, ताकि साहब के रंग में भंग न पड़ जावे। परन्तु यहाँ यह बात नहीं थी। एक ही बेंच पर अमरीकन, फिलीपीन और चीनी बैठे देखने में आये। कोई भेदभाव नहीं था। अमरीकन लेडियाँ फिलिपीनों के साथ हँस-हँस कर बातें करती थीं। बैंड वाले चबूतरे के इर्दगिर्द सभी लोग—क्या फिलीपीनो, क्या नीग्रो, क्या जापानी, क्या सिक्ख—खड़े बाजा सुन रहे थे। कोई किसी को नहीं कहता था—"तुम मुझे सलाम करो, हाँ हजूर, हाँ हजूर, हाँ हजूर कहो"। सभी अपने मन के राजा थे। जहाँ चाहते बैठते, जहाँ चाहते जाते, कोई किसी की आजादी में विघ्न नहीं डालता था।

इस दृश्य ने मेरे दिल पर बहुत अच्छा प्रभाव डाला। समुद्र के किनारे घूम-घूम कर मैं अपने मन में बातें करने लगा।

'पीद्रो' नाम के एक फिलीपीनी सज्जन से मनीला लाइब्रेरी में मेरी भेंट हुई थी। मैं बहुधा पुस्तकावलोकनार्थ वहाँ जाया करता था। कोई लम्बी-चौड़ी वाकफियत उससे मेरी न थी, खाली साहब-सलामत दो-चार दफे हुई थी।

जब मैं समुद्र के किनारे टहल रहा था तो किसी ने मेरे पीछे आकर मुझे छुआ। मैंने घूम कर देखा तो 'पीद्रो' खड़ा है। उसने हँस-कर मुझे कहा—

"सीन्योर[1] का मिजाज़ कैसा है ?"

"बडा अच्छा मिजाज़ है मेरा। कहिए आप कैसे है ?"

"देखिये, खूब मोटा-ताज़ा हो रहा हूँ।"

मैंने भी उसके साथ कहकहा लगाया, क्योंकि पीद्रो एक बहुत ही दुबला-पतला आदमी था, पर था हँसोड। थोडी देर बाद फिर उसने पूछा--

"सीन्योर क्या सोच रहे थे ? मै सीन्योर को आध घण्टे मेय हाँ टहलता देख रहा हूँ।"

यह तो मेरे मतलब का प्रश्न था, क्योंकि अब एक 'नेटिव' मिल गया था जिससे उस विषय पर और बहुत कुछ पूछ सकता था। सो मैंने पीद्रो मे कहा--

"आइये, वहा घास पर बैठ कर वार्त्तालाप करे।" घास पर जाकर हम लोग बैठ गये। मैंने पीद्रो से पूछा--"अमरीकन लोगो को यहाँ वाले कैसा समझते है ?"

"अच्छा ख्याल करते है। स्पेनिश लोगो से अमरीकन बहुत अच्छे है।"

"आप लोगो को उनसे कोई शिकायत तो नही ?"

मेरे इस प्रश्न पर पीद्रो ज़रा मुस्कराया और बोला--

"इस सवाल का जवाब देना मुश्किल है।"

मै जरा हैरानी से--"क्यो मुश्किल क्यो ?"

"देखिए, अमरीकन लोग अच्छे है, स्पेनिश लोगो की तरह ज़ुल्म नही करते। हमारे लिए स्कूल खोल रहे है। हम लोगो को हमारे कौमी गीत सिखाते है। पुलिस तथा अदालत का इन्तजाम अच्छा है। यह सब

---

[1] फिलीपीनों की भाषा में लाला, बाबू अथवा मिस्टर के स्थान पर 'सीन्योर' बोलते है।

कुछ है, लेकिन यह कहना कि हम लोगो को उनसे कोई शिकायत नही है (सिर हिलाकर) ठीक नही है।"

इससे मेरी हैरानी और भी बढ़ गई और मैंने ज़रा सरगरमी से पूछा--

"तो आप लोग और क्या चाहते है? आप लोग आनन्द से अमरीकनो की तरह रहते है। वे लोग यहाँ वालों से कोई नफरत नही करते, जैसा कि मेरे देश में है।"

"अच्छा, तो आप अपने मुल्क से मुकाबला करके पूछते है। हाँ, हिन्दुस्तान वालों से हम लोग कई दर्जे अच्छी हालत मे है।"

"तो फिर और शिकायत क्या है?"

पीद्रो इस पर हँसा और धीरे से मेरे कान मे कहा--

"हम लोग अपना मुल्क अपने हाथ मे लेना चाहते है। हमारी तिजारत कभी नही बढ सकती जब तक हमारी अपनी गवर्नमेंट न होगी।"

मै भी ज़रा धीरे से--

"तो क्या अमरीकन गवर्नमेट आप लोगो की तिजारत को नुक्सान पहुँचा रही है?"

"अमरीकन गवर्नमेट सबसे पहले अपने मुल्क का फ़ायदा देखती है, बाद मे हमारा। वह अपना नुक्सान करके हमारा फ़ायदा कर ही नही सकती। उनकी टेरिफवाली (तिजारत के माल पर कर लगाने वाली) पालिसी से हमारा लाखों का नुक्सान हो रहा है।"

मैने दिल मे सोचा कि एक ही सिद्धान्त सर्वत्र काम कर रहा है। खैर, पीद्रो तो अद्योस (नमस्कार) कर मुझ से विदा हुआ पर मैं अपने विचारों मे ही पडा रहा।

उन्तीसवाँ पुष्प

नई दुनिया से पुरानी दुनिया में

यूनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिका के पूर्वीय भाग मे मसचूसटस नाम की प्रसिद्ध रियासत है। यह अपनी विद्या, बुद्धि तथा धन के लिए सारी नई दुनिया मे प्रख्यात है। बोस्टन इस रियासत का सबसे प्रधान नगर है। सच पूछिये तो यूनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिका की यह नाक है। विद्या तथा सस्कृति का यह केन्द्र है, वाणिज्य कारोबार मे भी यह बहुत बढा चढा हुआ है।

सन् १९११ के अप्रैल महीने मे मै बोस्टन पहुँचा। क्योकि मेरे पास भारतवर्ष लौटने के लिए काफी रुपया नही था, इसलिये मैने यही से किसी स्टीमर मे नौकरी कर मानचेस्टर पहुँचने की ठानी। बोस्टन से मानचेस्टर साढे तीन हजार मील की दूरी पर है और अच्छे स्टीमर प्राय छ दिन मे यह यात्रा कर लेते है। मगर मुझको जाना था नौकरी करके--और वह भी ऐसे जहाज पर जिसमे पशु लदते हो--इसलिए अधिक दिनों का लग जाना स्वाभाविक ही था।

मेरे एक भारतीय बन्धु डाक्टर राय बोस्टन मे रहते थे। आप बडे सज्जन पुरुष थे और भारतीय छात्रो की सहायता करने मे त्रुटि नही करते थे। इनकी सिफ़ारिश से मानचेस्टर की ओर जाने वाले आईबेरियन जहाज पर मुझे नौकरी मिल गई। काम क्या था ? बैलो की सेवा करना।

१३ मई को प्रातःकाल अपने देशबन्धु शर्मण को साथ लेकर मै कम्पनी के घाट पर पहुँचा। जहाज के चलने मे अभी चार-पाँच घण्टे की देरी थी। अपने असबाब को एक कोने मे धर, मै उसके पास एक लकडी पर बैठ गया। शर्मण कुछ काम के लिए कम्पनी के दफ्तर मे चला गया था। एक गोरे खलासी ने जब मुझे बैठे देखा तो निकट आकर बोला--

"तुम कहाँ जाओगे ?"

"मानचेस्टर जाऊँगा।"

"इसी आइबेरियन पर ?"

"हाँ।"

"तुम्हारे पास रुपया है ?"

मैं उसकी धूर्तता समझ गया। मैंने कहा--"रुपया होता तो पशु-स्टीमर पर नौकरी करने आता ?"

"कुछ तो रुपया जरूर ही होगा। देखो, मैं इस जहाज पर 'बास'[1] हूँ। मैं तुमको आसान काम दूँगा। तुम मुझे एक डालर शराब के लिए दो।"

मैंने मन-ही-मन कहा--ऐसी चालाकियां किसी और को दिखाना, मैं ये सब बातें पढ़ा हुआ हूँ। (प्रकट में)--"जाइये, अपना रास्ता देखिये।"

इतने में शर्मण आ गया और उसने मुझे हिन्दी में कहा--"मुझे पौण्ड के डालर लेने हैं। कहाँ से लाऊँ ?"

वह गोरा तुरन्त समझ गया कि कुछ रुपये की बातचीत हो रही है। वह शर्मण को सम्बोधित करके बोला--

"आपको क्या चाहिये ?"

शर्मण बिल्कुल 'नन्हा' था। झट बोल उठा--"मुझे पौण्ड के डालर चाहिये।"

गोरे खलासी ने फौरन हाथ पसार कर कहा--"लाओ, मैं शराब की दुकान से अभी ला देता हूँ।"

शर्मण उसके हाथ में पौण्ड देने ही लगा था कि मैंने उसे पकड़ा और हिन्दी में फटकार कर कहा--

"तुम भी बड़े मूर्ख हो, शर्मण ! तीन साल तुमको अमेरिका में आये

---

[1] बास कुलियों के सरदार तथा जमादार को कहते हैं।

हुए होगए, पर अभी तक उल्लू-बसन्त ही रहे।"

मेरे ऐसा करने पर गोरा जल-भुन कर खाक होगया, पर कर क्या सकता था ? यदि वह कुछ बोलता तो हम उसकी वह पूजा करते कि वह सारी उम्र याद रखता। अपना-सा मुह ले वह वहाँ से चलता बना।

इसी समय डाक्टर राय भी आ गये थे। उन्होने जहाज के बावर्ची से मेरे खान-पान के विषय मे कह दिया और ताकीद कर दी कि खाना अच्छा मिले। डाक्टर महोदय का इस कम्पनी से कुछ सम्बन्ध था, उनकी बात सब कोई मानते थे।

शर्मण और डाक्टर महाशय तो मुझे 'गुड बाई' कहकर चले गये और मै अपने साथियों की देख-रेख करने लगा। बहुत से अमेरिकन लडके इस जहाज पर नौकरी करने आये थे। एक हट्टा-कट्टा हब्शी भी भर्ती हुआ था। जो आदमी भर्ती कर नौकरी देता था, वह पाँच-पाँच डालर प्रत्येक से दक्षिणा भी लेता था। जब मेरी बारी दफ्तर जाने की आई और भर्ती करने वाले ने मेरा नाम पूछा तो मैंने अपना नाम 'साम डेविस' बतलाया। शुद्ध नाम न बतलाने के कई कारण थे। उनमे से एक यह भी था कि गोरे लोग हिन्दू नाम का अण्ड-बण्ड उच्चारण करते है और मुझे दस-बारह दिन खलासियो मे रहना था—किसी प्रकार की हँसाई न हो, इसलिये मैंने अपना शुद्ध नाम नही बतलाया।

अब दक्षिणा की बारी आई। वह मुझसे भी पाँच डालर माँगने लगा। मैंने देने से इन्कार कर कहा—"यदि डालर लेने है तो डाक्टर राय से लेना।" बहुत-सी मीठी बाते कर वह मुझे रिझाने लगा, पर मुझे तो 'होबो' लोगों की हवा लग चुकी थी, ऐसे-ऐसे हथकण्डे मेरे देखे हुए थे। निदान वह चुपका हो रहा।

बारह बजे के बाद स्टीमर ने सीटी दी और यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ अमेरिका की स्वतन्त्र भूमि को मैंने सप्रेम प्रणाम किया। उस समय कैसे भाव हृदय में थे ! यद्यपि मै अपनी मातृभूमि की ओर जा रहा था, भारत पहुँचने के लिए मै बडा ही उत्सुक था, पर नई दुनिया छोडते समय

मुझे दु:ख अवश्य हुआ। नई दुनिया ने मुझको वह शिक्षा दी जो मुझे अपने देश मे कदापि न मिल सकती थी। नई दुनिया ने मुझे मनुष्यत्व के पाठ पढाये थे, नई दुनिया ने मुझे स्वतन्त्रता का मजा चखाया था—वह मजा जिसका आनन्द चखे बिना हरगिज मिल नही सकता। ओ यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ अमेरिका! मै अवश्य तेरा ऋणी हूँ। तेरी स्वतत्र भूमि ने मुझे ऐसी अमूल्य शिक्षाये दी है जिनका उल्लेख मेरी लेखनी नही कर सकती। तेरे विश्वविद्यालयो मे रहकर मैने ऐसे-ऐसे महात्माओ का सत्सग किया है जो मनुष्य-समाज के रत्न है। यद्यपि तेरे चरणो मे रहकर मैने बडे-बडे कष्ट उठाये, पर उन कष्टो ने मुझे बडा लाभ पहुँचाया। तू मेरी सरस्वती है, तू मेरी अध्यापिका है। तूने जो सन्देशा मुझे दिया है, मै उसको अपने देशवासियो तक पहुँचाने का यत्न करूँगा।

नई दुनिया को छोडते समय मुझे दु:ख अवश्य हुआ, इसमे कोई सन्देह नही। जब स्टीमर ने पुरानी दुनिया की ओर मुँह किया, तो मैने सोचा कि क्या जिस उद्देश्य के लिए मै नई दुनिया मे गया था, जिसके लिए इतना कष्ट मैने सहा, जिसके लिए कुलियो की तरह जीवन व्यतीत किया, क्या वह कार्य सफलता को प्राप्त हुआ है? ऐसे-ऐसे प्रश्न मेरे हृदय मे उठते थे। मन को शान्ति थी; आत्मा कहता था—"तेरा परिश्रम व्यर्थ नही गया। तैने जो उद्योग किये, कष्ट सहे, वे फल लाये है—फल लायेगे। उनका परिणाम बहुत अच्छा होगा।"

नई दुनिया को आखिरी प्रणाम कर मै अपने काम मे लग गया। जहाज के बावर्ची से भेट हुई। वह मेरा नाम जानता था। डाक्टर राय ने इसको मेरा नाम बतला दिया था। उसने मुझसे कहा कि कुछ दक्षिणा मिलनी चाहिए। मैने उसको दो डालर निकालकर दे दिये और मेरे लिए उसने वैष्णवी भोजन का प्रबन्ध कर दिया।

अब काम की सुनिये। मुझे अपनी ड्यूटी का कुछ भी पता नही था। जब भोजन कर चुका, तो काम की सीटी बजी और सब खलासी

जहाज के निचले भाग मे उतर गए। मैं भी उनके पीछे-पीछे, मैले कपडे पहने, डेक से नीचे उतरा। नीचे दुर्गन्ध, बदबू ! क्योकि बैलो का गोबर इकट्ठा होगया था, हमी लोगो ने उसको साफ करना था। अपने-अपने काम पर सब लग गए। एक तरफ के बैलों की रखवाली का भार मुझे और मेरे छः साथियो को मिला और दूसरे भाग का काम इतने ही और खलासियो के हिस्से मे आया। बाकी जो रह गये थे उनको भेडो की रक्षा सौपी गई और काम शुरू हुआ।

घास के गट्ठो को खोलकर बैलो के आगे डालने लगे। इसमे हमारे तीन घण्टे लग गये। इसके बाद सब लोग ऊपर डेक पर काम करने चले गये। यहाँ की बहार का क्या कहना ! नीले आकाश की आभा, समुद्र देवता की शान्त मूर्ति और स्टीमर का उस पर तैरना---क्या कहना ! यह ऐसा आनन्द है जो समुद्रयात्रा किए बिना नही मिल सकता। जब तक बाहर निकलकर समुद्र देवता के दर्शन न किये जायँ तब तक इसका अनुभव नही हो सकता। जब बोस्टन की खाडी मे से निकले तो फिर काम की घण्टी बजी और हम लोग नीचे भागे।

नीचे आकर पहले बैलो के आगे पडी हुई घास को बाहर निकाल नाद को साफ किया। उस बची हुई घास को बैलो के नीचे डाल दिया, ताकि वे गोबर मे लतपत न हो और इनके नीचे की जगह सूखी रहे। इसके बाद फिर मकई उनके आगे डाली गई और हम लोगो ने छुट्टी पाई।

अब भोजन का समय होगया। रात का खाना खाकर फिर नीचे काम पर आये और नाद को साफ कर दिया। बाहर का स्थान झाड-बुहार दिया। अब काम खत्म हुआ। सोने के कमरे मे दो-दो आदमियो के लिए ऊपर-नीचे लकडी के सोने लायक लम्बे तख्ते लगे हुए थे। इस प्रकार बारह आदमियो के सोने का प्रबन्ध था। अपने-अपने कम्बल ओढ कर हम लोग सो रहे।

मई १४. प्रातःकाल साढ़े तीन बजे खलासियों का जमादार सम्राट्

की भाँति पहुँचा। वह एक लम्बा-चौडा भद्दा नीग्रो बूचड़ था। सोने वालो को इसका जगाना बहुत बुरा मालूम हुआ, पर क्या करते ? आखिर उठे। सबसे पहले बैलो को जल पिलाना था। बैल बेचारे सारी रात के प्यासे पानी की तरफ अपनी जीभे लपकाते थे। हम लोगो के हाथो से डोलो को छीनते थे। एक ओर से पानी पिलाना आरम्भ किया। ढाई घण्टे के बाद पानी पिलाने से निपटे।

जलपान का समय होगया। जलपान करने के बाद थोडी देर ठहर कर फिर काम पर लग गये। घास के गट्ठो को नीचे से ऊपर खीचना था। यह सब काम मशीन के द्वारा होता था, परन्तु पकड-धकड तो हम लोगो को करनी पडती थी। जहाँ-जहाँ गट्ठो की आवश्यकता होती थी, वहाँ-वहाँ उनको बाँटकर रखते थे। दो एक जगह, तीन दूसरी जगह, इस प्रकार दिन-भर मे हमारी पार्टी के हिस्से मे १५ गट्ठे आते थे। घास के गट्ठे निकाल चुकने के बाद मकई के बोरे निकाले। दस बोरे हमारी तरफ के बैलो के हिस्से मे आये। हम लोगो ने बैलो के आगे मकई डाल दी और अपने काम से निवृत्त होकर ऊपर धूप सेकने चले गये। थोडी देर बाद खाने की घण्टी बजी।

खाने के बाद दो-तीन घण्टे की छुट्टी हम लोगो को मिली। अपनी रुचि के अनुसार खलासियो ने छुट्टी का समय बिताया।

तीन बजे फिर ड्यूटी पर गये। बैलो को घास डाला। इसमे दो घण्टे के करीब लग गए। एक घण्टा आराम किया। भोजन के पश्चात् फिर थोड़ी देर नादो को झाडने-बुहारने मे लग गये। एक घण्टा इसमे खर्च होगया--इसके बाद छुट्टी। सब मिलाकर कुल नौ-दस घण्टे हम लोग काम करते थे।

मई १५ : बोस्टन से जो अमरीकन मजदूर इस स्टीमर पर काम करने के लिए आये थे, उनमें एक हब्शी भी था। मेरी पहले ही दिन से उसके साथ मित्रता होगई। वह बडा हृष्ट-पुष्ट, सुडौल बदन और हँस-मुखथा। सब गोरे मजदूर उससे डरते थे। किसी की हिम्मत नहीं पड़ती

थी कि उसे कुछ कहे। अंग्रेजी का अच्छा कवि होने के अतिरिक्त उसमें कई-एक गुण थे—हाथ देखना (रमल), दूसरे का चेहरा देखकर उसके मन की बात जान लेना, ताश की सभी चालाकियाँ, मुक्केबाजी, कुश्ती इत्यादि कई बातों का वह पण्डित था। जब कभी कोई गोरा मुझे कुछ कहता तो वह हब्शी फौरन उससे लड़ने को मुस्तैद हो जाता था।

आज फुरसत के समय हम पाँच-चार जने ऊपर डेक पर बैठे धूप सेक रहे थे। बातें होने लगीं। बातों-बातों में मेरा गोरों से झगड़ा हो गया, क्योंकि उन्होंने मेरे प्यारे देश के विरुद्ध अपशब्द कहे थे। लड़ाई होने ही वाली थी कि मेरे हब्शी मित्र को पता लग गया। वह भागा-भागा ऊपर आया और आते ही गर्ज कर बोला—

"खबरदार! कोई मेरे साथी को हाथ न लगाए, नहीं तो मारे मुक्कों के खोपड़ी तोड़ दूँगा। तुम लोग इसको अकेला समझते होगे। याद रखो, यह अकेला नहीं है, इसके साथ मैं भी हूँ।"

भला उसके सामने कौन दम मार सकता था? उसकी काली-काली भयावनी आँखें देखकर सब काँप गये। झगड़ा ठण्डा होगया और हम सब नीचे काम करने चले गए।

मई १६ से १९ तक—समुद्र क्षुब्ध रहा। बड़ी कठिनता से ड्यूटी भुगताई। बैल बेचारे कष्ट में रहे।

मई २० : जमादारों का सरदार जो एक नीग्रो बूचड़ था, आज उसकी मेरी झपट हो गई। मेरे साथी मजदूर गार्डर्ड ने बड़ी सहायता की। जमादार के सभी बर्खिलाफ़ थे, क्योंकि वह मजदूरों से अच्छा सलूक नहीं करता था। एक बात मैंने बड़ी अच्छी देखी। दुष्ट जमादार के विरुद्ध जब कोई बात होती, तो गोरे-काले सभी मज़दूर एकता कर लेते। आपस में उनका चाहे कितना ही झगड़ा होता, पर जहाँ वे अन्यायी जमादार को किसी मजदूर के साथ जुल्म करते देखते, फौरन सब के सब उस पर टूट पड़ते थे।

सचमुच यह बात बडे मार्के की है। भारत में इसी के अभाव से सब काम चौपट हो रहे है।

मई २१ और २२ : समुद्रदेव बडे प्रसन्न है। उनकी धूप बड़ी प्यारी लगती है। शान्त जल मे स्टीमर किस नजाकत से चलता है ! दो दिन बडे आनन्द से कटे। काम तो वही करना पड़ता था, परन्तु प्रकृति का सौन्दर्य उस सब थकान को अपने जादू की छड़ी से दूर कर देता था। आज खबर मिली कि कल सवेरे आयरलैण्ड की वीरभूमि का किनारा दिखाई देगा। सभी बडे प्रसन्न है। रात को हब्शी मजदूर ने ताश के खेल दिखला कर सबका मन बहलाया। बडी देर तक धार्मिक विषयो की चर्चा होती रही।

मई २३—आज प्रातःकाल वीरप्रसवा आयरलैण्ड भूमि के दर्शन हुए। हमारे बाये हाथ दूर काली लकीर दिखाई देती थी। यही आयरलैण्ड था। पथ-प्रदर्शक बोट (Pilot) भी आ पहुँचा। वह हमारे स्टीमर को लिवरपूल की ओर ले जा रहा था। पक्षियो के झुण्ड हमारा स्वागत करने के लिए चले आ रहे थे। आज बदली हो जाने के कारण सर्दी विशेष थी। मल्लाह लोग काम मे लगे हुए थे। उनको मरने की फुरसत नही थी।

मई २४ : वह देखो वेल्स की पहाडियाँ ! लिवरपूल के डाक्स भी दिखाई देने लगे। जहाजो के बनने की आवाज आ रही थी। बरकनहेड मे बडे-बडे जहाज बनते है। किस कदर फैक्टरियाँ, मिलें होंगी ! इन्ही की बदौलत इगलैण्ड महान है, धनी है।

आज दिन-भर काम में लगे रहे। बिल्कुल छुट्टी नहीं मिली। रात को निश्चिन्त होकर सो रहे। जानते थे कि कल इस कारावास से निकलेगे—कल मानचेस्टर जरूर पहुँच जायेगे।

मई २५ : मानचेस्टर की ओर जाने के लिए एक नहर बनाई गई है। उसी नहर में से होकर सब जहाज़ मानचेस्टर पहुँचते है। दोनो ओर इंगलैण्ड के ग्रामीणों के ओलतीनुमा एकमंज़िले, दोमंज़िले पक्के मकान दिखाई देते थे। कई स्थानों पर नहर के साथ सड़कें चली गई है,

उन पर घूमने वाले हम लोगो के साथ बाते भी करते जाते थे । ये लोग बडे स्वतन्त्रताप्रिय मालूम होते थे । हरी-हरी घास दूर तक दिखाई देती है । कई घरों की चिमनियो मे से धूआँ उठ रहा था । धूप भी आज बडे मजे की थी। इगलिश दृश्यो को देखते जाते थे । आज काम थोड़ा था ।

एक स्थान पर पहुँचकर स्टीमर खडा होगया । बैल और भेडो के ग्राहक बूचर यमराजो की भाँति स्टीमर पर आये । सब पशु खोल दिये गये। उनको किनारे पर उतार दिया। दीन पशुओं की करुणाभरी आवाजो से मेरी आँखो में आँसू आ गये । मै जार-ज़ार रो रहा था—मगर चुप-चाप । मनुष्य कैसा स्वार्थी है ! स्वार्थ का गुलाम मनुष्य, मनुष्य का शत्रु बन जाता है; फिर भला इन बेचारे गरीब पशुओ की कौन कहे ! संसार मे अभी सभ्यता नही फैली । सभ्य कहलाने वाले अव्वल दर्जे के असभ्य है, जंगली है । उनकी आदते जंगली जानवरो की भाँति है ।

बूचर अपने-अपने पशुओ को गिनकर ले गये । हमारा जहाज़ मान-चेस्टर डेक की ओर चला । १२ बजे स्टीमर अपने स्थान पर पहुँच गया। हम सबने स्नान कर नये कपड़े पहने । खूब बन-ठनकर स्टीमर से निकले। जिसको जिधर जाना था, वह उधर चला । मै अपने अँग्रेज साथी गार्डर्ड तथा अमरीकन दोस्त क्लार्क के साथ मानचेस्टर मे घुसा । मेरे हब्शी मित्र ने दूसरी जगह जाना था; उसका साथ न हो सका ।

मानचेस्टर से मै और मेरा मित्र क्लार्क, दोनो पैदल लन्दन की ओर चल पड़े । ऋतु अत्यन्त सुहावना था । इस वर्ष गर्मी जल्दी शुरू होगई थी और वर्षा का भी कहीं पता न था, इस कारण हम दोनों को पैदल यात्रा करने में कुछ कठिनाई नही हुई । लन्दन की ओर जाने वाली सड़के बहुत सुन्दर बनी हुई है, जहाँ यात्री निर्भयतापूर्वक पैदल भ्रमण कर सकता है । बंगलेनुमा मकानों को देखते हुए, हरी-हरी घास के मैदानो मे विचरते हुए हम जा रहे थे । कई रातें हमने वनस्थलों में पेड़ों के नीचे गुज़ारी । कुछ सर्दी नही लगी । न्यू केसल की ओर जाते हुए हमे कुछ

'होबो' भी मिले; तब मुझे पता लगा कि इंगलैण्ड भी सड़क-निवासी जन्तुओं से खाली नहीं है। इनमे से कई अधेड उम्र के थे और कुछ नौ-जवान पट्ठे भी। वे प्राय: घास के कुप्पो के पास रातें काट देते थे। जब हमे किसी गॉव के पास रात हो जाती थी तो प्राय: यह देखने में आता था कि वहाँ के शराबखाने पियक्कडों से भरे रहते थे, जहाँ ग्रामीण नर-नारी खूब विहार करते थे। हम दोनो किसी पेड़ के नीचे बैठकर किसी विशाल कमरे मे होने वाली रगरलियो को देखा करते। बिजली की रोशनी से वे कमरे जगमगाते थे। इंगलैण्ड के लोग पारस्परिक व्यवहार मे बडे सुसंस्कृत देखने में आए। कई बार ग्रामो में भोजन खरीदने के लिए जब मुझे जाना पड़ा तो इन लोगो ने मेरे साथ बड़ा शिष्ट व्यवहार किया। इस प्रकार इंगलैण्ड के ग्राम्य-जीवन का कुछ दिन आनन्द लेकर मै ऑक्सफोर्ड पहुँच गया और वहाँ से रेल द्वारा लन्दन मे। मेरे मित्र मिस्टर क्लार्क लन्दन मे नौकरी की तलाश करने लगे और मैने अपने भारतीय बन्धु मिस्टर बेन्कर की सलाह से शेपहर्ड बुश में मकान किराये पर ले लिया।

तीसवाँ पुष्प

योरुप में मेरा प्रथम पर्यटन

वर्तमान युग मे योरुप ससार का ज्ञानोद्यान है। यही के फूल पृथ्वी के भिन्न-भिन्न भागो मे ले जाकर लगाये गए और उनके द्वारा भिन्न-भिन्न प्रदेशों मे सौरभ-प्रसार हुआ। संयुक्त राज्य अमरीका मे बसे हुए लोग योरुप से ही गये थे। इसी प्रकार कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड तथा अन्य सब उपनिवेश योरुपीय उद्योग, सभ्यता और संस्कृति के बल मे आज धन-धान्यपूरित हो रहे है। आधुनिक जापान भी योरुप का ऋणी है ओर उसी से उसने यह सब ज्ञानविभूति पाई है। योरुप की पुरुषार्थी जातियाँ अपने अदम्य उत्साह से सारी पृथ्वी पर अपनी सस्कृति का झण्डा लेकर पहुँची है और जहाँ गई है वही उनकी जबर्दस्त छाप दिखलाई देती है। मै अपना विद्याध्ययन समाप्त कर सन् १९११ के मई मास के अन्तिम सप्ताह ऐसे योरुप मे पहुँचा था। उस समय किसी को स्वप्न मे भी ध्यान नही था कि सवा तीन वर्षो के बाद इसी योरुप मे महाभयंकर प्रलयकारी युद्ध प्रारम्भ हो जायेगा। उस समय यहाँ पर अत्यन्त शान्ति विराज रही थी। इग्लिस्तान अपने सम्राट् पंजम जार्ज के सिहासनारूढ़ होने का महोत्सव मनाने की तैयारियाँ कर रहा था; फ्रास अपनी मौज-बहार में मस्त था; जर्मनी का कैसर विलियम अपनी शक्तिशालिनी प्रजा पर निर्भय राज्य करता हुआ नये क्षेत्रो की खोज मे लगा हुआ था और बेचारे बेल्जियम को अपनी आने वाली मुसीबत का कुछ भी ज्ञान न था। ईश्वर की अजब लीला है! भविष्य रहस्यो से परिपूर्ण है। काल बडा मसखरा है। वह सब की खिल्ली उडाकर मुह चिढ़ाता रहता है।

इंगलैण्ड का अपना पैदल भ्रमण समाप्त कर मै लन्दन मे आकर ठहर

गया । लाला हरदयाल जी ने मुझे एक परिचयदायक पत्र भी श्री बेन्कर जी के नाम दिया था, जिसके कारण मुझे वहाँ रहने और घूमने में बडी सुविधा होगई । जबलपुर के श्री ज्ञानचन्द्र जी बैरिस्टर इन दिनो यही थे, उनका भी मुझे सहयोग मिला । एक स्वतन्त्र कमरा किराये लेकर ब्रिटिश-साम्राज्य की इस सुविख्यात राजधानी मे मै विचरने लगा ।

यों तो ससार मे बहुत से बडे-बडे नगर है, किन्तु लन्दन की अपनी खास विशेषताये है । इसकी सबसे प्रधान विशेषता इसका हाइड पार्क नामक उद्यान है, जिसमे हर समय चहल-पहल रहती है । आप और कही न जाये, सिर्फ हाइड पार्क मे घूमे, बैठे । बस इतना ही आपके लिए काफी मनोरजन है । अनुभव-प्राप्ति के लिए यहाँ भरपूर सामग्री मिलती है । संसार के सभी देशो के नागरिक आपको इस बाग मे मिलेगे । इसके सघन कुजो मे न जाने किस-किस मस्ताने ने विहार किया है और कैसे-कैसे षडयन्त्र इसकी सुन्दर स्थलियो मे बैठकर रचे गए होगे । प्रेमी-प्रेमिकाओ का तो यह खास अड्डा है । दुनिया के किसी बाग मे प्रेमियो को ऐसी स्वतन्त्रता नही मिल सकती जैसी यहाँ मिलती है । सायेदार वृक्षो के नीचे पडी हुई बेंचे यदि किसी प्रकार बोल सकें तो वे अद्भुत रहस्यो का उद्घाटन कर सकती है, किन्तु वे मूक है, इसलिए युवक और युवतियाँ इन मूक पदार्थो से बडी मुहब्बत करते है और इन्हे अपना सच्चा मित्र समझकर इनसे कोई बात छिपाते नही ।

ज्ञान-प्राप्ति के लिए तो यह पार्क सचमुच एक ईश्वर-दत्त साधन है । मुफ्त मे बडे-विद्वानो के आख्यान, उनका रोचक वार्तालाप, धार्मिक वादविवाद और कवियो के दरबार यहाँ देखने मे आते है । सन्ध्या के समय आप नित्यप्रति ज्ञान-चर्चा और सत्संग के जमघट पायेगे । एक स्थान पर नही, अलग-अलग जगहो मे जुदा-जुदा विचारो के लोग अपना अखाडा जमाते है । कोई नास्तिक है और अपनी धुन मे सारी दुनिया के लोगो को नास्तिकता के घाट उतारना चाहता है । रोमन कैथो-

लिक मिशनरी अपने लैक्चर झाडते है, प्रोटेस्टेन्ट पादरी लोगों को अपनी ओर खेचते है। सोशलिस्टों का कैम्प अलग ही पड़ा है, वह पूजीवाद की हत्या करने पर उतारू है। कोई मजदूर नेता अपने हको के लिए पार्लियामेन्ट को कोसता हुआ सुनाई देता है। कही कोई इस्लाम का प्रेमी दो, चार, दस आदमियो मे बैठा हुआ अपना जी बहला रहा है। इस प्रकार एक ही समय में एक ही दिन अपनी-अपनी धुन के पक्के प्रचारक लन्दन के इस मशहूर बाग मे अपनी-अपनी तान उड़ाते हुए दिखाई देते है।

लन्दन मे मै थोडे ही दिन रहा। एक दिन भारतीय मित्रो से मिलने के लिए क्रामवेल रोड पर चला गया। वहाँ से लौटते हुए मै हाइड पार्क सैर करने गया। पार्क के दक्षिणी द्वार से जब मैने भीतर प्रवेश किया तो बहुत-से स्त्री-पुरुषो को सघन वृक्षो के नीचे बैठे हुए देखा। यहाँ बैण्ड बज रहा था और सब नागरिक उसका आनन्द ले रहे थे। मै आगे बढ गया। कुछ बुड्ढे लोग घास पर बैठे गुनगुना रहे थे। वे धार्मिक श्रद्धा-युक्त हावभावों से दर्शको को अपनी ओर आकर्षित करने का उद्योग कर रहे थे, किन्तु न जाने क्यो यहाँ के सैलानी इनसे इतने उपराम थे! आठ-दस दर्शक इनसे कुछ फासले पर खडे हुए इन्हे निहार रहे थे, मानो इनसे भय खाते हों। इसी प्रकार एक दूसरा 'झक्की' खड़ा हुआ गला फाड-फाड कर कुछ कह रहा था, जिसे सुन कर लोग हँसते थे और उसे पागल बनाते थे। मै इस तमाशे मे मशगूल था कि इतने मे मेरे कानो मे कुछ शोरोगुल सुनाई पडा। कौतूहलवश मैने अपनी दृष्टि उधर दौड़ाई। देखता क्या हूँ कि एक मौलवी साहब शरई पाजामा पहरे, सिर पर पगड़ी बाँधे और लम्बा तुर्रा लटकाये बाँके-टेढे बने हुए अपने दो अंग्रेज़ साथियो के साथ चले आ रहे है। खासी भीड़ उनके पीछे लगी हुई थी, जिससे पता चलता था कि लन्दन के लोगों के लिए हिन्दुस्तानी मौलवी की पोशाक एक अजूबे की चीज़ थी। जो कोई उस हुल्लड़ को सुनता वह उधर ही लपकता और मौलवी साहब के पीछे हो लेता।

"क्या बात है ?" मेरे मुह से यह बेइख्तियार निकला और मै भी उस ओर बढा । मै तो चूकि अमरीका से आया था, योरुपीय पोशाक में था, अच्छी अंग्रेज़ी बोलता था, इसलिए मुझे कोई पहचान नहीं सकता था । मै उन सब में रलमिल गया । लेकिन भारतीय पोशाक मे ये मौलवी ब्रिटिश साम्राज्य की इस प्रधान नगरी मे कौतुक की वस्तु बन गए थे । भारतवर्ष को अग्रेज़ी शासन के नीचे आये एक शताब्दी हो चुकी थी, लेकिन तिस पर भी अग्रेजी जनता को हिदुस्तानी वेशभूषा के विषय मे बिल्कुल अनभिज्ञता थी, वह उनके लिए कौतूहल की चीज थी । खैर, मै भी इस तमाशे को देखने के लिए भीड के साथ हो लिया । मगरिब की नमाज का समय होगया था । मिया मौलवी उस मजहबी फर्ज़ को अदा करने के लिए एकांत तलाश कर रहे थे, पर यहाँ वह कहाँ ! आखिर उनके साथियो ने घास के एक टुकडे की ओर इशारा कर उन्हें नमाज़ पढने के लिए कहा और वे स्वय पास पडी हुई बेंच पर बैठ गये । मगरिब की नमाज के लिए मौलवी साहब को मशरिक की ओर मुह करना पडा, क्योकि जो हिदुस्तान मे मगरिब है वह लदन मे मशरिक बन जाता है । भाग्य का फेर ही तो है । जब यह मेरे भारतीय बधु नमाज़ पढने के लिए घुटने जोडकर बैठे तो भीड इन्हे घेर कर खडी होगई । नमाज़ उनके लिए एक नई चीज़ थी । गिर्जे मे जाकर खुदा की पूजा करना, इसे तो वे समझ सकते थे, लेकिन खुले मैदान मे बैठना, उठना, झुकना, खडा होना और मत्था टेकना इस प्रकार का कवायदी ढग, ईश्वरीय पूजा, उनके लिए मनोरजन की वस्तु होगई । ऐसा मनोरजन इन लोगो को सरकसों और थियेटरों मे पैसा खर्च करने पर मिलता है, भला वे यह मुफ्त की चीज़ क्यो छोडते ! मौलवी साहब जब आंखें खोलते, तो खुदा की बजाय भीड अर्थात 'शैतान' को सामने खडा हुआ पाते । इनके लिए नमाज़ पढना मुश्किल होगया । बेचारे बेगार पूरा कर, जल्दी-जल्दी रस्म अदा कर, खडे होगए और अपने अंग्रेज़ मित्रों से बोले—

"तोबा ! तोबा !! यहां तो नमाज़ पढ़ना भी आफ़त है ।"

इनके साथी हँसने लगे। एक ने कहा--"लंदन के लोगो ने कभी किसी को नमाज़ पढते हुए नही देखा। उनके लिए यह नई चीज़ है। एक तो आपकी पोशाक बिल्कुल अजीब और दूसरे खुदा की परस्तिश (पूजा) का ढग निराला; इसलिए ये लोग तमाशा देखने के लिए आए है।"

मौलवी साहब ने खफा होकर विरोध के लहज़े में कहा--

"इतनी मुद्दत से अग्रेज लोग हिदुस्तान पर हकूमत करते है, क्या वे मुसलमानो की पोशाक और उनकी नमाज मे नावाकिफ है ? खुदा का यह मज़हब इस्लाम, क्या यहा के बाशिदे इससे ऐसे उम्मी (अनभिज्ञ) है ?"

उनके साथी मुस्कराकर बोले--

"इस साठ लाख की आबादी के शहर मे बहुत ही कम ऐसे अग्रेज़ निकलेगे जिन्हे हिदुस्तान से वाकफीयत हो। फिर यह तो लदन ठहरा ! यहां तो योरुप के दूसरे मुल्को--फ्रास, जर्मनी, इटली, डेनमार्क, हॉलैण्ड आदि--के लोग हज़ारो की तादाद मे आते रहते है। वे बेचारे हिदुस्तानियों की वाक्वत क्या जाने !"

तीनो जने जिधर से आए थे, उधर ही लौट चले और दर्शको का समूह उनके पीछे-पीछे हो लिया। मै अपनी धुन मे आगे बढा।

'Votes For Women' ये शब्द मेरे कान में पड़े। मेरी बडी इच्छा ऐसे व्याख्यानो को सुनने की थी। इसलिए मै उधर ही चला। निकट पहुँच कर मैंने एक ऊँचे छकडे पर तीन स्त्रियां देखी--दो स्टूलो पर बैठी हुई थी और एक खड़ी व्याख्यान दे रही थी। एक झण्डा उनके पास था, जिस पर "Votes For Women" मोटे अक्षरों मे लिखा हुआ था। व्याख्यानदात्री स्त्री कोई पैंतीस वर्ष की होगी, पर थी बडी निपुण। उसने बडे कौशल से स्त्रियों के अधिकारो की चर्चा की और युक्तियो द्वारा सिद्ध कर दिखलाया कि स्त्रियो को राज्याधिकार दिये बिना कभी इङ्गलिस्तान का कल्याण नहीं हो सकता। श्रोताओ ने बहुत से प्रश्न किये, जिनका बडी योग्यता से समाधान किया गया।

यह दृश्य मेरे लिए बड़ा शिक्षाप्रद था। भारत मे तो स्त्रियों को साधारण अधिकारों से भी वंचित किया जाता है और वे अबलायें सब कुछ चुपचाप सहन कर लेती है। वे तो जानती ही नही कि अधिकार किसका नाम है। उनको तो घर मे रोटी पकाने के सिवाय दूसरा ज्ञान ही नही। ऐसी अवस्था में हमारी स्त्रियों का इङ्गलिस्तान की स्त्रियों से भला मुकाबिला क्या! इङ्गलिश स्त्रियो के व्याख्यान सुन कर मै बड़ा ही प्रसन्न हुआ, क्योंकि संसार के किसी देश की जागृति अपना असर दूसरे देशो पर डाले बग़ैर नही रह सकती। आज रेल, स्टीमर, तार तथा अखबारो का जमाना है। इस ज़माने में कैसी भी जागृति हो, उसका प्रभाव दूसरे देशो के समाज पर पडे बिना नही रह सकता और भिन्न-भिन्न देश अपनी-अपनी योग्यतानुसार उससे हानि-लाभ उठाते है।

ऐसे विचारों मे मग्न मै वहा खडा था। उस स्त्री का व्याख्यान अब खत्म हो चुका था। मैने उस व्याख्यानदात्री रमणी के पास जाकर कई-एक प्रश्न किए और उसके साथ टहलता-टहलता थोडी दूर तक चला गया।

इङ्गलिस्तान मे यह समय जबर्दस्त नारी-आदोलन का था। देवी पैन्कहर्स्ट स्त्रियो के सामाजिक और राजनीतिक अधिकारो की रक्षा के लिए कमर कसकर खडी हुई थी। इङ्गलिस्तान मे इस समय तक स्त्रियो को 'वोट' देने का हक नही था। देवी पैन्कहर्स्ट ने स्त्रियो के सामाजिक और राजनीतिक संघ की स्थापना की और सन् १९०८ मे उन्हे औरतों को भडकाने और विद्रोही बनाने के अपराध मे तीन महीने का कारा-वास हुआ था; सन् १९१२ मे इन्हें नौ महीने का जेलदण्ड हुआ, लेकिन शीघ्र छोड दी गई थी। इस प्रकार के वातावरण में मै नई दुनिया से लोटकर लदन मे पहुँचा था। हाइड पार्क ऐसे क्रातिकारी आदोलनो का अड्डा रहा है। यह भाषण-स्वतंत्रता और विचार-स्वातन्त्र्य का केंद्र है। संसार भर के विद्रोही, क्रातिकारी, आतङ्कवादी, नास्तिक और सत्यज्ञान-प्रेमी लंदन के इस उद्यान मे आकर अपने दिल के फफोले फोड़ते है और

उन्हें ऐसी आजादी देने वाले इङ्गलिस्तान की जय मनाते है।

उत्तरी दरवाजे पर दृश्य और ही प्रकार का था। यहाँ थोडे-थोडे फासले पर व्याख्यानदाता सज्जन अपना-अपना राग अलाप रहे थे। कोई ईसाई धर्म का खण्डन बडे जोर-शोर से कर रहा था, कोई रोमन कैथोलिक लोगो के पीछे हाथ धोकर पडा था। कोई वैज्ञानिक ढग से धर्म की व्याख्या सुना रहा था, कोई राजनीतिक उलझनों मे उलझ रहा था। अपनी-अपनी धुन मे मस्त दीवाने अपनी-अपनी कह रहे थे। श्रोता भी उनके साथ-साथ करतलध्वनि कर उनको उत्साहित करते जाते थे। बीच-बीच मे कोई 'टेक' भी लगा देता और लेक्चरार की दिल्लगी उडाकर अपना दिल खुश करता था। पर यह बात रोमन कैथोलिक मत के प्रचारकों के विरोध मे ही देखने मे आई, या लेबर पार्टी के प्रेमी दूसरे दल वालो की हँसी उडाकर व्याख्यानदाता को हैरान करना चाहते थे।

कही-कही शास्त्रार्थ सुनने मे आया। कुछ आदमी घेरा डाले हुए प्रश्नोत्तर का आनन्द ले रहे थे। एक रोमन कैथोलिक नवयुवक अपने प्रोटेस्टेंट विरोधी को आंडे हाथों ले रहा था। वह नवयुवक युक्ति लडाने मे बडा चतुर था और अपने विषय का पण्डित जान पडता था। उसकी सहायतार्थ तीन-चार महिलाये भी उसके पास खडी थी। वे उसको हौसला देती जाती थी। उस प्रोटेस्टेंट नवयुवक का निर्बल पक्ष देखकर मैने उस रोमन कैथोलिक युवक का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर उससे शास्त्रार्थ की ठानी। पर उस बेचारे ने स्पष्ट तौर पर हिन्दू धर्म से अपनी अनभिज्ञता स्वीकार की और वादविवाद से इन्कार कर दिया।

उनका पीछा छोडकर मैं दूसरी ओर चल पडा, जहाँ बहुत-से मनुष्य खडे थे। वहाँ भी बहस हो रही थी। ईश्वरवादी और अनीश्वरवादी भिड़े हुए थे। ईश्वरवादी एक फ्राँसीसी नवयुवक था और अनीश्वरवादी था एक चलता-पुरजा अंग्रेज़। अंग्रेज़ नवयुवक ने अपने विरोधी का नाक में दम कर दिया। यह देखकर मैने फ्राँसीसी युवक की सहायता करना अपना कर्त्तव्य समझा। मैने अनीश्वरवादी से पूछा--

"आप ईश्वरसिद्धि के लिए प्रमाण (proof) माँगते है; कृपया कहिए, प्रमाण से आपका क्या अभिप्राय है ?"

अनीश्वरवादी ने मेरी ओर घूरकर देखा और बोला--"ईश्वर-वादियो के पास ईश्वर के अस्तित्व का कोई सबूत नही है। आप खड़े है, आपके अस्तित्व का सबूत मुझे आँखो से मिलता है, छूने से मिलता है। यही मतलब मेरा सबूत से है।"

इस पर मैने जरा मुस्कराकर कहा--

"अच्छा, तो आप उसी चीज़ को मानते है जिसका इन्द्रियो से ज्ञान हो सके।"

"हाँ, जनाव।"

"लेकिन आप कई-एक ऐसी बातो को मानते है जिनका ज्ञान आप को तो है पर आप दूसरो को उनका ज्ञान नही करा सकते, जब तक कि दूसरा स्वय उन्हे अनुभव न करे।"

"मसलन ?"

"उदाहरण के तौर पर नीद को ही लीजिये। मै आपसे पूछता हूँ--नीद क्या चीज़ है ? कृपया मुझे समझाइये और इसके होने का प्रमाण दीजिये।"

अव ईश्वरवादी का चेहरा खिलने लगा। ईश्वर के प्रेमी श्रोतागण भी उत्साहित हुए। अनीश्वरवादी युवक बोला--

"नीद शरीर की एक अवस्था का नाम है। जव काम करते-करते शरीर थक जाता है, तो वह अवस्था उत्पन्न होती है।"

"यह तो ठीक है, लेकिन जब आप सोकर उठते है और कहते है--'आज हम आनन्द से सोए', बतलाइये, यह आनन्द क्या वस्तु है ? कृपया उसका प्रमाण दीजिये।"

तब अनीश्वरवादी चकराया और बोला--

"इसका ईश्वर के साथ क्या सम्बन्ध है ?"

"जिन लोगों ने ईश्वर को जाना है और उस आनन्द को अनुभव

किया है, वे आपको उसका प्रमाण क्या दे सकते है ! उस आनन्द को आप तभी जान सकते है जब आप उस दशा मे खुद पहुँचे । ईश्वर की सत्ता का आनन्द वही जान सकते है जो उस दशा को प्राप्त हो ।"

"तो क्या आप उसका कुछ भी सबूत नही दे सकते ?"

"हम केवल आपको उसके अस्तित्व सम्बन्धी बाते बतला सकते है और युक्तियो से समझा सकते है, परन्तु उसका ठीक प्रमाण उसे खुद जाने बिना नही मिल सकता । उदाहरणार्थ--एक आदमी ने कभी नारगी नही खाई । जिसने खाई है, वह उसका प्रमाण दूसरे आदमी को क्या दे सकता है ? आवश्यक है कि दूसरा मनुष्य भी नारगी को खावे । तभी उसका उसे ठीक स्वाद मिल सकता है ।"

मेरे इस वार्तालाप से श्रोतागण बहुत ही प्रसन्न हुए । ईश्वरवादी नवयुवक के आश्चर्य की तो सीमा न रही । हमारे लिए यह साधारण बाते है, पर वह फ्रासीसी नवयुवक वार्तालाप के इस ढग पर लट्टू-सा हो गया । जब अनीश्वरवादी ने मुझ से ईश्वर-ज्ञान का मार्ग पूछा, तो मैने योगसूत्रों के आशय को लेकर उसका अच्छी प्रकार समाधान कर दिया ।

गर्मी आज अधिक थी, इसलिए मै पानी पीने चला गया । लौट कर आया तो उस फ्रासीसी नवयुवक ने मुझे घेर लिया । भाँति-भाँति के प्रश्न किये । भारतीय लोगों को वह अब तक काफिर (Heathens) समझता था । आज उसे पता लगा कि भारत की सस्कृत-विद्या अमूल्य रत्नो का आगार है । उसने बहुत-सी पुस्तको का नाम तथा मिलने का ठिकाना मुझसे पूछा और अपनी नोट-बुक पर सब कुछ लिख लिया ।

सन्ध्या-सुन्दरी के आगमन का समय होगया । वह अपनी काली चादर से सब पदार्थों को ढाँकने लगी । लेकिन मनुष्य निशानाथ की तरह बिजली का लैम्प लेकर इस चादर को उतार देता है और अपने आनन्द को कायम रखने का यत्न करता है । हाइड पार्क में भी बिजली के लैम्प जल गए और निशाचर लोग विहार करने के लिए पार्क मे घुसने लगे । मैंने अपने कमरे की ओर जाने का निश्चय किया । मै इधर-उधर देखता

हुआ पार्क-पथ पर जा रहा था। मेरी निगाह एक नवयुवक पर पडी जो मुझे गौर से देख रहा था। मैने अपनी निगाह फेर ली और पार्क से बाहर निकला। सडक पर आकर मै मोटरबस की इतजार मे एक नुक्कड़ पर खडा होगया। जब पीछे घूमकर देखा तो वह नवयुवक भी मेरे पास खड़ा था। मोटरबस आई और मैने शेपहर्डबुश का टिकट ले लिया; उस नवयुवक ने भी ऐसा ही किया। अब मैने उसका नाम-धाम पूछना आवश्यक समझा। पता लगा कि उसका नाम एलबर्ट सिन्कलेयर था। जब हम शेपहर्डबुश पहुँचे, तो हमारा आपस मे खूब परिचय होगया। सिन्कलेयर ने मुझसे कहा कि वह बडा भूखा है और तीन दिन से उसे कोई काम नही मिला। मुझे भी पथ-प्रदर्शक की आवश्यकता थी, इसलिए मैने उससे निवेदन किया कि वह दूसरे दिन से मेरे पास पथ-प्रदर्शक का काम करे। लेकिन उसने गिड़गिडाकर कहा--"मै बडा भूखा हूँ।" इस पर मैने एक शिलिग निकालकर उसे दे दिया और जल्दी से सीढियो पर चढकर तिमंजले मे अपने कमरे मे जा पहुँचा। बिजली की रोशनी से कमरा जगमगा उठा और मै बैठकर उस नवयुवक की अवस्था पर विचार करने लगा--"लदन मे भूखे नौजवान!"

कुछ दिनो के बाद मैने पेरिस का टिकट ले लिया। फोक्सटोन से बोलोन तक इगलिश चैनल स्टीमर द्वारा पार करनी पड़ती है। यद्यपि यह समुद्रयात्रा तो कुछ घटों की ही होती है, लेकिन होती है बडी विकट। समुद्र प्रायः नाराज़ ही रहता है और अपनी भयंकर लहरों से इंगलिश जाति की प्रचण्ड शक्ति का परिचय देता है। मै पेरिस में पहुँच गया। मुझे रू लाफायट नामक गली में जाना था। जिस बिजली की गाड़ी में मै बैठा हुआ था उसके कडक्टर से मैने अँग्रेजी मे अपने निर्दिष्ट स्थान पर गाडी रोकने के लिए कहा। वह अँग्रेजी समझता नही था। मुझे बडा आश्चर्य हुआ। मैने सोचा--"क्या इतने थोडे-थोडे फासले पर योरुप में भाषायें बदल जाती है? सयुक्त राज्य अमेरिका मे तो तीन हज़ार मील यात्रा करने के बाद भी भाषा न बदली और मैने लोगो को भाषा के सूत्र

में बँधे हुए पाया। यहाँ योरुप मे इगलैण्ड और फ्रॉस के बीच में इतना थोड़ा फासला, पर दोनो देशो के लोग एक-दूसरे की ज़बान नहीं समझते।" मेरे लिए यह अचम्भे की बात थी। गाडी मे बैठे हुए एक सज्जन ने उठकर मेरी सहायता की और जब मेरी गली आ गई तो मुझे धीरे से वहाँ उतार दिया।

पेरिस में इन दिनो भारतीय क्रान्तिकारियो का जमघट था। मैडम कामा, श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा, चट्टोपाध्याय तथा अन्य कई हिन्दुस्तानी यहाँ रहते थे। मेरी इन सबसे मुलाकात हुई और इनकी सभाओ मे मैने बडे जोशीले, गर्मागर्म व्याख्यान सुने। मुझ पर इन लोगो ने कुछ प्रभाव नही डाला, क्योकि मै जानता था कि जिस देश के छ. फी-सदी लोग मुश्किल से पढ़ना-लिखना जानते हैं और जहाँ ज़रा भी धार्मिक सहनशीलता नही है, वहाँ ऐसी गर्म बातें किसी काम नही आ सकती।

एक दिन अचानक मुझे शर्मण मिल गया—वही शर्मण जो बोस्टन मे मुझे आइबेरियन बैल-जहाज पर चढा गया था। उसे पेरिस मे देखकर मैं बडा विस्मित हुआ। बाद मे पता लगा कि वह सयुक्त राज्य अमेरिका और योरुप मे खुफिया पुलिस का काम करता था। उसने बोस्टन से ही मेरा पीछा किया था। उसे मेरा पेरिस जाने का प्रोग्राम मालूम था, इसलिए वह मेरे सब कार्यो का पता लगाने के लिए मुझसे पहले ही पेरिस पहुँच गया था। उसका पिता कलकत्ते मे पुलिस विभाग मे किसी बडे ओहदे पर था। पेरिस मे मै कई दिन रहा और इसके मुख्य-मुख्य स्थानो को घूम-घूमकर देखा।

पेरिस से हम दोनों स्विट्ज़रलैण्ड गए और जगत्प्रसिद्ध जेनेवा नगर के एक होटल मे जाकर ठहरे। यहाँ भी शर्मण ने मेरी गति-विधि पर पूरी निगाह रक्खी और जो-जो चिट्ठियाँ मैने भेजी, उन सबका पता नोट कर लिया। जेनेवा झील का सौन्दर्य सचमुच अनुपम है। इसके किनारे-किनारे रमणीक विहारस्थल हैं, जहाँ दूर-दूर के घुमक्कड़ आकर नैसर्गिक छटा का मज़ा लेते हैं। अपने मनोहर दृश्यों के लिए यह नगर

संसार-भर मे प्रसिद्ध है, इसीलिए दुनिया के धनी-निर्धन इस नगर मे खिचे चले आते है। यह प्राकृतिक रत्नो का आगार है। स्वाधीनता के पुजारी यहाँ निर्भय घूमते है और मनमाने क्रान्तिकारी ग्रन्थ लिखते है। मै भी इस नगर मे कुछ दिन रहा। सयुक्त राज्य अमेरिका मे पैदल घूमने वाले इस भारतीय 'होबो' के पास भला इतना पैसा कहाँ था जो जेनेवा मे चैन की बंसी बजा सकता! इसलिए वहाँ से जल्दी चल पडा और लोजेन होता हुआ इटली के प्रसिद्ध बन्दरगाह जिनोआ पहुँचा। यही से मैने भारत लौटना था। जर्मन-कम्पनी के दफ्तर में जाकर मैने टिकट खरीद लिया और निश्चित तिथि पर जर्मन-स्टीमर मे बैठकर इटली से भारत की ओर चला।

बस, योरुप मे मेरा प्रथम पर्यटन इतना ही हुआ। मै जर्मनी न जा सका, क्योकि मेरे पास पैसा नही था। यदि मुझे यह मालूम होता कि मैने इस योरुप मे कई बार लौटकर आना है तो मै किसी-न-किसी प्रकार जर्मनी देख लेता, क्योकि सन् १९११ का समृद्धिशाली जर्मनी देखने लायक चीज़ थी। सात करोड जर्मन किस प्रेम और श्रद्धा से पितृभूमि को आगे बढा रहे थे, उनकी जगी ताकत कैसी जबर्दस्त थी और उनके नगरो मे पुलिस का कैसा कडा प्रबन्ध था—सचमुच उस काल के महाप्रतापी और महाभिमानी जर्मन नागरिक निरीक्षण करने योग्य थे। पर भविष्य कौन जान सकता है! अपना विद्यार्थी-जीवन समाप्त कर मुझे इस समय केवल एक ही धुन थी—स्वतन्त्र विचारो का भारत मे प्रचार। उसी धुन मे मस्त मै स्टीमर मे बैठा हुआ भूमध्यसागर पार कर रहा था।

पाठक, यहां मैने आपको अपने प्रथम योरुप-पर्यटन की कथा सुनाई है। तब से लेकर आज सन् १९५४ तक, इन ४३ वर्षो मे कितना पानी पुलों के नीचे से गुजर गया है और कितना परिवर्तन ससार मे होगया है! जो क्षण निकल जाता है, वह फिर वापिस नही आता। धन्य है वे जो समय का मूल्य समझकर इसे सार्थक करने का प्रयत्न करते है और सदा जीवन-यात्रा में आगे पग बढाते रहते है। लेकिन कितने है ऐसे?

इकतीसवाँ पुष्प

अल्मोड़ा के शिखर पर

भारतवर्ष अपनी प्राकृतिक शोभा के लिए सारे ससार मे प्रख्यात है। उत्तर मे हिमालय की मनोहर भूश्री दूर-दूर के यात्रियों को अपनी ओर बुलाती है। आर्यावर्त के सिरताज इसी हिमालय मे एक टुकडा कुमायू की पहाडियो का है, जिसके तीन जिले—अल्मोड़ा, नैनीताल और गढवाल—भारतीय भूगोल मे प्रसिद्ध है। इनमे से नैनीताल ओर अल्मोडा अपने संयमित ऋतु के कारण अत्यन्त नीरोग प्रदेश माने जाते है। सरकार की ओर से क्षय-रोगियो के लिए एक सर्वसाधनसम्पन्न अस्पताल यहाँ पर भुवाली मे बना है और अल्मोडा मे भी प्रत्येक प्रान्त के सैलानी वायु-परिवर्तन के लिए आते है।

मेरा तो इन पर्वतो के साथ बडा गहरा सम्बध है। वर्षो तक मै कुमायू के जगलो मे विचरने के लिए निरन्तर आता रहा। श्री कैलाशजी की यात्रा करते समय भी मै अल्मोडा के दुर्गम पहाडो को लाँघकर हिमालय को पार करता हुआ मानसरोवर पहुँचा था; वहाँ से लौटते समय भी मैने इन्ही जिलो की रमणीक वनस्थलियो मे राते बिताई थी। इस कारण हिमालय का यह टुकडा मुझे अत्यन्त प्यारा है।

यह सन् १९१२ की वात है। मै पहली बार अल्मोडा आया था—सो भी नगरवासियो के अत्यन्त आग्रह पर। अल्मोडा नगर के बाहर नारायण तिवाडी दीवाल के पास एक छोटे से घर मे डेरा लग गया और मै यहाँ की प्राकृतिक शोभा का लुत्फ लेने लगा।

एक दिन प्रातःकालीन कर्मों से निवृत्त होकर मै सैर को चल पड़ा। सूर्य देवता पहाडी के पीछे से झाँक रहे थे। अभी घाटी में उनका दिव्य प्रकाश पहुँचा नही था। कुछ शीत होने के कारण मैने अपना गरम कोट

पहन लिया। छाता बगल मे दबा मै बाहर निकला।

मेरा स्थान शहर से दो मील उत्तर की ओर सडक के किनारे पर था। यही सडक कैलाश की ओर जाती है। बस, इसी सडक पर मै हो लिया। सामने दाहिनी तरफ घाटी मे इक्के-दुक्के घर, सीढियों जैसे खेत। सडक के किनारे खड़े होकर घाटी मे निगाह दौडाइये—घर कैसे छोटे जान पडते है! दाहिनी तरफ बराबर ऊँचाई चली जाती है।

बगले से आगे की पहाडी ईसाई पादरियो ने सम्भाल रक्खी है। इसी पर चढ कर मैने अल्मोडा के शिखर से नैसर्गिक दृश्य देखने को ठानी। यह पहाडी देवदारु के वृक्षों से लदी हुई थी। पवन देवता इन पादपो के साथ क्रीडा कर रहे थे। उनकी सर-सर ध्वनि का सुख लेता हुआ मै पहाडी पर चढ गया।

सामने नन्दादेवी के दर्शन हुए। बर्फ से ढकी हुई चोटियाँ सूर्य की रश्मियो के साथ क्रीडा कर रही थी। क्या ही अनुपम छटा थी! भारतवर्ष का यही श्वेताग द्वारपाल है। नन्दादेवी इसी की पुत्री है। अपने पिता की गोद मे आकाश से बाते करती हुई किस अभिमान से देवी चारो ओर निहार रही है, परन्तु बोलती नही।

बोलो, देवी बोलो। मैने क्या अपराध किया है जो मेरे साथ बाते नही करती हो? देवी, बतलाओ तो सही, इस मौन साधन का कारण क्या है? हे हिमसुते! तेरे दर्शन से मै पवित्र होगया हूँ, परन्तु मै तेरे श्रीमुख से अपने पूर्व महापुरुषों की कीर्ति का कुछ ब्योरा सुनना चाहता हूँ। तैने तो उनकी स्वतंत्र छटा देखी है। पिता हिमाचल ने तो तुमको आर्य्यों के गौरव की पूरी गाथा सुनाई होगी। बुद्ध के समय का स्वतंत्र भारत तो तुमने भी अच्छी प्रकार देखा होगा। देवी, कृपा करके बतलाओ। मुझे प्राचीन स्वतंत्र भारत की कथा जानने की बड़ी प्रबल इच्छा है।

नन्दादेवी ने चुप्पी साध ली और अश्रु बहाने लगी। उसके इस करुण-क्रन्दन का अभिप्राय मै समझ गया। मुझ से वह दृश्य देखा न गया और

मैंने बड़ी श्रद्धा से पूज्य हिमालय को नमस्कार कर नीचे घाटी की ओर दृष्टि डाली। अल्मोड़ा के इस शिखर पर से स्याही देवी का घना जंगल दिखाई देता है। नगर के बंगले भी सफेद चमकते हुए भले मालूम पड़ते है। पास के पेड के नीचे पत्थर पर मै बैठ गया और शीतल वायु का आनन्द लेने लगा।

"स्वामीजी, नमस्कार।" इन शब्दो ने मुझे चौका दिया और मैंने जिधर से आवाज आई थी उधर ही मुँह फेरा। बागेश्वर से आने वाली सडक पर दो नवयुवक आ रहे थे और वे जहाँ मै बैठा था वही आकर खड़े होगए। मैंने उन्हे सामने बैठने का इशारा किया। तब एक ने मुझ से पूछा—

"स्वामीजी, हम बागेश्वर से आ रहे है। आपका आगमन सुनकर हमारी इच्छा आपके दर्शनो की हुई। हमारे मन मे एक बात जानने की बड़ी लालसा है, क्या आप हमे बतलायेगे ?"

मै उनके मुँह की ओर कुछ देर तक देखता रहा। बडे विनयी ये लडके थे। मैंने मुस्कराकर कहा—

"जो बात आप लोग जानना चाहते है, उसे शौक से पूछिये।"

मेरे शब्दो से उत्साहित होकर उस लडके ने कहा—

"हम यह जानना चाहते है कि ये बडे-बडे पहाड कैसे बन गये। भूमि समतल होनी चाहिये थी, जहाँ सब प्राणी आसानी से आ-जा सकते। कृपया हमे बतलाइये कि ऐसे बडे-बडे दुर्गम पर्वत कैसे बन जाते है ? इनकी उत्पत्ति कैसे होती है ?

मैंने घूमकर फिर नन्दादेवी की ओर देखा। वह अपने सौदर्य मे अद्वितीय जान पडती थी। 'इस नन्दा की उत्पत्ति कैसे हुई, लड़के यह जानना चाहते है', मैंने मन मे कहा। फिर लडकों की ओर मुँह कर मैंने उत्तर दिया—

"मेरे बच्चो, तुमने मुझ से पदार्थ-विज्ञान की बात पूछी है। स्वतंत्र देशों के स्कूलों में लड़कों को ये सब बातें प्रारम्भिक शिक्षा में ही सिखलाई

जाती है। पण्डितों ने ऐसे वैज्ञानिक विषयों पर सरल भाषा में छोटी-छोटी पुस्तकें लिखी है, परन्तु इस देश मे पदार्थ-विज्ञान मे साधारण जनता की रुचि नही। मै तुम्हारा यह प्रश्न सुनकर बडा प्रसन्न हुआ हूँ। हमे चाहिए कि हम ईश्वर-रचित इन पदार्थो के विषय मे बराबर सोचा करे और अन्वेषण किया करे।

"देखो, वर्षा ऋतु मे जब बडी बाढ आती है, नदियाँ उबलने लगती है, पर्वतो से जल बडे वेग से नीचे उतरता है, तब उसकी प्रचण्ड शक्ति से बडे-बड़े वृक्ष उखड जाते है। तुमने देखा होगा कि वर्षा मे नदियो का पानी बडा मटियाला हो जाता है। लाखो मन मिट्टी पानी के द्वारा खिच-खिच कर श्री गंगाजी जैसी महान् नदी मे आ जाती है और यह भागीरथी उस सब मिट्टी को ले जाकर सिधु मे गिरा देती है। समुद्र मे मिलने वाली सभी नदियो के दहानो पर मिट्टी आकर जम जाती है और छोटे-बडे द्वीप से बन जाते है। नदी के उस रूप को डैल्टा कहते है। वहाँ पर उस बडी नदी की कई धाराये अलग-अलग होकर समुद्र मे गिरती है। इस प्रकार पृथ्वी पर बहने वाली सभी नदियाँ महासागर मे प्रत्येक वर्ष मिट्टी, पत्थर, रेत, पेड आदि गिराती जाती है। समुद्र के नीचे इन सबकी तहे जमने लगती है। समुद्र का खारा पानी अपने भयंकर बोझ से इन्हे दबाता रहता है। हजारो वर्षो तक ऐसी क्रियाये जारी रहती है। तब बनते-बनते समुद्र के नीचे पहले पहाडियाँ, पीछे विशाल पर्वत-मालाये बन जाती है। अट-लाटिक महासागर, प्रशात महासागर और अरब के सागर के नीचे छिपी हुई ऐसी कितनी ही पर्वत-मालाये है। अटलाटिक महासागर तो साढे सात मील की गहराई रखता है। इसी प्रकार प्रशात महासागर मे सिधु के अन्दर खनिज-पदार्थों से भरे हुए पहाड समाधि लगाये बैठे है।

"यदि कल को इन महासागरो मे बड़ा भूकम्प आ जाय, अन्दर से ही कोई ज्वालामुखी फूट पडे तो उसके प्रचण्ड धक्को से ये समाधिस्थ पर्वत-मालायें बाहर निकल आयेगी और दूसरी नीचे की भूमि समुद्र की तह मे चली जायगी। प्रकृति माता ऐसा परिवर्तन करती रहती है और

नित्य नये द्वीप रचती रहती है। हिमालय भी इसी प्रकार पहले समुद्र के नीचे था और इसकी चोटियो पर समुद्र लहरे मार रहा था। भूकम्प ने इसे बाहर निकाल दिया और ससार का सिरताज बनाकर भारतवर्ष की शोभा बढाई।"

दोनो लडके आश्चर्य-चकित होकर मेरी बाते सुनते रहे। तब एक ने कहा—

"स्वामीजी महाराज, इसका क्या प्रमाण है ?"

मैंने मुस्कराकर उत्तर दिया—

"मेरे प्यारे, अन्वेषकों ने खोजते-खोजते हिमालय के अन्दर उन सब जन्तुओ की हड्डिया पाई है जो समुद्र मे निवास करते है। उन्ही की खोज का नतीजा मैंने तुमको बतलाया है। हम लोगों मे खोज की आदत नही रही, गप्पो पर विश्वास करने का स्वभाव-सा होगया है। हम यही मानते है कि पृथ्वी शेषनाग के फण पर खडी है या किसी बैल के सीग पर। जब वह बैल थककर अपना सीग बदलता है तो भूकम्प आ जाता है। हमारी अबोध जनता को ऐसी गप्पे सुनाकर मूर्ख लोग ठगते है।"

धूप चढ गई थी। मै अपने निवास-स्थान की ओर चला। दोनो नव-युवको ने अल्मोडा शहर की ओर जाना था, सो वे भी मेरे साथ हो लिये और वार्तालाप करते हुए मेरी कुटी तक आये। चलते समय मैंने उनसे पूछा—

"क्या तुम लोगो की तसल्ली होगई ? क्या तुम लोग पर्वतो की उत्पत्ति का कारण जान गये ?"

मैंने देखा कि वे विनयी लडके अत्यन्त सन्तुष्ट होकर मुझ से विदा हुए और मेरा चित्त भी आज के वार्त्तालाप से प्रसन्न था।

बत्तीसवाँ पुष्प

पार्टी-पालिटिक्स के पाप

सयुक्त राज्य अमेरिका के शासन-क्षेत्र मे दो मुख्य पोलिटिकल पार्टियाँ है—रिपब्लिकन और डेमोक्रैट पार्टी । यही दो पार्टियाँ प्रत्येक शासन-चुनाव के मौक़े पर अमेरिका के शासन-भार को सँभालने और सरकारी ओहदों की लूट मचाने के लिए राजनीतिक लड़ाई के मैदान में उतरती है। उत्तर, पूर्व, कुछ पश्चिम और कुछ मध्यवर्ती रियासतें रिपब्लिकन टिकट पर वोट देती है। सारा दक्षिण और कुछ अन्य रियासते डेमोक्रेट टिकट का पक्ष लेती है। पार्टियों के वोट का वहाँ प्राय: ऐसा ही हाल है जैसा भारत में जात-पाँत का। रिपब्लिकन दादा का पोता रिपब्लिकन ही होता है। कभी-कभी कोई खास ज्वलन्त प्रश्न देश के सामने उपस्थित हो जाने पर वोट देने वाले पार्टियाँ बदल भी लेते है। अमेरिका के पूजीप्रधान देश होने के कारण साम्यवादी पार्टी अपना जोर पकड़ने मे असमर्थ है।

इन पार्टियों के प्रबन्धकों, संगठनकर्त्ताओ, चौधरियों तथा गुर्गो को राजनैतिक चौधरी (Political Bosses) कहते है। इन्ही के हाथ में पार्टी की सारी शक्ति रहती है। यही कर्त्ता-धर्त्ता (King-makers) कहलाते है। पेटरिक सुलीवन नाम का एक मशहूर पोलिटिकल गुर्गा एक बार रिपब्लिकन पार्टी का सर्वे-सर्वा था। जब उसकी उम्र अस्सी वर्ष की होगई तो उसने राजनीतिक क्षेत्र से छुट्टी ले ली और समुद्र-तटस्थ अपने बंगले में जाकर रहने लगा।

एक रोज संध्या के समय वह अपने घर के चबूतरे पर आरामकुर्सी पर बैठा हुआ समुद्र की ओर देख रहा था। गर्मी की ऋतु थी। सागर-समीर सुखद चाल से चल रहा था। इतने में एक नौकर ने आकर एक

कार्ड सुलीवन के हाथ में दिया। बूढ़े ने चश्मा लगाकर कार्ड देखा—'एडमण्ड एडवर्ड ब्राउन' (Edmund Edward Brown) नाम उस कार्ड पर लिखा था। मालिक का हुक्म पाकर नौकर आगन्तुक को बुला लाया। एक सुन्दर चेहरे वाले नौजवान ने आकर मुस्कराते हुए मिस्टर सुलीवन से हाथ मिलाया। बूढे ने उसका हाल पूछा। वह उसके परम मित्र का लाड़ला पुत्र था और राजनीतिक क्षेत्र मे उतरने की तैयारी कर रहा था। वह रंगरूट था, इसलिए बडी श्रद्धा से अपने बाप के पुराने दोस्त से उपदेश लेने आया था। ब्राउन ने न्यूयार्क के कोलम्बिया विश्वविद्यालय से राजनीतिक विज्ञान में एम० ए० की डिग्री हासिल की थी। वह एक सच्चरित्र सुशील नवयुवक था। कालेज से निकल कर, अध्ययन समाप्त कर, वह योरुप घूमने गया। वहाँ अचानक उसके हाथ में जर्मन भाषा की पुस्तक 'सिद्धार्थ' लग गई। उस पुस्तक ने उस पर विचित्र प्रभाव डाला। विश्वविद्यालय में जर्मन भाषा का पर्याप्त ज्ञान उसने प्राप्त किया था। उस पुस्तक के महापुरुष—महात्मा बुद्ध—के उपदेशों ने उसे मुग्ध कर दिया। वह एक नया आदमी बनकर घर को लौट आया।

योरुप से वह नवम्बर मास मे लौटा था। तब से वह अमेरिका की राजनीति का दुबारा अनुशीलन करने लगा। छः महीने उसने मनन और अध्ययन में बिताये। पिता की आज्ञा से वह आज पहली बार मि० सुलीवन से पार्टी-पालिटिक्स का पाठ पढ़ने आया। उसका बाप बड़ा धनी था। नवयुवक ब्राउन के पोलिटिकल-चौधरी हो जाने से उसके पौबारा हो जाते थे, इसीलिए उसने अपने पुत्र को बूढ़े सुलीवन के पास शिक्षार्थ भेजा था।

नवयुवक ब्राउन को देखकर बूढ़ा आयरिश खूब हँसा और बोला—"तो अब तुम पालिटिक्स में पैर रखने के लिए कमर कस चुके हो?"

नवयुवक—"जी हाँ।"

बूढ़ा—"बड़ी अच्छी बात है। यह धंधा सब धंधों से कमाऊ है। इसमें धन और शक्ति (Money & Power) दोनों मिलेंगे। वे भी

बड़ी आसानी से।"

नवयुवक ने कुछ विस्मित होकर पूछा—"बड़ी आसानी से कैसे ?"

बूढ़ा, ब्राउन की हैरानी देख कर, खिलखिला कर हँसने लगा। उसके सोने के दाँत चमकते हुए दिखाई दिये। वह ब्राउन की तरफ़ कुछ देर तक देखता रहा। फिर कहने लगा—

"मैं दस वर्ष की उम्र में आयलैंण्ड से अपने बाप के साथ अमेरिका आया था। मने सब किस्म के धंधों में हाथ लगाया, लेकिन पालिटिक्स जैसा सहज आमदनी वाला धंधा कोई नही देखा। इसमें ज़बान की करामात तथा शतरंज के दाव-पेच है। बस, उनसे रुपया और ताक़त दोनों मिलते हैं।"

नवयुवक ने उत्सुकता से फिर पूछा—"कैसे ?"

बूढ़ा—कैसे ? देखो ! पहले तुम यह खूब समझ लो कि जनता तथा वोटर्स (राय देने वाले) को चकमा देने, मौका देख कर पैंतरा बदलने, हवा का रुख समझ कर बात करने और इर्द-गिर्द के छोटे-छोटे कुत्तों को माल चटाने पर पार्टी-पालिटिक्स के सारे खेल का दारोमदार है। पब्लिक के सामने खूब उनके हितों का राग गाना, अपने आपको बडा स्वार्थत्यागी बन कर दिखलाना और भौकने वाले बक्की आदमियों को पैसा चटा कर काबू मे रखना, ये पार्टी-पालिटिक्स की ए बी सी डी (वर्णमाला) है। बिरोधी गालियाँ दे तो आप चुप रहें, पर विरोधी पर झूठे आरोपों का तूफान लाद दें।"

नवयुवक—(हैरानी से) "बिल्कुल झूठी बातें ?"

बूढ़ा—"हाँ, बिल्कुल झूठी।"

नवयुवक—"जनता क्या कहेगी ? क्या वह बख़िलाफ न हो जाएगी ?"

बूढ़े ने घृणासूचक लहजे में उत्तर दिया—"जनता ! जनता बेवकूफ पाजी होती है। वह उसी को वोट देती है जो ज्यादा बक्की, मक्कार और साज़िशी होता है।"

नवयुवक—"आखिर लोग पता तो लगायेंगे ?"

बूढा—"पता-वता कुछ नही लगाते। वे दल बाँध लेते है। वे शहरों, क्लबों और अपनी-अपनी सोसाइटियो की नाक रखना चाहते है। उन्हें उम्मीदवार की सेवाओ, उसके स्वार्थ-त्याग तथा योग्यता का कुछ ध्यान नही रहता। छोटे-छोटे कुत्ते भौक-भौक कर बहका देते है।"

बूढा समुद्र की ओर देखने लगा और नवयुवक बूढे की तरफ। कुछ देर तक सन्नाटा रहा। फिर मि० सुलीवन ने कहना शुरू किया—

"देखा लड़के! पार्टी पालिटिक्स सारा धूर्तता का खेल है। जनता की याददाश्त बड़ी छोटी होती है। वह अपने पुराने देश-भक्तों को भूल जाती है और छटे हुए पैतरेबाज, जबान के तर्रार उम्मीदवार के पीछे लग जाती है। मगर उस उम्मीदवार के मददगार छोटे कुत्ते होने चाहियें।"

नवयुवक—"ये छोटे कुत्ते कौन?"

बूढ़ा हँसकर बोला—"छोटे कुत्ते नही जानते? अरे नादान, छोटे कुत्ते ही तो चुनाव की जान होते है। ये वे लोग होते है जिनका ईमान पैसा होता है, जिनको प्लेटफार्म पर जोर जोर से बकना आता है, जिनकी योग्यता सिर्फ झूठ बोलने, तारीफ के पुल बाँधने और देशहित के राग गाने मे रहती है। वे जूठे टुकडो की तलाश मे पोलिटिकल मैदान मे इधर से उधर और उधर से इधर घूमा करते हैं। वे 'जहाँ देखें तवा-परात, वही गंवावे सारी रात'—इस कहावत पर चलते है। जय-जयकार करने मे वे बडे होशियार होते है और मुट्ठी गर्म होते ही जय पुकारने लगते है। हम लोग इनको पहले काबू कर लेते है।"

नवयुवक के हृदय पर गहरी चोट लगी। वह घायल होकर बोला—"तो पार्टी-पालिटिक्स निरी बेईमानी ही है?"

बूढे को नौजवान की हालत पर कुछ तरस आगया। उसने ज़रा मीठे लहज़े में फ़रमाया—

"मेरे बेटे, पार्टी-पालिटिक्स में ईमानदारी का कोई काम नहीं; यह सोलह आना बेईमानी का धन्धा है। यह रोज़गार है। गवर्नमेंट की बाग-

डोर हाथ में आने से हम संयुक्त राज्य अमेरिका के मालिक बन जाते हैं। फिर हमारे आदमी ओहदे सँभालते हैं।"

नवयुवक--"पर जनाब, चुनाव तो इसलिए किया जाता है ताकि देश के सच्चे सेवक शासन की बागडोर सँभाले और मुल्क का कल्याण करे।"

बूढे ने गम्भीर होकर उत्तर दिया—"तुम्हारा कहना सच है। पर लोग गधे है। वे जबान के तर्रारों, पैंतरेबाजो और भौकने वाले कुत्तों के जाल में फँसकर दल बना लेते है, जिद्द कर लेते है। वे देश और जाति का कल्याण भूल जाते है। वे अपने अधिकारों के दायित्व का ख्याल नही रखते। वे खुशामदी और दगाबाजो के पीछे चलने लगते है।"

नवयुवक--"इससे तो देश की हानि होती है।"

बूढे ने कुछ उत्तर नही दिया। वह समुद्र की लहरों की ओर देखने लगा। नवयुवक उसकी ओर टकटकी लगाये देख रहा था। थोडी देर के बाद बूढे ने ब्राउन की ओर मुँह कर कहा--

"लडके, मै तेरे दिल का दर्द समझ रहा हूँ। अफसोस, मैंने तुम्हे सच्ची बातें बतला दीं। अब तुमसे क्या छिपाना है? मेरा चालीस वर्षो का पोलिटिकल अनुभव है। मै तुम्हें कह सकता हूँ कि स्वाधीनता और स्वराज्य बडी बरकते है, पर चैतन्य और जागरूक जनता के लिए--ऐसी जनता के लिए जो स्वयं सोचना जानती है। नही तो सच बात यह है कि स्वाधीनता और स्वराज्य भी बिकाऊ चीजे है, जो पार्टी-पालिटिक्स के दलालो के हाथ मक्कारी के भाव बिकती है।"

नवयुवक बडा बेचैन हुआ। कुछ देर तक वह सन्नाटे मे रहा। फिर धीरे से उसने कहा--"आखिर शासन को सर्वोत्तम बनाने का कौन-सा तरीका है? क्या आपने अपने पिछले चालीस वर्षों के अनुभव में इस महत्वपूर्ण विषय पर कभी विचार नहीं किया?"

बूढा सुलीवन कुछ मिनटों तक एडमण्ड ब्राउन के चेहरे की ओर

देखता रहा। उसने अपनी आँखे उसकी आँखों में गड़ा दी, मानों नवयुवक के हृदय की बात जानने की चेष्टा कर रहा हो। फिर वह मुस्करा कर कहने लगा--"बेटे, यह तुमने बड़ा कठिन प्रश्न किया है। इसे तो तुमने किसी विश्व-विद्यालय के प्रोफेसर से पूछना था। खैर, मै अपने अनुभव की बात तुमसे कहता हूँ। जब तक जनता ऐसी शिक्षित न हो जाय कि उम्मीदवार को वोटों की भीख न माँगनी पडे, तब तक यही अवस्था रहेगी। समाज में कुछ लोग ऐसे सदा रहेगे जो दूसरो के भोलेपन, उनकी जहालत और उनकी उदासीनता का नाजायज़ फायदा उठावे। वे ईमानदारी से पैसा न कमाकर धूर्त्तता से ही धन और शक्ति प्राप्त करने का उद्योग करते रहेगे। शासन को सर्वोत्तम बनाने का तरीका मेरी सम्मति मे यह है कि धन मे जो ऐश्वर्य और शक्ति खरीदने की ताकत है वह नष्ट कर दी जाये और उसके स्थान पर कोई दूसरी चीज समाज मे नेता बनने की कसौटी निश्चित हो।"

नवयुवक के हृदय मे स्फूर्त्ति-सी आ गई। उत्साहभरे लहज़े मे वह बोला--"मै आपके साथ सहमत हूँ। धन ही विपत्ति का मूल है और इच्छाएँ ही सारे दुःख का कारण है। यदि हम इच्छाओ को कम कर सेवा और त्याग को समाज मे नेता बनने की कसौटी करार देंगे, तो धन का यह विष नष्ट हो जायगा। आप इस पर क्या कहते है?"

बूढे के चेहरे पर तेज-सा आ गया। उसने उत्तर दिया--"पार्टी-पालिटिक्स के पापों को समूल नष्ट करने का नुस्खा तुमने थोडे शब्दो में कह दिया है। जब जनता स्वार्थ-त्यागी नेताओ के लिए स्वयं वोट देने को उद्यत हो जाया करेगी, तब पार्टियो का जाल छिन्न-भिन्न हो जायगा और समाज में एक नये युग का प्रारम्भ होगा।"

नवयुवक खड़ा होगया। बूढ़े सुलीवन के साथ उसने बड़ी कृतज्ञता से हाथ मिलाए और धन्यवाद देकर बोला--"आज आपने मुझे बहुमूल्य शिक्षा दी है। अपने वर्षों के अनुभवों का निचोड़ आपने मुझे दे दिया है।"

तेंतीसवाँ पुष्प

गढ़वाल के गिरिशृङ्गों पर

सन् १९३२ के शीतकाल में मै नई देहली मे आ गया था। लाला नारायणदत्तजी ठेकेदार ने मुझे अपने नये बंगले पर एक कमरा रहने के लिए दे दिया और खाने-पीने की सब व्यवस्था कर दी। यही पर मै दो वर्ष तक अपना केन्द्र बनाकर रहा। प्रचार के लिए बाहर जाया तो करता था, किंतु घूमकर फिर यही आ जाता था। इसी वर्ष के अप्रैल मास में जब देहली की गर्मी ने मुझे बहुत सताया तो मुझे फिर कुमायूँ की पहाड़ियाँ याद आ गई और मैंने गढ़वाल जाने का निश्चय किया।

गढवाल मे यद्यपि मै पहले भी घूम चुका था, किंतु अब फिर उन पुरानी स्मृतियों को ताज़ा करने की और नये गिरिशृंग देखने की इच्छा हुई। उस पर्यटन मे जो कुछ अनुभव मुझे मिले और जैसी ज्ञान-चर्चा हुई, उन सबको चिट्ठियो के रूप मे माता कर्मदेवीजी को समर्पित किया गया था। उन्हें अपने प्रेमी पाठको के लाभार्थ प्रकाशित करता हूँ। माता कर्मदेवीजी लाला नारायणदत्तजी की धर्मपत्नी है। आप बडी धर्मात्मा विदुषी स्त्री है। मेरे साथ उन्होने सद्व्यवहार किया, जिसे मैं कभी नहीं भूलूँगा। यह पत्र-व्यवहार उसी कृतज्ञता का चिह्न-स्वरूप है।

पहला पत्र

माता कर्मदेवीजी—सादर नमस्ते।

मेरी आँखो को सूर्य के प्रकाश की चौध मारती थी, इसीलिए इच्छा न रहने पर भी मुझे नई देहली से भागना पडा। १८ अप्रैल की सुबह को जब आपने मुझे घर से विदा किया, तो उस समय तक मुझे अपने प्रोग्राम का कोई निश्चय नहीं था कि मेरा भावी प्रोग्राम

क्या होगा और कहाँ जाकर मैं बैठूंगा। हाँ, कोटद्वार की ओर जाने का इरादा था। सेठजी को आपने मेरे साथ टिकट खरीदने के लिए भेजा था, पर वे ऐसे 'बुद्धिमान्' निकले कि मेरे बार-बार ताकीद करने पर भी उन्होंने मेरा टिकट वाया मुरादाबाद जंकशन जाने के बजाय एक दूसरे नये रास्ते जाने वाली गाड़ी का खरीद दिया। इन्टर के डिब्बे मे आज कुछ भी भीड़ न थी। लेकिन स्टेशन पर एक घटना घट गई। देहली कांग्रेस के अधिवेशन मे शामिल होने के लिए अकालियों का एक जत्था पंजाब से आया था। पुलिस को उसके आने की सूचना पहले से होने के कारण अधिकारी लोग प्लेटफार्म पर मौजूद थे। जब अकाली उतरे तो उन्हें सुपरिन्टेण्डेंट ने जत्था बना कर शहर जाने से रोका। जत्थेदार ने उपयुक्त उत्तर दिये और हुक्म मानने से इन्कार करने पर पुलिस उन्हें थाने में ले गई।

इस प्रकार का श्रीगणेश मेरी यात्रा के समय हुआ। गाड़ी जमुना के पुल पर से जा रही थी और मेरे मन में तरह-तरह के विचार उठ रहे थे। मैंने मन में कहा—"मैं कैसा अभागा हूँ ? देहली में कांग्रेस का अधिवेशन होने वाला है और मैं देहली छोड कर पहाड़ की ओर जा रहा हूँ ?" इस प्रकार विचारों मे निमग्न मै जा रहा था। तब भी हवा मे गर्मी नहीं थी, इसलिए गाड़ी मे कुछ तकलीफ नही हुई। ३ बजे के बाद गाड़ी मुरादाबाद पहुँची और बाबू गोकुलचन्दजी मुझे स्टेशन पर मिल गये। मेरे आने की सूचना उन्हें पहले से थी, अतएव शाम को व्याख्यान का प्रबन्ध भी आर्य्यसमाज की ओर से किया गया था। बाबू गोकुलचन्दजी आर्य्यसमाज के पुराने भक्त है और बड़े सदाचारी सज्जन है। मैं उन्ही के पास ठहरा। सन्ध्या को व्याख्यान हुआ। विषय था—"राष्ट्रों का उत्थान।" व्याख्यान के बाद जनता ने एक रोज़ और ठहरने का आग्रह किया, जिसे मुझे स्वीकार करना पड़ा। दूसरे रोज़ व्याख्यान में बड़ी भीड हुई।

माताजी, आज के व्याख्यान में मैंने जहाँ और बाते बतलाईं, वहाँ यह भी कहा कि मैं मूर्ति-पूजा का कुछ विरोधी नही हूँ, लेकिन चाहता यह हूँ

कि हिन्दू अपने आराध्य देवता का स्वरूप आदर्शमय बनावें। जैसे देवता की कोई पूजा करता है, वैसा ही वह हो जाता है। श्रीराम का आदर्श सब अवतारों में से श्रेष्ठतम है। यदि कोई भक्त अपने सामने मर्यादा-पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी का आदर्श रखता है, तो उसका जीवन श्रेष्ठतम हो सकता है। किन्तु मैं यह चाहता हूँ कि हिन्दू अपने मन्दिरो में से उन सब मूर्तियो को निकाल बाहर फेंक दे जो बुरी भावनाओं को देने वाली है। मैं लिंग की पूजा का कट्टर विरोधी हूँ। पण्डित लोग भले ही उसका वैज्ञानिक अर्थ लगाएँ, लेकिन निस्सन्देह वह ईश्वर की पूजा का बीभत्स रूप है। इसी प्रकार शृङ्गार रस मे डूबे हुए श्रीकृष्णचन्द्र की पूजा का आदर्श भी हिन्दुओं के लिए श्रेयस्कर नही है। आज इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि हिन्दू अपने घर का कूड़ा-करकट साफ करे, ताकि वे राष्ट्र का उत्थान भली प्रकार कर सके।

२० अप्रैल को सवेरे भोजनोपरान्त मैं और बाबू गोकुलचन्दजी नजीबाबाद की ओर रवाना हुए। यद्यपि यह पैसेञ्जर गाडी थी, पर इसमें इन्टर क्लास का डिब्बा योरुप की गाड़ियो जैसा था। इसमे छोटी-छोटी कोठरियाँ रहती है और ६ आदमी मजे से प्रत्येक कोठरी में सो सकते है। इस प्रकार के एक कम्पार्टमेंट में एक दूसरे से अलग ५-६ कोठरियाँ रहती हैं, जिनका रास्ता साझा होता है, जिसे अंग्रेजी मे कोरीडोर कहते है। ऐसी गाड़ी देखकर मै बड़ा खुश हुआ, क्योकि अब मुझे दूसरे दर्जे में यात्रा करने की आवश्यकता नहीं रहेगी। इन गाडियो मे पाखाने भी बडे ही अच्छे ढग के बने हुए रहते है। यदि रेलवाले ऐसी सब गाड़ियाँ बनवा दें, तो मुसाफिरो को बड़ा सुख हो जाये।

१ बजे के करीब हम नजीबाबाद पहुँचे। गोकुलचन्दजी तो मुझ से छुट्टी लेकर चले गये और मै स्वयसेवक के साथ आर्यसमाज मन्दिर मे आ गया। भाई बनारसीलाल और सेठ मुत्सद्दीराम ने मेरा सब प्रबन्ध कर दिया। वहाँ मै तीन रोज़ रहा। इस बीच मे कई चिट्ठियाँ अपने पहाड-निवासी मित्रों को भिजवाई। यहाँ "धर्म का स्वरूप" इस विषय पर मैंने

एक व्याख्यान दिया और उसमें इस बात को स्पष्ट किया कि धर्म और सम्प्रदाय में कितना बडा अन्तर है। जो लोग धर्म के जिज्ञासु है, वे सम्प्रदाय नहीं बनाया करते, क्योकि सम्प्रदायवाद धर्म और ईश्वर के पथ से हटा कर झगड़ा पैदा करने वाली फैक्टरियाँ बन जाता है। जैसे लोग टेनिस क्लब और महाजन सभाये बनाते है, ऐसे ही हज़रत ईसा, हज़रत मुहम्मद् और दूसरे महापुरुषों के नाम पर धार्मिक क्लबें बनी हुई है, जिनका मुख्य उद्देश्य अपने मेम्बरों की संख्या बढाना है, न कि उन्हे सच्चरित्र बनाना। मुसलमान लोग कहते हैं कि वे बडे साम्यवादी हैं, पर उनका साम्यवाद उनके अपने क्लब के मेम्बरों तक ही परिमित है। धर्म के जिज्ञासु ईटों और पत्थरों की दीवारों को नही खड़ा किया करते; उन्हे मन्दिर, मस्जिद और गिर्जे बनाने की जरूरत नही। उनका मन्दिर उनका अपना शरीर ही है, जिसे वे धार्मिक आभूषणो से सजाते है। मस्जिद और गिर्जे धर्म का प्रचार नही करते, बल्कि उसे रोकते है। अपने बनाये हुए खुदा के घर के लिए ये अज्ञानी लोग खुदा के बन्दो का गला काट लेते है और समझते है कि वे पुण्य कार्य कर रहे है। आज संसार को धर्म का स्वरूप समझाने की बडी जरूरत है।

२३ अप्रैल को सवेरे की गाडी से मैंने पहाड की ओर मुँह किया। लाला मुत्सद्दीराम ने अपने भतीजे को मेरे साथ कर दिया, ताकि वह मुझे दुगड्डा तक छोड़ आवे। १० बजे के बाद हम लोग कोटद्वार पहुँचे। धूप बडी तेज़ थी। कोटद्वार से लैंसडौन तक मोटरबस जाते है। दुगड्डा पहाड की मण्डी है। कोटद्वार से यहाँ तक मोटरबस के ८ आने देने पड़े।

दुगड्डा मे मै दो रात रहा—एक रात धर्मशाला में और दूसरी रात डी० ए० वी० स्कूल में। यहाँ पर दो धाराये आती है—एक लैंसडौन की ओर से और दूसरी द्वारीखाल की तरफ से। दोनों के सगम पर दुगड्डा बसा हुआ है। डी० ए० वी० कालेज लाहौर वालों की ओर से गढ़वाल मे शिक्षा का प्रचार करने के लिए स्थान-स्थान पर डी० ए० वी० स्कूल खोले

जा रहे है, ताकि हिन्दू बच्चों को अपने देश की संस्कृति का ज्ञान हो। यहाँ दुगड्डे मे भी इसी प्रकार का स्कूल है। यहाँ अधिकतर अछूत बच्चे पढ़ते है। इन पहाड़ों मे जात-पात और छूत-छात का बड़ा जोर है, जिसके कारण बहुत-से हिन्दू ईसाई होगये है। सनातनधर्मियों का इन समस्याओं की ओर कुछ ध्यान ही नही, क्योकि उनमें संगठन का अभाव है। केवल आर्यसमाज ही एक ऐसी संस्था है जो अस्पृश्यता के प्रश्न को हल करने का यत्न करती है, परन्तु उसका ढग बुद्धिमत्तापूर्ण नही है, इसलिए द्विजों और अछूतों मे लडाई-झगडे खडे होगये है। अगली चिट्ठी मे मै इन बातों पर प्रकाश डालूँगा और लैसडौन की मनोरजक बातें भी बताऊँगा।

मंगलाभिलाषी—सत्यदेव।

दूसरा पत्र

माता कर्मदेवीजी—सादर नमस्ते!

आर्यसमाज ने जो सुधार का कार्य पहाडों मे आरम्भ किया है, वह मेरी सम्मति मे ठीक ढंग से नही हुआ। चाहिए तो यह था कि आर्यसमाज की ओर से सबसे पहले अछूतो के लिए शिक्षा का प्रबन्ध किया जाता और उनका आचार-व्यवहार सुधार कर उन्हे अच्छा नागरिक बनाने की कोशिश की जाती। इन्होंने ऐसा न कर अपनी शुद्धि के ढंग से उन्हें जनेऊ पहिना कर झट द्विज बना डाला। परिणामस्वरूप जगह-जगह लड़ाई-झगडे शुरू होगए। अब जगह-जगह मुकद्दमे चल रहे है और कटुता बढ़ रही है।

मै दुगड्डा मे दो रात रहा। यहाँ का जल-वायु कुछ अच्छा नही; हाँ, नजीबाबाद जैसी गर्मी नही पड़ती। अछूतों की बस्ती इधर ज्यादा है और उन्ही की ज़मीन पर डी० ए० वी० स्कूल भी बनाया गया है। मेरी सम्मति में यह स्कूलों का सिलसिला प्रचार का बहुत अच्छा ढंग है। यदि अच्छे अध्यापक अपनी सेवाएँ इन स्कूलों मे दे देंगे तो आर्य-संस्कृति का प्रचार इन पहाडों मे हो जायेगा और हिन्दू बच्चे हिन्दू धर्म से च्युत

न होंगे। पर दुःख की बात यह है कि हम लोग प्रारम्भिक शिक्षा के लिए थर्ड क्लास अध्यापक तलाश करते है। यह बड़ी भारी भूल है। किसी मिडल्ची मास्टर को पकड़ कर बच्चों के स्कूल मे पढ़ाने के लिए भेज देना, बच्चो के संस्कार बिगाड़ना है। मुझे विश्वास है कि डी० ए० वी० कालेज लाहौर वाले इस भूल का सुधार करेंगे और योग्य अध्यापक भेज कर इन स्कूलों को चलायेगे।

हाँ, मैने आपको दुगड्डा मंडी के विषय मे कुछ अधिक नही लिखा। दुगड्डा गढवाल के विकट स्थानों में माल पहुँचाने का केन्द्र है। यद्यपि यहाँ कोई बड़ा मैदान नही, बल्कि स्थान बहुत संकीर्ण है, तो भी नदी के किनारे किनारे दुकानें बढ रही है और धीरे-धीरे सब प्रकार का माल बिक्री के लिए आने लगा है। गढ़वाल कम उपजाऊ भूमि है। इसमे बड़े ऊँचे-ऊँचे पहाड है। कृषि के लिए ज़मीन की बड़ी कमी है। लोग अत्यन्त अशिक्षित है। जब ठीक समय पर वर्षा न हो तो यहाँ फौरन अकाल पड़ने लगता है। अंग्रेजी सरकार को यहाँ के गढ़वाली युवक सेना मे भर्ती करने के लिए खूब मिल जाते है, परन्तु दयालु सरकार गढ़वालियों का अकाल दूर करने का कोई विशेष प्रयत्न नही करती। जनता के बार-बार अपील करने पर भी गाडी की सडक का कुछ भी प्रबध नही। सामान ढोते-ढोते इतना खर्च पड जाता है कि मैदान से यहाँ पर चीजो का भाव दुगुना हो जाता है।

२५ अप्रेल को सबेरे लैंसडौन जाने का निश्चय होगया और मै अपना आधा सामान यहाँ छोड़ कर बाकी सामान साथ लेकर मोटरबस में बैठ गया। बस की आगे की सीट पर शुद्ध खद्दर पहने हुए और लकड़ी हाथ में लिये हुए एक अधेड उम्र का आदमी बैठा हुआ था। मुझे देखते ही उसने अपनी जगह छोड़ दी और स्वय पीछे जाकर बैठ गया।

धन्यवाद देकर मै सवार हुआ और बस लैंसडौन की ओर चली। हम लोग बहुत जल्द लैंसडौन पहुँच गये। बस वाले ने एक-एक रुपया किराये का ले लिया और सवारियों को छावनी से मील भर इधर ही उतार दिया

और जहाँ जिसने कहा वही उसका सामान पहुँचाने का वायदा किया। हम सब सदर बाजार मे ही जाने वाले थे, अतएव वहा पहुँच कर हमारा सामान हम को मिल गया। भाई मुकुन्दीलाल बैरिस्टर यही रहते है। उनसे मेरा बड़ा पुराना परिचय है। मै पहले वहाँ पहुँचा। बैरिस्टर साहब का बगला अच्छी जगह पर है। यहाँ नहा धोकर जलपान किया।

यहाँ पर कुछ अछूत बन्धु मुकुन्दीलाल जी से परामर्श करने के लिए आये हुए थे और वह खद्दरधारी सज्जन भी इसी अभिप्राय से यहाँ पहुँचे थे। बात यह थी कि अछूतो की बरात को द्विजों ने अपने गाँव मे से किसी कारणवश गुजरने से रोक लिया था और बरात सत्याग्रह करने के लिए कई दिन से बीच रास्ते में ही रुकी पड़ी थी। बरात वाले बेचारे निस्सहाय इधर उधर भटक रहे थे।

सरकार ने जिस अधिकारी को मदद के लिए भेजा उसने अपना कर्त्तव्य पालन नही किया। अधिकारीवर्ग अधिकतर द्विज है, जो ऐसे अवसरो पर समाज-विरोध से डरते हुए अपना कर्त्तव्य पालन करने मे सकुचाते है। हिन्दू समाज मे बडो मूर्खता फैली हुई है। अपना सर्वस्व खोकर भी अभी इन सनातनधर्मियों को समझ नही आई। वही अछूत जब मुसलमान या ईसाई हो जाता है, तो उसके रास्ते में ये लोग किसी प्रकार का रोड़ा नही अटकाते। बैरिस्टर जी ने इन्हे उचित सलाह देकर विदा किया और मेरे ठहरने का प्रबन्ध डाक बंगले में कर दिया। मै यहाँ चार रोज रहा। डाक बंगला अच्छी जगह पर है और सामने का दृश्य भी मनोहर है। मेरी इच्छा लैसडौन में २-३ मास रहने की थी, अतएव मैने मकान की तलाश की। आर्य सज्जन टेकचन्दजी यहाँ सदर बाज़ार मे रहते है और बड़े ही सहृदय व्यक्ति हैं। आपने मुझे बाज़ार मे रहने का आग्रह किया। वे यह कहते थे कि बाजार मे स्थान मुफ्त मिल जायेगा और लोग सब तरह से सेवा भी कर सकेगे। पर मै जगल का पक्षी शहर में घोंसला कैसे बनाता! मुझे तो खुली हवा मे स्थान चाहिये था। तलाश करते-करते एक छोटी-सी बंगलिया मेरे मन लायक मिली. लेकिन मकानमालिक बड़ा

डरपोक निकला । स्वामी सत्यदेव भयङ्कर राजनीतिक जन्तु है—बस, इसी बात से वह डर गया । मैंने अब राजनीति से किनारा कर लिया है और साहित्यिक जीवन व्यतीत कर रहा हूँ, पर तिस पर भी पुलिसवाले पीछे लगे ही रहते हैं । इसीलिए हमें स्वराज्य की बडी आवश्यकता है । मैंने और मेरे मित्रों ने कई जगह मकान तलाश किये, परन्तु सब जगह वही बाधा सामने आई ।

अब आगे सुनिये । भाई टेकचंद जी दोनों समय अपने घर से भोजन बनाकर लाते और मेरी जरूरतों का हर तरह ख्याल रखते थे । मुकुंदी-लाल जी की बड़ी इच्छा थी कि मैं यही रहूँ और मुझे भी लैसडौन अच्छा लगा । यहाँ मंसूरी जैसा भब्बड़ नही और न नैनीताल जैसी नमी ही है । खुश्क जलवायु, हवा अत्यंत नीरोग, रास्ते शांत, घूमने के लिए साफ सडकें और दोनों ओर दृश्य मनोहर—उत्तर की ओर हिमालय अपनी शान दिखलाता है और दक्षिण की ओर मैदान के दृश्य भी कम रोचक नही । ठडी सड़क पर घूमने से हिमालय की शोभा अत्यंत सोहावनी दीख पडती है । दिल चाहता है कि घण्टों देखा करे । पर्वत थोडे-थोडे काल मे रग बदलते है । कभी धुन्ध छा जाती है, तो कभी बादल अपना प्रभाव जमा लेते है । कभी-कभी भगवान् भास्कर अपने तीक्ष्ण शरों से सब उत्पातियों को छिन्न-भिन्न कर अपनी सुनहरी किरणो को शुभ्र हिम पर फेकते है । उस समय का दृश्य लेखनी से चित्रित नही किया जा सकता ।

लैसडौन में एक ही मुसीबत है और वह है छावनी की । "तुमने हमे सलाम क्यों नही किया ?" यह प्रश्न बहुधा यहां के छावनीनिवासी अंग्रेज सडक पर चलते हुए शिक्षित हिंदुस्तानियों से पूछा करते थे और इसी बहाने भारतीयों को पीटा करते थे । पहले ये घटनायें बहुत होती थीं, परंतु जब से कांग्रेस की कृपा हुई है तब से ऐसी घटनायें बहुत कम हो गई है । तो भी कभी-कभी कोई अक्खड़ गोरा ऐसी भूल कर बैठता है । इसमें कोई संदेह नहीं कि शिक्षित प्रजा के हृदय में इस प्रकार की बातों से गहरा असंतोष फैला हुआ है ।

एक सन्ध्या को मैं भाई मुकुन्दीलाल जी तथा अन्य प्रेमियों के साथ घूमने के लिए निकला। मुकुन्दीलाल जी तो रास्ते मे एक परिचित से बात करने खड़े होगये और हम लोग जरा आगे बढ कर ठहर गये। इतने में दो अंग्रेज़ पीछे से बाते करते हुए आते दिखाई दिये। वे हम लोगों के पास से निकल गये, पर घूरते हुए घूम-घूम कर वे मुझे देखते थे। जब मुकुन्दीलाल जी आये और मैंने उनसे इस बात का ज़िक्र किया तो वे हँस कर बोले—"इतना ही अच्छा हुआ कि उन्होने आपका यहाँ आने का कारण नही पूछा और सलाम करने की बात नही कही।" मैंने मुस्करा कर उत्तर दिया—"तो अब तक ये लोग बेवकूफों के बहिश्त में रहते हैं। सलामों के दिन दूर चले गये।" इतनी बात से पता चलता है कि छावनियों मे भारतीयो का जीवन कैसा दयनीय होता है।

चार दिन के बाद मैंने यहाँ से चलने की तैयारी की। मुकुन्दीलाल जी ने गढ़वाली चित्रकारी के पुराने चित्र मुझे दिखाए। वे इस विषय पर एक लेख हिन्दी मे लिख रहे है। यहाँ एक और बात मेरे देखने मे आई। चलते-चलाते उसका भी जिक्र कर दूं।

यहाँ एक इण्डियन क्लब है। एक सध्या को ऐसे ही मैं भी मुकुन्दीलाल जी के साथ वहाँ चला गया। उनकी कार्रवाई होती रही अंग्रेजी भाषा मे। मैं चुपचाप मन मसोस कर बैठा रहा। अभी तक हमारे लोगो मे अपनी भाषा का अभिमान तक नही आया। उनकी बात-बात मे दासता का गहरा प्रभाव मालूम होता था। अपनत्व को खो देने से ही जाति का नामोनिशान मिट जाता है। चलते समय मुझसे नही रहा गया, सो मैंने कह ही डाला। रास्ते में मैं यही सोचता जाता था कि राजनीतिक गुलामी कैसी भयङ्कर व्याधि है। यह मनुष्य के सभी अच्छे गुणो का शोषण कर लेती है।

मंगलाभिलाषी—सत्यदेव

तीसरा पत्र

माता कर्मदेवीजी—सादर नमस्ते ।

मैं द्वारीखाल में हूँ । दुगड्डा यहाँ से बारह मील पर है । यह ५५०० फीट से अधिक ऊँचा है । यहाँ का डाक बंगला एकान्त स्थान पर है । यहाँ चारों ओर से बड़े जोर की हवा पडती है । सामने बद्रीनारायण और चौखम्भा की बर्फ से ढकी हुई चोटियाँ कभी-कभी अपनी नैसर्गिक छटा दिखाती है । जब उधर की हवा चलती है, तो इस मई के महीने में भी यहाँ ठण्डक लगने लगती है । यों तो आजकल ये पहाड धुन्ध और बादलो से प्रायः ढके रहते है, पर एक दिन सवेरे अत्यन्त प्रभात मे, जब सूर्य्य के निकलने की तैयारी ही थी तब, मैंने अपने कमरे की खिडकी से इन पहाडो की ओर देखा । अहा ! क्या ही सुन्दर दृश्य था ! पर्वत बिलकुल स्पष्ट दिखाई देते थे । मैंने सोचा कि शायद मेरी आँख धोखा देती है, इसलिए दूरबीन निकाल कर बाहर बरामदे मे आया । सचमुच सगमरमर की चौडी शिला की तरह बद्रीनाथ जी की चोटी दीख पडती थी और चौखम्भा अपने चार शिखरो के साथ मेरी ओर ताक रहा था । उसके साथ के पर्वत भी हिमाच्छादित थे । ऐसा स्पष्ट दर्शन इन पर्वतो का मुझे मई के महीने मे मिल सकेगा, इसकी आशा नही थी । परन्तु ऐसे सुहावने दृश्य का आनद मैं बहुत देर तक न ले सका । बादलो ने अपनी चढाई शुरू कर दी और आकाश मे घमासान युद्ध छिड गया । बडे जोरो की वर्षा पडने लगी और मैं अपना कम्बल ओढकर खटिया पर बैठ गया और लगा खिडकी से वर्षा की बहार देखने ।

माता जी, द्वारीखाल अच्छी ठण्डी जगह है और है भी दुगड्डा के नजदीक ही । यहाँ पर डाकखाना भी है और एक स्कूल भी । इर्द-गिर्द की पहाड़ियों पर चीड और बाँस के पेड भी है । दो चार दुकाने भी है, जहां खाद्य पदार्थ मिल जाते है, परन्तु मिलते है बहुत महंगे । यदि आटा दुगड्डे में दस सेर हो, तो यहाँ साढे सात सेर ही मिलता है, क्योकि

खच्चरो पर लाने का किराया पड जाता है। यहा का डाक बगला अच्छे खुले स्थान में होने की वजह से मुझे अच्छा लगा। मेरी टाँग मे चोट लग जाने के कारण उसे आराम की भी जरूरत थी, अतएव मैने यही ठहरने का निश्चय कर लिया। अपने नौकर को भेज कर मैने खाने-पीने का सब सामान मगवा लिया। भैंस का दूध यहाँ रुपये का पाँच सेर मिलता है और बगले का १) रोज तो देना ही पडता है। यहाँ एक तमाशे की बात होगई। जरा उसे भी सुन लीजिये।

यहाँ के पटवारी के पास इस बात का समाचार आया कि गढ़वाल के डिप्टी कमिश्नर मिस्टर ब्राउन अपनी धर्मपत्नी और बच्चो के साथ लैंसडौन से आ रहे है। उनकी साम भी उनके साथ थी। उन्हे डाक-बगले के दोनों कमरो की आवश्यकता थी। पटवारी ने मेरे नौकर से कह दिया कि स्वामीजी यदि दूसरी जगह पर चले जायें तो बडा अच्छा हो। भला मै दूसरी जगह पर कहाँ जाता! मै मौन बैठा रहा। जिस दिन मि० ब्राउन ने आना था, उस दिन सुबह तीन आदमी मेरे पास आये। उनमे से एक ने कहा कि डिप्टी कमिश्नर साहब ने यह भी हुक्म दिया है कि अगर स्वामीजी दूसरी जगह जाना न पसन्द करे तो उन्हे मत छेडना। इसके बाद डेढ बजे के करीब मि० ब्राउन के मुशी लोग आये और उन्होने बंगले के चौकीदार की सहायता से मेरा कमरा खाली करवाना चाहा। भला मै वहाँ से कैसे टल सकता था! जब चौकीदार ने बगले के कायदे दिखाकर अपनी बात का बलपूर्वक समर्थन कर कहा कि बगले मे २४ घण्टे से अधिक ठहरने की इजाजत नही है, तो मैने मुस्करा कर उत्तर दिया—"यह बाते तुम्हें पहले ही कहनी थी। मुझे यहाँ आये पाँच दिन होने लगे है, अब मै कही नहीं जा सकता।" ४ बजे के करीब अपने दलबल के साथ मि० ब्राउन आ गये और उन्होंने बगले के पास की भूमि मे अपनी छोलदारी लगा दी। बस, उनका काम भी होगया और मेरा भी। हम दोनो आपस मे एक दूसरे से न बोले। बोलते भी कैसे, हम दोनो के बीच बडी भारी खाई थी। यदि हम लोग योरुप में होते तो निस्संकोच बाते करते। परन्तु इस अभागे भारत

मे इगलैड के बच्चो और देशभक्त भारतीयो के मध्य गहरी खाई खुद गई है, जिसके कारण साधारण मनुष्यो जैसा व्यवहार भी आपस मे नही किया जा सकता। यह बडे दुःख की बात है।

सबेरे डिप्टी कमिश्नर साहब पौडी की ओर चल दिये और लोगों ने तरह-तरह की बातें फैला दी। किसी ने गप्प उडाई कि डिप्टी कमिश्नर साहब स्वामीजी के पास उनके कमरे मे गये और धमका कर कमरा छोडने के लिए कहा, परन्तु स्वामीजी टस से मस नही हुए। इस प्रकार की गप्पें न केवल यहाँ ही फैली, बल्कि पौडी तक इनकी धूम मची। हमारे देश मे बेकार आदमी सिवाय गप्पे हाकने के दूसरा कार्य नहीं करते। झूठी अफवाहे उडाना उनका धन्धा है। नगरो मे झूठी अफवाहो के फैलाने से ही हिन्दू-मुसलमानो मे दगे हो जाते है। लेकिन झूठे लोग अपनी बुरी आदतो से बाज़ नही आते। इस सम्बन्ध मे हमारे लोगो को अच्छी शिक्षा की बडी जरूरत है।

द्वारीखाल से छः मील के फासले पर नीचे डाडामडी मे चोरियो के समाचार सुनाई दे रहे है। पहाड और चोरी? मै तो यह सुनकर चकित होगया। पूछने पर पता लगा कि कुछ जुआरिए पठान इधर आये हुए है। उन्होने अपने साथ कुछ पहाडियो को गाठा है। इसी प्रकार दल बना कर ये लोग इर्द-गिर्द के गावो मे डाका डालते है। जिस देश मे प्रजा शस्त्रहीन होती है, वहाँ कोई भी बदमाश उनकी दुर्गति कर सकता है। अंग्रेजों का सबसे बडा पाप यही है कि उन्होने हमारे हथियार छीन कर हम लोगो को नपुसक बना दिया है।

गढवाल जिले के इन्सपैक्टर एक रात यहाँ बगले में आकर ठहरे। उन्होने मुझसे आग्रह किया कि मै पौडी जाने से पहले एक बार चैलूसेन जरूर जाऊँ। सो मै चैलूसेन देखने के लिए डाकबगले से निकल पडा। एक योरुपियन लेडी भी उधर जा रही थी, इसलिए हम दो जने होगये। उस वक्त धूप का समय था, लेकिन हम लोगो को कुछ कष्ट नही हुआ। पैदल ही बढ़े चले गये। जब चैलूसेन पहुँचे, तो ईसाई मिशनरियो

के कुछ घर दिखाई दिये, जहाँ किसी समय उनका स्कूल था और आज स्वदेशी स्कूल बन जाने के कारण उनका कार्य बन्द होगया है।

जब हम वहाँ पहुँचे तो एक ईसाई भाई ने हमे प्रेम से पुकारा। हम लोग उसका निमंत्रण पाकर नीचे उतर गये। एक छोटे से बगले के बरामदे मे हम लोग कुर्सियो पर बैठ गये और लगी बातचीत होने।

माताजी, उस ईसाई भाई का नाम मिस्टर पीटर है। पहले आरम्भ मे तो उसने मेरी बातो की बडी मसखरी उडानी चाही, परन्तु बाद में धीरे-धीरे उसके हृदय पर मेरे विचार असर करने लगे। मैंने उससे कहा—"जैसे भारतवर्ष मे हिन्दू, मुसलमान दो जातियाँ अलग-अलग रहकर आपस मे लडती है, ऐसे ही विदेशी ईसाई मिशनरियो की यह इच्छा है कि इस देश मे एक तीसरा दल और खडा कर दे, जिसमे भारतवर्ष सदा फूट की व्याधि से ग्रस्त रहे। अगर उनकी ऐसी इच्छा न होती तो वे इस देश के बच्चो को ईसाई बनाकर विदेशी वेष-भूषा, विदेशी भाषा, विदेशी सगीत और विदेशी आदर्शो मे न पालते। हम हिन्दू लोग सब धर्मो को मान की दृष्टि से देखते है, हमारा उनसे कोई द्वेष नही, परन्तु हमे दु.ख इस बात का है कि एक विदेशी मजहब हमारे बच्चो को अराष्ट्रीय अर्थात् राष्ट्र-विरोधी बना देता है। भला आप ही सोचिये कि अमेरिका के मेथोडिस्ट चर्च वालो को भारतवर्ष मे खरीदी हुई भूमि और मकानो को अमेरिकनो के नाम करवाने की क्या जरूरत थी। यदि वे निष्काम भाव से ईसा के धर्म का प्रचार करते है, तो भारतवर्ष मे चर्च की सम्पत्ति भारतीय ईसाइयो के नाम रहनी चाहिये, ताकि भारतवर्ष ऐसी सम्पत्ति के कारण भविष्य मे किसी अन्तर्राष्ट्रीय झमेले मे न पडे। इन स्वार्थी राष्ट्रो की जबान पर तो हज़रत ईसा का नाम रहता है, परन्तु भीतर गहरी राजनीतिक चाले भरी हुई है। भारतीय स्वतन्त्रता की समस्या को जटिल बनाने के लिए ये सब शतरज की चाले है।" मि० पीटर मेरी बाते सुन कर बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने मुझसे आग्रह किया कि मै ईसाइयो की कान्फ्रेन्स मे अवश्य जाकर व्याख्यान दिया करूँ, ताकि भारतीय समस्याओ

पर राष्ट्रीय प्रकाश पडे । मैने भाई पीटर से यह भी कहा कि यह केवल आर्थिक प्रश्न है । जब भारतवर्ष मे स्वराज्य हो जायेगा तो लाखो ईसाई और मुसलमान अपने बाप-दादाओं और पूर्वजो के प्यारे हिन्दू धर्म को ग्रहण कर लेगे । मि० पीटर ने मुझे द्वारीखाल लौटने के लिए अपना घोडा दिया और यह भी कहा कि आप बानघाट तक इसे ले जा सकते है ।

इस प्रकार सन्तुष्ट होकर मै चैलूसेन से लौटा । कल मेरा यहाँ से जाने का विचार है । अगले पत्र मे पौडी तक की यात्रा का वृत्तान लिखूगा ।

मंगलाभिलाषी—सत्यदेव

चौथा पत्र

माता कर्मदेवीजी—सादर नमस्ते !

जब मै आपको द्वारीखाल की बाते लिख चुका, तो पता लगा कि लैसडौन से द्वारीखाल तक आने की बाते तो छूट ही गई है । सो आज आपको अपनी बयालीस मील की पहाडी यात्रा का हाल सुनाता हूँ ।

२९ अप्रैल को सबेरे मै लैसडौन से अपने नौकर और पहाडी कुली के साथ द्वारीखाल की ओर चला था । रास्ते मे दो मील पर जेहरीखाल नामक ग्राम पडता है । बाते करते हुए हम तीनो जने चले । आज दिन तो मेघरहित था, पर हिमालय गर्मी के मारे खस की टट्टी मे छिपे बैठे हुए थे । भला दर्शन कैसे होते !

दो मील तक मैदान-सा है, अर्थात् कुछ चढाई-उतराई नही मालूम होती । जब जेहरीखाल निकट आता है तो थोडा उतरना पडता है । जेहरीखाल मे गवर्नमेंट हाईस्कूल है । उस बस्ती की चर्चा आगे चलकर विस्तार से करूँगा, क्योकि यहाँ फिर लौटकर आना है ।

जेहरीखाल से आगे रास्ता अच्छा है । मुझे आज १३ वर्षों के बाद इतना चलना पड़ा । अपनी परीक्षा लेने के लिए मैंने यह सकल्प किया था । चढाई को तो मैं कुछ समझता नहीं, किन्तु उतार मेरे लिए दुःखद

है। आँखो की कमजोरी के कारण उतार मे भूमि के ऊँचे-नीचेपन का पता नही लगता। इसीलिए कष्ट हुआ।

दस मील तक तो मुझे कुछ तकलीफ नही हुई। यदि अपने पथ पर चले जाते तो कुछ बात न होती पर--

मेरे मन कुछ और है,
विधना मन कुछ और।

किसी राह चलते ने सुना दिया कि इस नगर पट्टी मे भैरो गढी बडा रमणीक स्थान है, उसे ज़रूर देखते जाइये। कैलाश-यात्री सत्यदेव वाली स्फूर्ति जाग उठी--"चलो देखते चले।" चल पडे। कुली बेचारा नाक-भौ सिकोडता ही रहा, पर यहाँ तो वह दृष्टि ही न थी। सामने की गढी पर चढने लग, जहाँ काले भैरव--भयकर भैरव--का मन्दिर था। दुर्गम पहाडियो मे जैसे सिद्ध के घोसले होते है, ऐसे ही यह भैरो जी का स्थान भी था। मेरे सिर पर भूत सवार था। सुबह से न खाया था, न पिया; केवल कुछ मुनक्का के दाने हम सब ने खाये थे। सूर्य देवता सिर पर उपस्थित होगये। इन दुर्गम रास्तो मे भी पहाडी लोग छोटे-छोटे सीढियो जैसे खेत बना लेते है। ऐसे ही खेतो मे गेहूँ की सुनहरी बाले मस्त झूल रही थी। प्रकृति माता के रग ही तो है! ऐसा मोटा दाना और गेहूँ का खेत यहाँ पर, मानो नहर के किनारे की शस्यदा भूमि हो। इन बर्फीले पहाड़ो पर ऐसी खेती देखकर मै प्रसन्न होगया। यद्यपि सयुक्त राज्य अमेरिका की उत्तरी रियासतो मे मैने जाडो मे हिमाच्छादित होने वाले मैदानो मे सुन्दर सुनहरी गेहूँ की खेती देखी है, पर वहाँ तो जल ठहरता है। यह तो पहाड है, जहाँ पानी दौड़ता चला जाता है। खैर।

किसी प्रकार राम-राम करते हुए शिखर पर पहुँचे। वहाँ बिलकुल सन्नाटा था। श्री भैरवनाथ भी कही भयभीत होकर भाग गये थे। प्यास के मारे हमारे होठ सूखे पत्तो की भाति सूख गये थे, पर यहाँ पानी कहाँ! इतनी ऊँचाई पर कही पानी का चश्मा हुआ करता ह? हमसे

कहा गया था कि ग्रामीणों की ओर से वहाँ एक पुजारी नियत है, जो यात्रियो को आवश्यकतानुसार भोजन-जल देता है । प्यास के मारे मै बेचैन था । उस बेचैनी मे मुझे अपने बचपन की एक कविता और घटना याद आ गई ।

मै आर्यसमाज बच्छोवाली मे सबसे ऊपर की मजिल पर सोया करता था । शायद जून का महीना था । राना नामक एक उर्दू कवि भी कभी-कभी वहाँ आकर सोते थे । मै अत्यन्त प्यास मे एक रात को अधीर होकर कह उठा—

प्यास के मारे है जाँ निकलती,
हाय कोई न हाल सुनता ।

मैने दो-चार बार यह सिसरा कहा, तो मसखरा राना कहने लगा—

है सब्ज़ गेहूँ मे इक बटेरा,
हाय कोई न जाल बुनता ।

अपनी प्यास भूलकर मै राना की सूझ पर हँसने लगा । यहाँ इस दुर्गम शिखर पर तो कोई कवि था नही, जो मधुर कविता कर मेरी प्यास भुला देता । दो घण्टा बेचैन रहने के बाद नीचे उतरने का निश्चय किया।

माताजी, मै सोचता था कि ऐसी प्यास में नीचे कैसे उतरूँगा । यदि रपट गया तो हड्डी-पसली नही बचेगी । ईश्वर का स्मरण कर मैने साथियो को खडा किया और हम सब नीचे उतरने लगे । ज्यो ही मै सीढियो के पास आया, तो एक दीर्घकाय साधु सामने आता हुआ दिखाई दिया । उसने 'ओ३म् नमो नारायण' कह कर दण्डवत किया और मैने भी योग्य उत्तर दिया । वह हमे फिर मन्दिर मे ले गया और अपने कमरे का ताला खोल कर हमारी प्यास बुझाई । हमारी जान मे जान आई । मैने प्रभु को धन्यवाद दिया । वह फकीर मुझे आधे रास्ते तक नीचे उतार भी गया । लेकिन फिर भी थकान के कारण मेरे दाहिने घुटने मे चोट आ ही गई । अगले तीन मील द्वारीखाल तक मुझे एक-एक गज़ जमीन के

लिए लडना पड़ा और बिलकुल चूर होकर शाम को पाच बजे के बाद हम द्वारीखाल पहुँचे।

अब सुनिये पौड़ी की यात्रा का ब्योरा। ८ मई को सबेरे हम द्वारीखाल से निकले। मिस्टर पीटर का आदमी घोडा लेकर उस समय मिला जब हम ३॥ मील उतर चुके थे। बानघाट को द्वारीखाल से सात मील का उतार है। यह स्थान उष्णप्रधान है। घोडो, खच्चरो के कारण यह गदा भी रहता है। यहां डाक बंगला भी है और एक अस्पताल भी। ग्यारह बजे हम बानघाट पहुँच गये। नदी मे स्नान किया। यहाँ के डाक्टर मुझे पहचानते थे। वे ठहरने का आग्रह करने लगे, लेकिन मैने तो सात रुपये पर खच्चर वालों से पौडी तक सामान पहुँचाना तय किया हुआ था। जाना जरूरी था। साथ मे शिमले से लौटे हुए एक सरकारी नौकर मिल गये। जब वे तपती हुई धूप मे चढाई चढने लगे, तो मैने भी अपने सेवक के साथ उनका अनुसरण किया।

माता जी, २॥ मील की सीधी चढाई, सिर पर भास्कर देवता और मई का महीना, सो नानी याद आ गई। कुछ मील चढकर आम्र-वृक्षो के नीचे आकर विश्राम लिया। उस सरकारी नौकर से बहुत सी पते की बाते मालूम हुई। उस रोचक वार्तालाप से रास्ता खूब कटा। बानघाट से पौडी तक चढाई ही है, उतार नही। अढाई-तीन मील की चढाई के बाद फिर समतल रास्ता चला जाता है। कही थोडा चढाव-उतार है। पानी की इधर कमी है। दूर नीचे खड्डो मे धाराये है। अल्मोडे मे जैसे जल की अधिकता है, झरनो की कल-कल ध्वनि है और अद्भुत नैसर्गिक दृश्य है, वैसे इधर नही है। हाँ, श्रीगङ्गाजी की घाटी मे बद्रीनाथ के मार्ग पर आकर्षक दृश्य अवश्य है। इधर तो ऐसे रमणीक दृश्य नही। जल-वायु अलबत्ता खुश्क और नीरोग है, खाद्य पदार्थ महगे मिलते है। सडक बहुत अच्छी है। सरकार चाहती तो इधर मोटर–बसे कभी की चल निकलती, परन्तु यह ठहरा रगरूटो का देश, जहाँ अपढ फौजी जवानो की भर्ती की जाती है। उन्हे मैदान वालो की हवा न लग जाये, शायद इसीलिए यात्रा

की सुविधाये नहीं है। देखे कब तक यह इलाका अशिक्षित रक्खा जा सकता है।

शाम को १६ मील माप कर हम लोग कासखेत पहुचे। जैसे द्वारीखाल के डिस्ट्रिक्ट बोर्ड स्कूल के अध्यापक मेरे साथ बड़े शिष्टाचार से पेश आए थे, ऐसे ही कासखेत के पण्डित जी भी बडे मिष्टभाषी और प्रेमी सज्जन निकले। सब प्रबन्ध होगया। रात कट गई। पैदल चलने के कारण मेरे सारे शरीर मे दर्द था।

कासखेत से पौडी तक १३ मील है। सडक ऐसी अच्छी है मानो माल रोड पर घूम रहे है। यहा पर पानी पिलाने वालो की कमी नही, गुनगुनाते चले गये। बॉझ के पेड गढवाल मे अधिक है, चीड़ के जंगल अधिक नही। देवदारु और रणगौन के पेड भी है। बर्फानी पहाड निकट है। निर्धनता का सर्वत्र राज्य है। मूर्खता की प्रभुता भी अखण्ड है।

माताजी, ९ मई को बारह बजे मध्याह्न हम पौडी पहुँच गये। अगले पत्र मे मै पौडी के मनोरम दृश्यो का वर्णन करूँगा।

मंगलाभिलाषी––सत्यदेव

पाँचवाँ पत्र

माता कर्मदेवीजी––सादर नमस्ते !

९ मई की मध्याह्न को मैने पौडी नगर मे प्रवेश किया। नौकर को आगे ठीक-ठाक करने के लिए भेज दिया था। उसने सब प्रबन्ध कर लिया। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के मन्त्री ठाकुर सुरेन्द्रसिह जी की कृपा से आवश्यक वस्तुओ के आने मे देर न लगी। मैने अपने आने की तिथि पहले से नही लिखी थी, इस कारण ज़रा अधिक भागाभागी करनी पडी। यों तो हिमालय विकट दुर्गों का समूह है, परन्तु गढवाल सचमुच दुर्गम गढ है। मुगलो के समय मे ये पर्वतमालाये अत्यन्त सुरक्षित थी। यहाँ किसी प्रकार के आक्रमण का भय नही था। अत्यन्त आपत्काल के समय जो वीर मुगल-अफगान-शासन के भयंकर अत्याचारों के प्रति विद्रोह क

झण्डा उठाते थे, वे समय-समय पर इन दुर्गम गिरि-कन्दराओ मे आकर अपनी शक्ति सचय किया करते थे। ऐसे ही पर्वत सब प्रकार के आपत्ति-कालो मे देशभक्तों की रक्षा करते रहे है। प्रत्येक देश मे पर्वतो के निवासी सबसे ज्यादा स्वतन्त्रताप्रेमी हुआ करते है, पर भारत के पर्वतो के रहने वाले अधिक भीरु, स्वार्थी और दासता-प्रेमी होते है। यह सारा पतन जन्म से वर्णव्यवस्था मानने के कारण है।

पौड़ी गढवाल की राजधानी है। जलवायु इसका बलवर्धक है। शिखर पर चीड और बाँझ के वृक्षों का जगल है। यहाँ श्री किलकिलेश्वर महादेव का पुराना मन्दिर शहर से दूर बना हुआ है। सन् १९१७ मे मै पौडी आया था और इसी मन्दिर की गुफा मे आकर ठहरा था। महात्मा गाधीजी ने जब निलहे गोरो के अत्याचारो के विरुद्ध कार्य करने के लिए चम्पारन मे प्रवेश किया तो मुझे भी मोतीहारी जाना पडा। तब मै अधिक दिन पौडी नही रह सका था। मै ऋषिकेश से देवप्रयाग, श्रीनगर होता हुआ पैदल यहाँ पहुँचा था। इस बार इस मन्दिर मे रहना ठीक न समझकर स्वतन्त्र स्थान ठीक किया।

ईसाई पादरी बडे चतुर होते है। जब देश के जागृत और शिक्षित भागों में उनकी दाल न गली तो उन्होने रेल से दूर क्षेत्र तलाश किए, जहाँ वे बेरोक-टोक फसल काट सके। वे इन पर्वतो मे पहुँचे और पौडी को केन्द्र बनाकर लगे अपनी भेडे बढाने। सनातनधर्मी हिन्दू सभी जगह प्राय. इन बातो मे उदासीन रहते है। सरकार इन्ही का पैसा लेकर इन्ही के बच्चो को ईसाई बनाने मे मदद देती है, लेकिन इनके कान पर जू नही रेगती। ये उच्च वर्णाभिमानी बैठे ब्रह्म की माला जपते रहते है। इनमे व्यक्तिवाद का प्रभाव इतना अधिक है कि वे अपने नाक के आगे की वस्तु देख ही नही सकते। मिशनरी इनके घरो मे घुसकर इन्हे अरा-ष्ट्रीय बना रहे है, किन्तु ये बैठे 'सनातनधर्म की जय!' मनाते है। ईसा-इयो ने पहला धावा गरीब अछूतो पर किया और लगे उन्हे अपने प्रभाव में लाने। अपने इन दीन भाई-बहिनो को हिन्दू धर्म से अलग होते देख

कर भी जब गढवाल के हिन्दू न चेते, तब इस इलाके के हज़ारों अछूतों ने ईसाई मत स्वीकार कर लिया और वे इस प्रकार हिन्दू समाज के अत्याचारो से भी छूट गए ।

अब इस क्षेत्र मे आया है आर्यसमाज, किन्तु बहुत देर के बाद । उस की ओर से कई मिडिल स्कूल है, अब एक हाईस्कूल भी बनने लगा है । ईसाई लोग इतने से ही घबरा उठे है, क्योकि वे जानते है कि आर्यसमाज के घोडे के सामने उनके टट्टू की पेश नही जायेगी । उनके स्कूल के आधे से ज्यादा लडके अभी से आर्य स्कूल मे चले गये है । सघर्ष आरम्भ हुआ है, पर निश्चय ही कुछ वर्षो के भीतर मिशनरी लोग यह क्षेत्र छोडकर भागेंगे ।

माताजी, आप को तो पता ही है कि मै अब थक गया हूँ । सारी पृथ्वी घूम कर अब मै एक स्थान मे बैठ कर हिन्दी साहित्य की सेवा करना चाहता हूँ । जिन ऋषि-मुनियो के अध्यात्मवाद और योग की हम प्रशसा करते है, उनकी सिद्धि का हमे प्रयत्न करना चाहिए । उसी उद्देश्य से मै इधर कुटिया के लिए एकान्त स्थान तलाश करने आया था । प० तारादत्त गैरोला और ठाकुर सुरेन्द्रसिह जी से इस विषय की चर्चा हुई । भूमि देखी तो, किन्तु मन के अनुकूल नही मिली । इन पहाडो मे वे सुविधाये नही है जो योरुप के गिरि-श्रृगो पर मिलती है । एक तरफ गगा जी के किनारे श्रीनगर मे बिच्छुओ की भरमार है और दूसरी ओर गन्दा ! गन्दा !! हिन्दू जनता सफाई के साधारण नियमो से भी अनभिज्ञ है । पहाड़ हो चाहे मैदान, नगर हो या ग्राम, चाहे बद्रीनाथ जाइये या हरिद्वार घूमिये हमारे लोग सफाई के प्रति बडे उदासीन है । पर्वतों की सोहावनी स्थलियो मे घूमते-घूमते जहा दस पांच दुकाने आई, बस, गन्दगी, मक्खियां और बदबू मौजूद है । पाश्चात्य देशो मे जो व्यक्तिगत अधिकारो की पूजा मैने पाई है, जो सफाई मैने देखी है, जीवन मे जो कला सम्बन्धी रस लेने की योग्यता वहां की जनता मे है, वहां जो सौदर्य-सुख का विकास हुआ है, उसमे अपनी संस्कृति का समावेश कर एक

नवीन विश्व-सस्कृति का रूप इस देश के लोगो को दिखलाने का मेरा इरादा है। इसी कारण मै अब आश्रम की तलाश मे हूँ, ताकि अपने विस्तृत अनुभवो को तरतीब दे सकू। इन पर्वतो मे स्थान है, जल-वायु है, मनोहर दृश्य है, किन्तु बाकी सब साधनो का अभाव है। जहा अग्रेजो का जाना आना है—जैसे ममूरी, नैनीताल आदि—वहाँ वैज्ञानिक सुख तो है, लेकिन हमारी सस्कृति के सद्गुणो का अभाव है। कहाँ जाऊँ ?

सभी मित्र-प्रेमी कह रहे है कि दुर्गम पर्वतो में कुटिया मत बनाइये। हरिद्वार मे, गुरुकुल के पास, कही बैठ जाइये; तब यह आदर्श पूरा हो सकेगा। श्रीगगा जी की उस घाटी मे उठी हुई ध्वनि रासकुमारी तक गूजेगी। यही सब कह रहे है।

माताजी, आपको क्या सुनाऊँ ! यहा भी एक विचित्र घटना घट गई। लीजिये सुनिये।

मैंने सोचा—"पौडी आ गया हूँ, लोगो को मेरे अनुभवो का कुछ लाभ मिलना चाहिये।" यद्यपि मै आर्यसमाजी नही हूँ, परन्तु आर्यसमाज का कार्य मुझे प्यारा है। मुझे जब समाज के लोग बुलाते है, तो मै वहा उपदेश देने चला जाता हूँ। मेरा कोई सम्प्रदाय नही। थामस पेन के शब्दो मे :

"The world is my country, and to do good is my religion."

अर्थात् दुनिया मेरा देश है और नेकी करना मेरा धर्म है। पौड़ी समाज वालो ने मुझे बुलाया था। मैंने उन्हे प्रेम से अपनी शिक्षाप्रद बाते सुनाई, पर दस-पन्द्रह मिनटो तक ही। उन्होंने अगले सप्ताह अधिक सुनना चाहा, लेकिन पुलिस का भूत वहा भी पहुँचा। सब आर्यसमाजी डर गये। सत्यदेव को बुलायेगे तो सरकारी थप्पड खायेंगे। इस भय से मुझे किसी ने बुलाया नही, सो मै गया भी नही। जब लोग मिलने आये, तो मने इस अशिष्टता का कारण पूछा। मन्त्री महाशय बोले—

"स्वामी जी, हम सरकारी नौकर है। आपको बुलाते तो पुलिस

नोट कर लेती और हमारी नौकरी खतरे में पड जाती।"

मुझे पता है कि इन सरकारी नौकरो, रायसाहबो और पेशनरो ने आर्यसमाज को कितनी हानि पहुँचाई है। स्वतन्त्रता सिखलाने वाले स्वामी दयानन्द जी के उपदेशो को भला ये गुलाम कैसे समझ सकते है ?

दूसरे दिन एक आर्यसमाजी पण्डित उपदेशक आगये। सरकारी आज्ञा लेकर उनके व्याख्यानो का प्रबन्ध किया गया। वहाँ सभापति ने जोश में आकर मेरे व्याख्यान का नोटिस दे दिया। हलचल मच गई। नोटिस दिया गया बिना सरकारी आज्ञा पाये और पौड़ी में लगी हुई थी १४४ धारा। "आज्ञा लेने अधिकारियो के पास कौन जायेगा ?" ये लोग मिलकर सलाह करने लगे। जिन्होंने व्याख्यान का नोटिस दिया था, वे भी नट गये। आखिर बेचारे कोतवालसिंह को अपने नाम की लाज रखनी पड़ी। वे गये और आज्ञा ले आये।

माताजी, अगले पत्र में मैं आपको अत्यन्त मनोरंजक और गम्भीर बातें सुनाऊंगा।

मंगलाभिलाषी—सत्यदेव

छठा पत्र

माता कर्मदेवीजी—सादर नमस्ते !

यहां पौड़ी में पण्डित तारादत्त गैरोला बड़े प्रसिद्ध वकील है। इनके विषय में कुछ अधिक बतलाना अच्छा होगा। आप भक्त दादूदयाल की वाणी के बड़े प्रशंसक है और उनकी दो सौ सूक्तियों का आपने अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया है। आजकल आप भक्तों की वाणियां पढ़ने में मस्त रहते है। मेरा चूंकि आप से पहले का परिचय था, इस कारण इस बार उन्होंने मुझे अपने यहां निमन्त्रित किया। पौड़ी से जो सड़क देवप्रयाग की ओर जाती है, उसी पर आपका बड़ा अच्छा मकान बना हुआ है। सरकार की भी आप पर बड़ी कृपा है। इसी सड़क पर आपका एक सुरम्य विहार-स्थल है, जहाँ से हिमालय का अत्यन्त सुन्दर दृश्य दिखाई देता है। यहाँ

से नन्दादेवी अपनी सहेलियो के साथ स्पष्ट दीख पडती है । प्रातःकाल जब आकाश निर्मल हो तो भास्कर की सुनहरी किरणे इसकी हिमाच्छादित चोटियो पर अद्‌भुत प्रभा दिखाती है। रवि-किरणें रग-बिरंगे रूप धारण करती है। उस समय प्रकृति की ऐसी मोहक छटा दिखाई देती है जिसका वर्णन लेखनी नही कर सकती ।

इसी विहारस्थल मे तारादत्त जी ने मुझे बुलाया । आहा ! कैसा स्वच्छ और नीरोग पवन यहाँ बहता था। चीड के पेड किस नशे मे झूम रहे थे । मैने पण्डितजी से कहा कि यह स्थान तो कवियो के लायक है। यदि मै ऐसे स्थान मे रह जाऊँ, तो निस्सन्देह किसी काव्य की रचना कर डालू। पण्डितजी हँसने लगे । पहले तो उन्होने कुछ जलपान से हम लोगो का स्वागत किया, बाद मे भक्तिमार्ग पर बाते होने लगी। मैने पण्डित जी से कहा--"आप दादूजी मे क्या विशेषता पाते है, जिसके कारण आप उनपर मोहित होगये है ?"

गेरोलाजी ने दादूजी के कुछ पद पढ कर सुनाये, जो मेरे लिये कुछ नया भाव पैदा करने वाले नही थे। वही ईश्वर की प्रशसा, उसकी रचना का गुणानुवाद, बीच-बीच मे रहस्यवाद के टोटके और अन्त मे ईश्वरीय माया न समझ सकने की असमर्थता--इस प्रकार के भाव भक्तो की वाणियो मे प्रायः पाये जाते है । मैने अपने भ्रमण मे भक्तो की वाणियाँ पसन्द करने वाले जो धनी शिक्षित लोग देखे है, वे प्रायः कर्मयोग से उदासीन रहते है। भक्तो की वाणियाँ पढकर उन्हे कुछ समय के लिए नशा सा हो जाता है, इसके बाद फिर वे अपने व्यवसाय के मकर-फरेब मे लग जाते है । उनके पास खाने को काफी होता है । वे इस प्रकार का नशा पी सकते है और उसके लिए समय खर्च कर सकते है। ऐसे लोग कठोर जीवन-संग्राम के योग्य नही रहते । निस्सन्देह अपवाद के तौर पर बाबू पुरुषोत्तमदास टडन जैसे आदमी भी है, जो भक्तिमार्ग के बडे प्रशंसक है और साथ ही योद्धा भी है। परन्तु उनका भक्तिमार्ग गुरु गोविन्दसिह जी के ढग का है । यह बात बिलकुल सच है कि अनपढ़ साधारण जनता, जो तर्क नही कर सकती, जो

नोट कर लेती और हमारी नौकरी खतरे मे पड जाती।"

मुझे पता है कि इन सरकारी नौकरो, रायसाहबो और पेशनरो ने आर्यसमाज को कितनी हानि पहुँचाई है। स्वतन्त्रता सिखलाने वाले स्वामी दयानन्द जी के उपदेशो को भला ये गुलाम कैसे समझ सकते है ?

दूसरे दिन एक आर्यसमाजी पण्डित उपदेशक आगये। सरकारी आज्ञा लेकर उनके व्याख्यानो का प्रबन्ध किया गया। वहाँ सभापति ने जोश मे आकर मेरे व्याख्यान का नोटिस दे दिया। हलचल मच गई। नोटिस दिया गया बिना सरकारी आज्ञा पाये और पौडी मे लगी हुई थी १४४ धारा। "आज्ञा लेने अधिकारियो के पास कौन जायेगा ?" ये लोग मिलकर सलाह करने लगे। जिन्होने व्याख्यान का नोटिस दिया था, वे भी नट गये। आखिर बेचारे कोतवालसिह को अपने नाम की लाज रखनी पडी। वे गये और आज्ञा ले आये।

माताजी, अगले पत्र मे मै आपको अत्यन्त मनोरजक और गम्भीर बाते सुनाऊँगा।

मंगलाभिलाषी—सत्यदेव

छठा पत्र

माता कर्मदेवीजी—सादर नमस्ते !

यहा पौडी मे पण्डित तारादत्त गैरोला बडे प्रसिद्ध वकील है। इनके विषय मे कुछ अधिक बतलाना अच्छा होगा। आप भक्त दादूदयाल की वाणी के बडे प्रशसक है और उनकी दो सौ सूक्तियो का आपने अँग्रेजी भाषा मे अनुवाद किया है। आजकल आप भक्तो की वाणियाँ पढने मे मस्त रहते है। मेरा चूकि आप से पहले का परिचय था, इस कारण इस बार उन्होने मुझे अपने यहाँ निमंत्रित किया। पौड़ी से जो सड़क देवप्रयाग की ओर जाती है, उसी पर आपका बडा अच्छा मकान बना हुआ है। सरकार की भी आप पर बडी कृपा है। इसी सडक पर आपका एक सुरम्य विहार-स्थल है, जहाँ से हिमालय का अत्यन्त सुन्दर दृश्य दिखाई देता है। यहाँ

से नन्दादेवी अपनी सहेलियो के साथ स्पष्ट दीख पडती है । प्रातःकाल जब आकाश निर्मल हो तो भास्कर की सुनहरी किरणे इसकी हिमाच्छादित चोटियो पर अद्‌भुत प्रभा दिखाती है। रवि-किरणें रग-बिरंगे रूप धारण करती है। उस समय प्रकृति की ऐसी मोहक छटा दिखाई देती है जिसका वर्णन लेखनी नही कर सकती ।

इसी विहारस्थल मे तारादत्त जी ने मुझे बुलाया । आहा ! कैसा स्वच्छ और नीरोग पवन यहाँ बहता था। चीड के पेड किस नशे मे झूम रहे थे । मैंने पण्डितजी से कहा कि यह स्थान तो कवियो के लायक है। यदि मै ऐसे स्थान मे रह जाऊँ, तो निस्सन्देह किसी काव्य की रचना कर डालू। पण्डितजी हँसने लगे । पहले तो उन्होने कुछ जलपान से हम लोगो का स्वागत किया, बाद मे भक्तिमार्ग पर बाते होने लगी। मैंने पण्डित जी से कहा--"आप दादूजी मे क्या विशेषता पाते है, जिसके कारण आप उनपर मोहित होगये है ?"

गेरोलाजी ने दादूजी के कुछ पद पढ कर सुनाये, जो मेरे लिये कुछ नया भाव पैदा करने वाले नही थे। वही ईश्वर की प्रशसा, उसकी रचना का गुणानुवाद, बीच-बीच मे रहस्यवाद के टोटके और अन्त मे ईश्वरीय माया न समझ सकने की असमर्थता--इस प्रकार के भाव भक्तो की वाणियों मे प्रायः पाये जाते है । मैंने अपने भ्रमण मे भक्तो की वाणियाँ पसन्द करने वाले जो धनी शिक्षित लोग देखे है, वे प्रायः कर्मयोग से उदासीन रहते है। भक्तो की वाणियाँ पढकर उन्हे कुछ समय के लिए नशा सा हो जाता है, इसके बाद फिर वे अपने व्यवसाय के मकर-फरेब मे लग जाते है । उनके पास खाने को काफी होता है । वे इस प्रकार का नशा पी सकते है और उसके लिए समय खर्च कर सकते है। ऐसे लोग कठोर जीवन-संग्राम के योग्य नही रहते । निस्सन्देह अपवाद के तौर पर बाबू पुरुषोत्तमदास टडन जैसे आदमी भी है, जो भक्तिमार्ग के बडे प्रशंसक है और साथ ही योद्धा भी है। परन्तु उनका भक्तिमार्ग गुरु गोविन्दसिह जी के ढंग का है । यह बात बिलकुल सच है कि अनपढ साधारण जनता, जो तर्क नही कर सकती, जो

स्वयं सोच नही सकती, उसके लिए भक्तिमार्ग के सिवाय दूसरा कोई रास्ता अपना चरित्र सुधारने का नही है। उन्हे किसी न किसी ईश्वरभक्त महापुरुष का आश्रय लेना पडता है कि जिसके पीछे वे आँखे बन्द कर चल सके। ऐसे लोग प्रायः बडे साधुभक्त, सेवा की भावना रखने वाले, श्रद्धालु और त्यागी होते है। वे अपने प्रिय आदर्श के लिए सर्वस्व बलिदान कर देते है, जैसा कि सिक्ख जनता ने अपने काल मे किया था। सिक्खो मे जो सेवा की भावना, ईश्वरपरायणता और त्याग के प्रति प्रेम है, वह उसी भक्तिमार्ग का प्रताप है। आर्य्य-सस्कृति के श्रेष्ठ वातावरण को हम उस समाज मे पाते है जो सच्चरित्र, ईश्वरपरायण और भक्तो का गुण गाने वाला है। परन्तु इस मार्ग मे धूर्त्त लोगो के लिए अपना स्वार्थ सिद्ध करने का बहुत अच्छा अवसर रहता है। हजारो साधु जनता को उसी अन्धविश्वास के कारण लूट खाते है। गुजरात, काठियावाड, सिन्ध, पजाब और बगाल मे वैष्णव साधु उसी भक्तिमार्ग का अनुचित लाभ लेकर कितनी बुराई फैलाते है! अतएव यह आवश्यक है कि भक्ति चैतन्य हो, उसमे जागृत बुद्धि का समावेश हो और वह भक्त को सत्यासत्य पहचानने के योग्य बना दे। पुराने जितने मार्ग है उनमे अच्छापन भी है। हमे उस अच्छेपन को साथ लेकर उसका जो बुरा पहलू है, उसे हटा, उसके स्थान पर चैतन्य बुद्धि को स्थान देना चाहिये। कैसा ही ईश्वर-भक्त क्यो न हो, परन्तु उसमे जिज्ञासा की भावना सदा बनी रहनी चाहिये और वह सदा इस बात की कोशिश करे कि वह स्वावलम्बी हो। व्यक्ति की शक्तियो का विकास परमावश्यक है। वह तभी हो सकता है जब मनुष्य स्वतन्त्र सोचने की आदत डालता है। हमारे सामने लाखो करोडो तारे आकाश मे चमकते हुए दिखाई देते है। हम उनके विषय मे कुछ नही जानते। यदि हमारा रुख ज्ञान के सचय का रहेगा तो हम ईश्वर-भक्तो से ज्ञान की उपलब्धि कर आगे बढेगे और नई खोज कर ज्ञान की वृद्धि करेगे। भारत-वर्ष मे यह नही हुआ। यहाँ चबाये हुए को चबाया जाता है। जितने भक्त है उन सबकी वाणियो को उठा कर देखिये; उन्हे एक हाँडी में उबाल कर

उसका निचोड निकाल लीजिये, तो आपको एक ही बात, एक ही रग दिखाई देगा। आगे बढने का कोई नाम नही लेता। अन्धविश्वास द्वारा भक्ति-मार्ग अच्छा वातावरण पैदा कर सकता है, मनुष्य का चरित्र भी सुधार सकता है, परन्तु उसे ज्ञान की वृद्धि के मार्ग पर नही ले जा सकता। खैर!

पडित तारादत्तजी से भक्तिमार्ग के विषय पर बहुत सी बातचीत हुई। आखिर मैंने उनसे कहा--"अब आप इस बुढापे मे सब कुछ छोड-छाड कर केवल इसी रस मे तल्लीन क्यो नही हो जाते? आपके पास बहुत काफी पैसा है। भक्त दादू की वाणी में डूबकर भी आप अभी तक वकालत के गोरखधन्धे में लगे हुए है, यही बात मेरी समझ मे नही आती।"

इसका वे बेचारे क्या उत्तर देते! अपनी निर्बलता को उन्होने स्वीकार किया।

सचमुच मैं उन आदमियो की मानसिक अवस्था को बडा विचित्र समझता हूँ जो अपने आपको भक्तो की वाणी का बडा प्रेमी भी मानते है, साथ ही सरकार की भी बडी खुशामद करते है और कोई-कोई देश के प्रति द्रोह भी कर बैठते है। राधास्वामी मत के लोग खास तौर से सन्तो के भक्त है। उनका सम्प्रदाय ही सन्तो की वाणी पर खडा है, परन्तु उनके साहिबजी देश की स्वाधीनता सम्बन्धी बातो से घबराते है। ये दोनो चीजे आपस मे एक कैसे हो सकती है? जो मनुष्य ईश्वर का प्रेमी है, ईश्वर के भक्तो का प्रेमी है, ईश्वर के गुणानुवाद गाता है, भक्तिरस मे डूबा रहता है, वह फिर खुशामदी, स्वार्थी और डरपोक कैसे हो सकता है? या तो ऐसे लोग ईश्वर को नही समझते, या उनका मस्तिष्क इतना विकृत होगया है है कि वे अपनी भूल देख नही सकते। हिन्दुओ मे ऐसी मानसिक अवस्था कैसे उत्पन्न होगई? एक बार दक्षिण भारत के किसी साधुसघ के सभापति ने मेरे पास अग्रेजी की एक पुस्तिका भेजी, जिसमे व्याख्यानो की लिस्ट दी हुई थी और मुझसे आग्रह किया गया था कि मैं हरिद्वार के कुम्भ पर होने वाले साधु-सम्मेलन मे किसी विषय पर व्याख्यान् दू। उसी पुस्तिका मे राजभक्ति की तस्वीरें थी, साथ ही कुछ खुशामद के शब्द भी थे।

यह देखकर मैं अचम्भे मे आ गया और मैंने संघ वालो को उत्तर मे लिख भेजा कि वे मेरा सहयोग नही पा सकते। कोई पुरुष किसी सम्राट् का हृदय से प्रशंसक हो, इसमे कोई बुराई की बात नही; लेकिन जो केवल डर से, अधिकारियो से मतलब निकालने के लिए इस प्रकार की बाते करते है और फिर कहते है कि वे ईश्वरभक्त भी है, उनके विरुद्ध मेरा हृदय सदा बगावत करता है। प्रत्येक मनुष्य को विचारो की स्वतत्रता है, लेकिन मक्कारी की स्वतत्रता किसी को नही। मुझे यह देखकर बडा दु:ख होता है कि मेरे देश मे अधिकाश लोगो की मानसिक अवस्था इस प्रकार की हो गई है कि ऐसी बाते करते हुए भी अपनी भूल नही देख सकते। पाप और पुण्य मे तमीज करने की शक्ति उनमे से जाती रही है। खास कामो को वे पाप-पुण्य समझते है। यदि कोई आदमी मास खाता है तो वह उनकी दृष्टि मे बडा पापी है, परन्तु यदि वह झूठ बोलता है, धोखा करता है, तो उनकी दृष्टि मे वह इतना बुरा नही माना जाता। शताब्दियो की गुलामी ने हमारे मस्तिष्क को विकृत कर दिया है और हमारे धर्माचार्यो ने हमें अत्यन्त गलत रास्ता बतलाया है। हम दार्शनिक सिद्धान्तो की तो सूक्ष्म मे सूक्ष्म घुण्डियाँ खोल सकते है, सामने बैठे हुए विद्यार्थियो को बडी बारीक बाते बतला सकते है, परन्तु जीवन की बडी स्थूल बातो को परख नही सकते। हिन्दू-मस्तिष्क इस प्रकार का विकृत क्यो होगया है ? हम बडा कष्ट उठाकर, बडे भक्ति-भाव से श्री बद्रीनाथ की यात्रा करते है, परन्तु रास्ते मे धर्म के साधारण नियमो को बराबर तोडते चले जाते है। स्वय वह पण्डा-पुजारी जो मन्दिर मे बैठकर यात्रियो को दर्शन कराता है, प्राय: महादम्भी और धूर्त्त होता है। हम उसकी धूर्त्तता देखते हुए भी ऐसे बन जाते है मानों हम उसे देखते ही नही। हमारा इस प्रकार का मस्तिष्क क्यों हो गया है ?

माताजी, मै यह सब बाते बराबर सोचता रहता हूँ। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दू जनता परस्पर विरोधात्मक विचारो के जंगल में भटक रही है, वह भटक-भटक कर अपने सोचने की बुद्धि को खो

बैठी है । आज इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि हम हिन्दुओ को सम्प्रदायों के इस भयकर जाल से निकाले और उनके सामने व्यावहारिक धर्म की स्पष्ट और सफल बाते रक्खे, ताकि वे आसानी से उन्हे समझ कर उन पर चल सके। मै भक्ति-मार्ग का विरोधी नही हूँ, लेकिन इतिहास यह बतलाता है कि जिन लोगो मे भक्ति-मार्ग का गहरा प्रचार हुआ, वे अकर्मण्य होगये। ईसाइयो मे भक्ति-मार्ग पर जनता को चलाने वाले सतो के मठ आज योरुप मे विद्यमान है। उनमे वहाँ के लोगो की किसी प्रकार की उन्नति नही हुई। भारतवर्ष मे भी ऐसे भक्तो की कमी नही रही। क्या उन्होने जनता मे चरित्र-बल-संगठन या किसी प्रकार की सामाजिक शक्ति पैदा की ? यदि सिक्ख सम्प्रदाय मे वीरशिरोमणि गुरु गोविन्दसिह जी न होते और वे सिक्खो मे क्षात्रधर्म न भरते तो कदापि सिक्ख समाज ऐसा बलवान् न हो सकता। भक्ति-मार्ग ने तो उनमे केवल गुरुडम ही भर दिया। गुरु गोविन्दसिह जी का बलिदान ऐसा अद्‌भुत था कि यदि उसमे गुरुडम न होता तो सिक्ख सारे भारतवर्ष पर कब्जा कर लेते । भक्ति-मार्ग के गुरुडम ने उनकी उन्नति रोक दी और थोडे ही वर्षों मे उनका संघ टूट गया।

आज हमे पक्षपात छोडकर, इतिहास की सब बातों पर गम्भीर दृष्टि डालकर, अपने देश मे फैली हुई विचार-धाराओ पर विवेचना करनी चाहिये। अन्धविश्वास मे बल है, किन्तु वह भयानक बल है । यदि वह फायदा कर सकता है, तो हानि भी बडी कर सकता है। भक्ति-मार्ग अन्धविश्वास का मार्ग है। यदि उससे किसी समय फायदा पहुच जाए तो इसका अर्थ यह नही कि वह मार्ग सदा के लिए लाभकारी है । भारतवर्ष के प्राचीन साहित्य को पढने से इस बात का पता चलता है कि बौद्धकाल से पहले इस देश मे भक्ति-मार्ग का कोई चिन्ह नही था। हमारे प्राचीनकाल के आर्य्यो का विचार-प्रवाह अत्यन्त नीरोग, क्षात्रधर्म-युक्त और व्यावहारिक था। बौद्धकाल में जो भगवान् बुद्ध की पूजा की भावना जनता मे जागृत होगई, उसी ने भक्ति-मार्ग का बीज बो दिया, जिसे लेकर ईशु क्राइस्ट बना और

ईसाइयो की देखादेखी उसका प्रचार सारे एशिया मे हुआ। हमारा भक्ति साहित्य बोद्धकाल के बाद की रचना है । खैर !

पोडी से मै पडित रेवानन्द जी के साथ लैसडौन की ओर रवाना हुआ। इस वार घोडे का प्रबन्ध होगया था, अतएव कुछ कष्ट नही हुआ। बाते करते हुए चले गये । सध्या को बानघाट पहुँचे । वहाँ पर रात रहना पडा। सवेरे विकट चढाई चढ कर जहरीखाल पहुँच गये । यह ग्राम लैसडौन से दो मील इधर है। यहाँ पर प० रेवानन्द जी के उद्योग से आर्यसमाज की एक छोटी सी कुटिया बनी हुई है । मै उसीमें जाकर ठहरा। आठ दिन तक यहाँ के हाईस्कूल के विद्यार्थियो को कुछ अपने विचार बतलाये । शहर के लोग भी उपदेश सुनने आ जाते थे। जहरीखाल लैसडौन छावनी से अलग है । छावनी मे तो समाज के वार्षिक अधिवेशन नही हो सकते, इस कारण जहरीखाल मे ही ऐसा स्थान ठीक करने का विचार किया, जहाँ आर्यसमाज के जल्से हो सके और स्वतन्त्र विचार के मनुष्य आकर ठहर सकें। छावनी मे तो खद्दर पहनने वालो पर खास निगाह रक्खी जाती है। इसी उद्देश्य से मै पण्डित रेवानन्द जी को लेकर लैसडौन गया। थोडा सा चन्दा कुटिया के लिए वहाँ किया और कुछ रुपया दुगड्डा मे जमा हुआ। पंजाबियों जैसी वलिदान की भावना इधर नही है। केवल पाँच सौ रुपये से यह स्थान ऐसा बन सकता है जहाँ गर्मियो मे कोई भला आदमी आकर रह सके और समाज के जल्से भी हो सके। जहरीखाल से सारे गढवाल मे प्रचार की सुविधा है । इतना होने पर भी यहाँ के लोग पाँच सौ रुपया जमा नही कर सकते। मैने उनसे साफ कह दिया कि यह काम आप लोगो के किए ही हो सकेगा। जब गरीव मुसलमान एक-एक पैसा जमा कर दुगड्ढे मे बडी अच्छी मस्जिद बना सकते है, तब आप साधु-संन्यासियो और प्रचारको के ठहरने के लिए एक कुटिया क्यो नही बनवा सकते ? देखे, यह काम कब होता है !

मैने आपको अपने गढवाल के अनुभव सुनाए। गढवाल की जनता में बडे विचित्र रिवाज़ फैले हुए है। जैसे जगली जातियाँ निर्दयता से पशुओ

का वध किया करती थी, वैसे अब भी हिंदू-मुसलमानों में पशुओं की कुरबानी की अत्यन्त बर्बरतापूर्ण रस्म चली जाती है। ऐसी बहुत-सी विचित्र बातें गढ़वाल में प्रचलित हैं। जब हम लोग पौड़ी से लौट रहे थे तो बहुत से ग्रामीण लोग ऐसे ही जगली उत्सव को समाप्त कर घर वापिस आ रहे थे। वे भैंसे को छुरा मारते हुए भगाते हैं। वह बेचारा दर्द के मारे बेचैन होकर बेतहाशा भागता है, तब उसके पीछे-पीछे गढ़वाली ग्रामीण छुरे भोंकते हुए दौड़ते हैं और अपने देवी-देवता को खुश करने के लिए उसका प्राण लेते हैं। ऐसी कुरबानियों का इधर रिवाज है। ब्राह्मण लोग देवी-देवता के नाम पर इस प्रकार के दुष्कर्म करवाते हैं और भेंटें लेते हैं। गढ़वाल में ही क्या, सारे भारतवर्ष में ऐसी कुरबानी की प्रथा प्रचलित है। अच्छे-अच्छे पढ़े-लिखे बंगाली काली माई के सामने बकरे चढ़ाते हैं। ईश्वर जाने कब तक मजहब का यह बीभत्स रूप हमारे देश में जारी रहेगा! हिंदू-मुसलमान दोनों अभी तक सच्चे धर्म से कोसों दूर हैं।

अच्छा माताजी, अब मैं अपने पत्र को बन्द करता हूं और आशा करता हूँ कि आपको गढ़वाल के मेरे अनुभवों से कुछ न कुछ लाभ अवश्य पहुँचा होगा।

मंगलाभिलाषी

सत्यदेव



चौंतीसवाँ पुष्प

अपनी डायरी में से कुछ

उस दिन समाचार-पत्र मे जब मैंने यह पढ़ा कि श्रीयुत देवीदास गाधी का विवाह पूने मे पण्डित राजगोपालाचार्य्य की कन्या श्रीमती लक्ष्मीदेवी से होने लगा है, तब मेरी नाड़ियो की रुधिर की धारा बडे वेग से बहने लगी। मैंने अपने दाहिने हाथ की कलाई पकडकर नब्ज़ देखी --सचमुच खून तेजी से चल रहा था। ऐसा क्यो ? विवाह की उस खबर ने पिछले पन्द्रह वर्षों की मधुर स्मृतियो को ताजा कर दिया। मै सोचने लगा-- "सन् १९१८-१९१९ के वे सुखद दिवस कहाँ चले गये ? काल प्रवाह मे विलीन होगये। वे कभी लोटेगे ? कभी नही। गया सो गया। दूर ! दूर !!"

मै फिर सोचने लगा--"कैसी थी वह शुभ घडी, जब महात्मा गान्धी जी से बेतिया (चम्पारन) मे मेरी भेट हुई। वह मारवाडी सेठ की धर्म-शाला, वह सीढियो का खुर्चन स्थान, जहाँ बापूजी दरी बिछाकर बैठा करते थे, मानो धर्मशाला मे उनके लिए बैठने को कोई जगह थी ही नही, पर उनका स्वभाव ही ऐसा था। वही, हाँ वही, पहली बार बालक देवीदास को देखा था। तेजस्वी बालक, गुलाब-सा चेहरा, ज्योतिपूर्ण आँखे और इकहरा बदन--श्वेत खादी मे वह बालक कैसा सुन्दर लगता था !

"वे चम्पारन के ऐतिहासिक दिन दूर चले गये। वह निलहे गोरो के पतन का नाटक इतिहास के गहरे गर्त मे छिप गया और वे नाटककार ! बिहारी जनता की वे भीडे ! अहो ! चला गया वह सब कुछ दूर--बडी दूर--पानी की धारा की भाँति न जाने कहाँ चला गया !"

चम्पारन की वे घटनाये एक-एक करके मेरे सामने नाचने लगी। पुलिस का वह अत्याचार, मेरे सामान की चोरी, गान्धी-आश्रम की राते,

प्रोफेसर कृपलानी के मजेदार चुटकुले और वह १४४ धारा की अवज्ञा—उन सबकी स्मृति आज कैसी ताजा बनी हुई है! १४४ धारा भग करने का वह कार्य्य ही महात्मा गांधीजी से मेरी घनिष्ठता का मुख्य कारण बना। गान्धीजी ने किस उदारता से मेरी बाँह पकडी! सर गएट को मेरे सम्बन्ध मे उनका पत्र, जिसकी प्रतिलिपि अभी तक मेरे पास है, तथा बाबू राजेन्द्र-प्रसाद जी के पुरुषार्थ से मेरी जेल-मुक्ति आदि घटनाये फिर स्मरण हो आईं।

सचमुच मनुष्य एक विचित्र प्राणी है। छोटे-से मस्तिष्क मे क्या कुछ धर लेता है! कैसे-कैसे फिल्म उसके दिमाग के घरो मे छिपे रहते है, जिन्हे वह समय-समय पर निकाल कर दिल बहलाता है। आज जरा से समाचार ने मेरे मस्तिष्क को गरम कर दिया, फिल्मो का चक्र चला दिया, देवीदास गान्धी नामक फिल्म बडी तेजी से घूमने लगी। इस फिल्म के सजीव संस्कार चित्रपट पर अकित है—ऐसे सस्कार जो कभी भूल नही सकते।

हाँ देखिए, वह फिल्म खुलता है। गान्धीजी का तार पाकर मै नडियाद (गुजरात) जा रहा हूँ। वहाँ मद्रास मे हिन्दी-प्रचार का प्रोग्राम बनता है। महात्माजी ने अपने लाडले बेटे देवीदास गान्धी को पहले से ही मद्रास भेज दिया है। मै भी उनके आदेशानुसार मद्रास रवाना होता हूँ। यह फिल्म सन् १९१८ के जुलाई मास से आरम्भ होती है।

मद्रास दक्षिण-भारत का सबसे बडा नगर है। प्रान्त की राजधानी होने के कारण भी इसको विशेष गौरव प्राप्त है। समुद्र के तट पर बसा होने के कारण यहाँ अधिक गर्मी नही पडती। समुद्र का शीतल समीर नगर-निवासियो को नवजीवन देता रहता है। इसी सिन्धु के अनुग्रह से यह व्यापार की भी बडी मण्डी है। सामुद्रिक व्यापार इसका खूब बढ सकता है, यदि भारतीयो को तिजारती सुविधाये प्राप्त हो।

इसी नगर मे पहले-पहल गान्धी-पुत्र मातृभाषा हिन्दी की पताका लेकर पहुँचे थे। जैसे महाराजा अशोक ने अपनी सन्तान को बौद्ध-

धर्म-प्रचारार्थ द्वीप-द्वीपान्तरो मे भेजा था, इसी प्रकार महात्मा गान्धी जी का यह चिरजीवी हिन्दीप्रचारार्थ मद्रास आया था। श्रीयुत देवीदास गान्धी की सहायतार्थ मै यहाँ भेजा गया था।

इस होनहार लडके ने बहुत जल्द लोकप्रियता प्राप्त कर ली और हिन्दी के वर्ग खोल दिये। जब मै पहुँचा तब काम आरम्भ हो चुका था। यही मेरा परिचय राजगोपालाचार्य्यजी से हुआ। मद्रासी ब्राह्मण जैसे तीक्ष्णबुद्धि होते है, ऐसा ही मैने इस श्यामवर्ण ब्राह्मण को पाया। आप हमारे हिन्दी-प्रचार कार्य्य मे बडी दिलचस्पी लेते थे। खास तौर से वे देवीदास गान्धी से स्नेह रखते थे और सलेम से बराबर मिलने आया करते थे। उस समय कौन जानता था कि यह जात-पाँत के बन्धनो से जकडा हुआ ब्राह्मण एक दिन मोढ वैश्य युवक को अपना दामाद बना लेगा। श्री राजगोपालाचार्य्य एक कुशल राजनीतिज्ञ व्यक्ति है। उनमे एक बडे राज्य का प्रबन्ध चलाने की योग्यता है। महात्मा गान्धी और राज-गोपालाचार्य्य दोनो मे ऊँचे दर्जे के आदर्शवाद के साथ-साथ व्यावहारिक बुद्धि की मात्रा भी काफी है।

ऐसे ही लोगो की सहायता श्री देवीदास को अनायास ही प्राप्त होगई। जब मै देवीदासजी के घनिष्ठ सम्पर्क मे आया तब इस कुशाग्र-बुद्धि 'ब्राह्मण' का पूर्ण परिचय मुझे मिला और मैने समझ लिया कि यह लम्बी चुटियावाला ब्राह्मण देवता काँग्रेस का बडा भारी नेता होगा। महात्मा गाँधीजी के 'सत्याग्रह-आन्दोलन' मे इन्हे बडी दिलचस्पी थी और हम लोगो में बराबर सत्याग्रह सिद्धान्तो के सम्बन्ध मे विचार-विनिमय होता रहता था। कच्छी मेठ के उस मद्रासी गली के मकान मे कैसे-कैसे वादविवाद हुए, वे ग्रीष्म-ऋतु की राते क्या कभी भूल सकती है?

महात्मा गाँधीजी के चार पुत्र है, किन्तु कोई कन्या नही। गाँधी जी की यह हार्दिक अभिलाषा थी कि कम से कम उनका एक लडका तो अवश्य ही बाल-ब्रह्मचारी रहकर जीवन-पर्य्यन्त देश-सेवा करे। उन्होने अपनी इस इच्छा को अपने सभी लडको पर प्रकट किया था, किन्तु भावी

के खेल विचित्र है--चारो पुत्रो मे से किसी ने भी उनके इस प्रस्ताव को स्वीकार नही किया ।

ऐसा क्यो हुआ ? यह भी एक मनोविज्ञान का गम्भीर रहस्य है । सयम और स्वतत्रता दोनो साथ-साथ नही चल सकते । महात्मा गाधी जी ने दोनो को साथ-साथ चलाने का प्रयोग किया, इसलिए उनके सयम की अभिलाषा स्वच्छन्दता का रूप धारण कर गई । पूर्व और पश्चिम की दो धाराओ का सगम करने की मनोकामना महात्मा जी के हृदय मे बडी तीव्र थी, परन्तु अनुभव ने यह बात सिद्ध कर दी है कि सयम के जिस आदर्श को भारत के ऋषिपुत्रो ने अपने सामने रक्खा था, उसमे दण्डपाणि भैरव के अनुशासन की अत्यन्त आवश्यकता है । जब आप अपनी सन्तान को बिलकुल स्वतन्त्र छोड देते है, उनका प्राकृतिक विकास देखने के इच्छुक है और साथ ही आप उनकी शुतुर-बे-मुहार आदतो को कटा हुआ भी देखना चाहते है, ये दोनो बाते अभी तक सम्भव नही हो सकी। जो माता-पिता पूर्व के आदर्श को पश्चिम की भित्ति पर रखकर उसे सफल बनाना चाहते है उन्हे महात्मा गाधीजी के इस असफल प्रयोग से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए ।

हाँ, मै क्या कह रहा था--वही देवीदास गाधी की बात। हम लोग इकट्ठे एक ही साथ मकान मे रहते थे । जब देवीदास गाधी हिन्दी के वर्ग पढाने के लिए अथवा किसी और कार्यवश बाहर जाते थे, तब मै उनकी वापसी का रास्ता कैसी अधीरता से देखा करता था ! नि सन्देह महात्मा गाँधीजी के इस सुपुत्र ने अपने पिता से कुछ विभूति पाई है, जिसके कारण वह दूसरो को वश मे करने की विद्या जानता है। हमारे वर्गो के सभी विद्यार्थी --बूढे और जवान--उनसे बडा स्नेह करते थे और उसी आकर्षण के कारण वर्गो का प्रचार करने मे बडी भारी सफलता मिल गई। उसी ज़माने मे महात्मा गाँधीजी के पुराने भक्त, दक्षिण-अफ्रीका के उनके पुराने प्रशसक और सहायक श्री प्रयागजी भाई देसाई भी यहाँ पर व्यवसायार्थ आये हुए थे । वे अपने हिस्सेदार के साथ हम लोगो से बराबर

मिलने आते थे और हम चारों जने समुद्र के सुखद समीर का आनन्द लेने के लिए सिन्धु-तट पर जाते थे। समुद्र मे स्नान के वे मजे, वह कूद-फाँद और वह स्नेहपूर्ण हँसी-मजाक——आहा, क्या कभी भूल सकता है ?

सचमुच मद्रास मे हिन्दी-प्रचार का वह फिल्म मेरे जीवन की एक खास घटना है। आज हिन्दी-प्रचार का वह पौधा वृक्ष का रूप धारण कर गया है और उसके नीचे हजारों परीक्षार्थी विश्राम लेते है और राष्ट्रभाषा हिन्दी के गीत गाते है। लेकिन उस समय हम लोगो को स्वप्न मे भी ऐसे सुन्दर परिणाम का ध्यान नही था। हम लोग तो काल की उस प्रबल धारा मे बहे जा रहे थे जो क्रियाशील मनुष्यो को आप ही आप बहाये लिये जाती है।

हाँ, गाँधी-पुत्र के विवाह की बात। उस समय देवीदास गाँधी के हृदय मे विवाह-सम्बन्धी कोई तरग न थी। यह सच है कि स्नेह से पूर्ण इस बालक के हृदय मे उस वस्तु का बीज-वपन हो चुका था जो भविष्य मे विवाह का रूप धारण करता है। मैने उसे उसी समय देख लिया था, परन्तु मुझे यह कभी स्वप्न मे भी ध्यान नही था कि श्री राजगोपालाचार्य की विदुषी दुहिता के साथ इस सुन्दर गुजराती नवयुवक का पाणिग्रहण हो जायगा। लेकिन समय क्या नही करा सकता ? आज उन घटनाओ को घटे १५ वर्ष हो गये और देवीदास गाँधी भी अपने पूर्ण यौवन मे आ गया है। उसके पिता की उस पर कैसी आशाये थी और वे किस दिव्य स्वप्न का दर्शन इस बालक के जीवन मे देखना चाहते थे, उसे महात्माजी के हृदय के बिना कौन जान सकता है ? माता कस्तूरीबाई गाँधी का यह दुलारा पुत्र अपने यशस्वी पिता और प्रात स्मरणीया माता के आदर्शो को भविष्य मे किस रूप मे पूरा करेगा, इसे मै जानने का अत्यन्त उत्सुक हूँ, क्योकि मुझे उसके जीवन मे, उसके उत्थान मे ओर उसके कल्याण मे ऐसा ही रस, ऐसी ही रुचि और ऐसा ही ध्यान है जैसा कि किसी परमहितैषी मित्र को होना चाहिये।

यह सच है कि देवीदास गाँधी के राजनीतिक विचार अपने तपस्वी पिता से बहुत भिन्न है और दोनो के जीवनादर्शो मे भी बडा अन्तर है, तो भी अपने पिता का सर्वश्रेष्ठ पुत्र होने के नाते यह नवयुवक अवश्य ही अपने पिता के नाम को उज्ज्वल करेगा और भारत-माता की सेवा मे जीवन लगायेगा। मेरा उसे यही आशीर्वाद है।

पैंतीसवाँ पुष्प

महापुरुष के दर्शन

बर्लिन के कुछ क्वेकर (Quakers) मित्रो ने मेरे पास निमन्त्रण भेजा और आग्रह किया कि मै जर्मनी आकर युद्ध के विरुद्ध कुछ व्याख्यान दू। ससार मे शान्ति की स्थापना और युद्ध को सदा के लिए बन्द करने के उद्देश्य से आजकल कई-एक भद्र पुरुष और महिलाएँ अपनी सारी शक्ति योरुप की जनता को यह पवित्र शिक्षा देने मे लगा रहे है । जर्मनी मे भी इस विचार के बहुत से पोषक थे, जो रोमा रोलाँ और महात्मा गाँधी के आदर्शों का प्रचार जनता मे करते थे। क्वेकर लोग तो कई सदियो से युद्ध के विरोध मे अपना प्रचार व्यावहारिक रूप मे कर रहे है और पिछले योरुपीय महासमर के समय उनमे से एक बडी संख्या इसी कारण अपने देश के शासको की कोपभाजन भी बनी थी।

इन्ही लोगो ने मेरे पास निमन्त्रण भेजकर आग्रह किया कि मै जर्मनी की अग्रेजी जानने वाली जनता के सामने अपने विचार प्रकट करूँ, जो बाद मे अनुवादित होकर समाचार-पत्रो मे छपवा दिये जायेगे । मैने चूकि उस समय न्यूयार्क मे एक व्याख्यानमाला प्रारम्भ की हुई थी, इसलिए अपने मित्रो को उत्तर लिख भेजा कि व्याख्यानमाला पूरी होते ही मैं अटलान्टिक महासागर को पार करूँगा। जब व्याख्यानमाला समाप्त हुई तो मैने योरुप जाने की तैयारियाँ की। आजकल की तैयारियाँ भी क्या है— मामूली सामान लेकर यात्री अमरीका मे योरुप और योरुप से अमरीका जाते-आते रहते है। विज्ञान ने आजकल सब कुछ आसान कर दिया है। हम एक दूसरे के अत्यन्त निकट होते जा रहे है। जो यात्रा महीनो मे हो सकती थी, वह आज दिनो मे समाप्त कर ली जाती है । मैने अपनी जरूरी पुस्तके और व्याख्यानो की सामग्री साथ ले ली; यही मेरा आवश्यक सामान था।

बर्लिन मे ग्रूनावाल्ड नाम का स्थल अत्यन्त रमणीक है । बडे-बडे शहरो के इर्द-गिर्द आवादी बढ जाने के कारण छोटे-छोटे कस्बे आबाद हो जाते है, जहाँ वे लोग जिन्हे शहर मे सुभीते का मकान नही मिलता, या वे जो शहर की गन्दी हवा मे रहना पसन्द नही करते, वस्तियाँ बसाते है। पाश्चात्य देशो के प्रत्येक बडे नगर के इर्द-गिर्द इस प्रकार की वस्तियाँ है, जो पहले शहर से अलग मानी जाती थी परन्तु बाद मे बडे शहर का अग बन गई। ग्रूनावाल्ड भी ऐसी ही एक वस्ती बर्लिन शहर से बाहर बसी हुई है, जहाँ महासमर के पहले प्राय धनी लोग बसते थे और अब जर्मनी की आर्थिक अवस्था बिगड जाने के कारण सब स्थितियो के लोग रहते है। यहाँ की हवा बडी नीरोग और गलियाँ बडी साफ-सुथरी बनी हुई है, जहाँ मीलो घूमने का आनन्द मिलता है । बडे मनोहर पार्क भी आस-पास है और लडको के खेलने के लिए एक विशाल क्रीडा-स्थल भी है। इसी बस्ती मे रहने वाले अपने मित्र मिस्टर ब्लॉक के घर मे आकर मै ठहरा ।

ये अगस्त के मध्य के दिन थे। मेरे व्याख्यान शहर की क्लबो मे हुए। लोगो मे युद्ध के विरुद्ध अच्छी जागृति देखकर मे बडा प्रसन्न हुआ। जर्मन भाषा मे एक पुस्तक युद्ध के विरुद्ध निकली है। इसका नाम है --"पश्चिमी सीमा पर कोई खबर नही।" इस किताब की लाखो प्रतियाँ छपी है और यह पुस्तक अत्यन्त ही लोकप्रिय है । इसका अनुवाद योरुप की प्रत्येक भाषा मे होगया है। इस पुस्तक ने युद्ध के विरुद्ध बडा जबर्दस्त प्रोपेगैडा किया है। मुझे सभी क्लबो मे सुनने वालो की अच्छी भीड मिली और समाचार-पत्रो ने बडी उदारता से टिप्पणियाँ की। मै अपने व्याख्यानो के प्रोग्राम मे ही लगा हुआ था कि समाचार-पत्रो मे यह खबर छपी--"मिस्टर गाधी लन्दन के लिए रवाना होगये ।"

मै तो खुशी के मारे उछल पडा। मेरे पास महात्मा गाधी का एक पत्र पहले आ चुका था, जिसमे उन्होने योरुप-यात्रा का विचार छोड देने की बात लिखी थी। मुझे कोई आशा नही थी कि महात्मा जी योरुप आवेगे।

अब जब अकस्मात् इस प्रकार की खबर अखबारों मे छपी और मुझे पूरी तरह से तसल्ली होगई कि महात्मा गाधी पी० एण्ड ओ० कम्पनी के 'राजपूताना' जहाज पर सवार होकर योरुप आ रहे है, तो मैने अपना प्रोग्राम बदल दिया और उस महापुरुष का दर्शन करने के विचार से बर्लिन छोडने की तैयारी करने लगा। मिस्टर ब्लॉक ने मेरी बडी खातिर की और वे चाहते थे कि मै इतनी जल्दी जर्मनी से न जाऊँ, परन्तु जब मैने उन्हे महात्मा गाधी के प्रति जो श्रद्धा और भक्ति मेरे हृदय मे है उसका वर्णन किया तो वे सहमत होगये और उन्होने अपने एक विश्वासपात्र मित्र मिस्टर रोजन हाइन को मेरे साथ लन्दन तक जाने के लिए तैयार कर दिया। पी० एण्ड ओ० कम्पनी का जहाज १२ सितम्बर को मार्सलेज पहुँचने वाला था, इसलिए मैने यह सोचा कि महात्मा गाधी से मिलने का अच्छा मौका फोक्सटोन मे मिलेगा, क्योकि वहाँ वे सब अँग्रेज--स्त्री और पुरुष--एकत्रित होगे जो महात्माजी के मिशन मे उनकी मदद करने वाले है, वही पर मुझे भी रहना चाहिए और मै यह भी देख सकूगा कि महात्माजी का अग्रेज लोग कैसा स्वागत करते है।

सचमुच यह मेरे बडे सौभाग्य की बात थी कि मै महात्मा गाधी से भेट करने के लिए वहाँ पहुँचा जहाँ उन्होने सब से पहले इगलैड की भूमि पर पैर रखना था। वह शनिवार, १२ सितम्बर की सुबह, मेरे जीवन मे अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रक्खेगी। इगलिश चैनल को पार करने वाले स्टीमर की इन्तजार मे मै उस प्रात काल फोक्सटोन के बन्दरगाह पर खडा था। यह आदर्श अग्रेजी मौसम था--खूब ठण्डा, गहरी धुन्ध और बीच-बीच मे मेह की बौछार! प्रचण्ड वायु समुद्र की लहरो मे सफेद झाग पैदा करता था और शरीर को हड्डियो तक कम्पा देता था। लहरे झूले की तरह ऊपर नीचे जाती हुई बह रही थी, जिन्हे देखकर भय प्रतीत होता था। मै ब्रिटिश सरकार के एक अधिकारी के साथ बाते कर रहा था। ब्रिटिश सरकार ने पुलिस का एक दस्ता महात्मा गाँधी की रक्षार्थ भेजा था। मै उन्ही के अफसर के साथ बाते करने मे मशगूल था।

हम लोग पहले तो इधर-उधर के विषयों पर बातचीत करते रहे। अचानक ही उसने अपना हाथ उठाया और इशारा करके मुझसे कहने लगा — "क्या आप उस जमीन के टुकड़े को देखते है ? वह जो सफेद पहाड़ियों के पास उत्तर की ओर डोवर की तरफ है ? यह वह स्थान है जहाँ पर विख्यात रोमन विजेता जूलियस सीजर अपनी फौजे लेकर ब्रिटेन को फतह करने के लिए आया था।"

'इगलिस्तान को विजय करने के लिए !' यह शब्द मेरे कानो मे गूजने लगे। मेरे सामने रोमन इतिहास का वह चित्र खिच गया जब सीज़र अपनी दुर्दमनीय सेना के साथ इगलैण्ड की भूमि पर उतरा था। उसकी बीसवी रेजिमैन्ट इस भूमि पर तीन सौ वर्ष तक पडी रही और इंगलैड के लोगो पर शासन किया। उस रोमन विजेता का वह चित्र मेरी आँखों के सामने कुछ मिनटो तक रहा। इसके बाद एक दूसरा पर्दा उठा। सीज़र के एक हजार वर्ष बाद दूसरा विजयी वीर इगलैण्ड की भूमि पर अपनी सेना लेकर आया—नार्मण्डी का वह विश्वविख्यात सेनापति विलियम प्रथम जिसने इगलिस्तान के निवासियो को पराजित कर वहाँ पर अपना उपनिवेश कायम किया। यह विजेता फौक्सटोन से कुछ मील दक्षिण की ओर पैन्सकाई मे उतरा था और यहाँ के सैक्सन लोगों को उसने बडी विकट पराजय दी थी। एक हजार वर्ष और बीत गये। इगलिस्तान के लोगो के लिए विजयी विलियम से पराजय कथामात्र रह गई। अब एक तीसरा आक्रमणकारी एक हजार वर्ष के बाद फिर इगलिस्तान की भूमि पर उतरना है। उसका स्टीमर कुछ ही मिनटो मे इस बन्दरगाह पर आ लगेगा। उसके पास कोई फौज नही। वह अपने साथ कोई भयंकर हथियार मनुष्यों का संहार करने के लिए नही लाया। वह किसानों के लहलहाते खेतों, सुरम्य उद्यानों, घने जंगलों और बसे हुए नगरों को उजाडने के लिए नहीं आता। उसका मिशन घृणा का नहीं और न वह किसी से द्वेष रखता है। वह प्रेम का सन्देशा देने के लिए आया है। उसका हथियार अहिसा है, जो सब प्राणियों को अभयदान देता है। पिछले दो विजेता इंगलैड को

पाँवों तले रौंदने के लिए आये थे, उसका मान मिटाने के लिए आये थे और उस पर शासन करने के लिए उन्होने शस्त्रो का प्रयोग किया था, परन्तु यह विजेता अपने ढग का निराला है, जो ससार के इतिहास मे एक नया युग लाने वाला है । यह मनुष्यो के हृदयो पर विजय पाता है । इस तूफ़ानी इगलिश चैनल को पार करने वाला यह विजेता इगलैंड को एक बडे खतरे से बचाने के लिए आ रहा है—वह खतरा जो प्रत्येक साम्राज्यवादी राष्ट्र को होता है । वह चाहता है कि इगलैण्ड रोमनो की तरह मिट न जाये, बल्कि अपना अस्तित्व क़ायम रखकर ससार के ज्ञान के भण्डार की वृद्धि करे ।

मैंने अपने चश्मे पर पड़ी हुई वर्षा की बूदो को रुमाल से दूर किया और शीशे को साफ किया, ताकि मै धुन्ध मे से समुद्र को देख सकू और आने वाले स्टीमर का कुछ पता पा सकू । दूर सामने क्षितिज पर सफेद छोटा सा दाग दिखाई देने लगा । वह वही स्टीमर था जो महात्मा गान्धी को हमारी ओर ला रहा था । देखते-देखते स्टीमर निकट आ गया और बन्दरगाह के किनारे पर आ लगा । वह खास प्रतिनिधि जो ब्रिटिश सरकार की ओर से महात्मा गान्धी का स्वागत करने के लिये मौजूद था, सबसे पहले स्टीमर पर चढा । केवल इसी को पहले जाने की आज्ञा थी, बाकी हम सब जने प्रतिबन्धक के पीछे खडे थे । महात्मा गान्धी के मित्र, भारतवर्ष के प्रतिनिधि, कैन्टरबरी का डीन, अखबारो के सम्वाददाता, फोटोग्राफर और दर्शको की बडी भीड —ये सब यहाँ पर बडे धैर्य्य से महात्मा गान्धीजी का दर्शन करने के लिए खडे थे, लेकिन हम लोगो को बहुत समय तक प्रतीक्षा नही करनी पडी । उस अधिकारी ने अधिक समय नही लिया । थोडे ही मिनटो के बाद हम लोग स्टीमर पर चढे और मैंने अपने आपको महात्मा गान्धी के केबिन के दरवाज़े पर खडा पाया । मै अन्दर जाने की प्रतीक्षा मे था, क्योकि महात्मा गान्धीजी एक दूसरे नवयुवक के साथ बातो मे मशगूल थे । यहाँ मुझे महात्मा गान्धीजी की पहली झाँकी मिली । वे अपनी बर्थ पर पालथी मारे बैठे थे और वह नवयुवक किसी विषय पर उनके

साथ विचार मे मग्न था। यह वही क्वेकर नवयुवक था--रेगनॉल्ड रेनल्ड्स --जो महात्मा गान्धी के साथ उनके आश्रम मे कुछ समय तक रहा था और जिसको गान्धीजी ने अपनी डॉडी यात्रा से पहले वायसराय के पास चिट्ठी देकर भेजा था। उसी चिट्ठी ने रैनल्ड्स का नाम प्रसिद्ध कर दिया। गान्धीजी की टागे नगी थी, उनका शरीर खद्दर की शाल से ढका हुआ था। उनका सिर और कन्धे आगे की ओर झुके हुए थे, ताकि वे रैनल्ड्स की बाते अच्छी तरह सुन सके। एक नगी लबी और पतली भुजा ने रैनल्ड्स के हाथ से एक कागज ले लिया। दोनो के बीच बडी शीघ्रता से कुछ वार्तालाप हुआ, तब मैने गान्धीजी के चेहरे पर मधुर मुस्कराहट देखी और रैनल्ड्स की मुलाकात समाप्त हुई।

अब मेरी बारी आई। मैने उस छोटे केबिन मे प्रवेश किया। तत्क्षण गान्धीजी खडे होगए। वे स्कूल के छात्र की तरह उछलकर अपनी जगह से नीचे उतरे और आगे बढकर स्वागत के रूप मे मेरे साथ हाथ मिलाया। मैने अनुभव किया कि मेरा हाथ एक मजबूत पजे ने पकड लिया है; जिसे मै दुबला-पतला समझता था, उसका हाथ कसरती की तरह मजबूत निकला। मैने महात्माजी की चमकती हुई आँखे देखी--वह दिव्य प्रकाश जो उनके मोटे और भद्दे चश्मे की बाधा होने पर भी जगमगा रहा था। मेरे कानो ने उनकी आवाज को सुना--वह मीठा, गम्भीर और मृदु स्वर जिसने मेरा नाम लिया और मैने अपने आपको धन्य-धन्य माना। वे अमूल्य लहमे थे, जिनमे मेरी महात्माजी से पहली भेट हुई। मै इतना प्रभावित हुआ कि मुझे गान्धीजी के कहे हुए शब्द भी स्मरण नही रहे। इस पहली मुलाकात मे हार्दिक भावो का अधिक वेग था। वर्षो की दबी हुई भूख थोड़े ही से लहमो मे शान्त नही हो सकती थी, केवल कुछ रसास्वादन ही कर सका। मेरे मुह से कुछ शब्द नही निकल सके। मै उस महापुरुष के सामने खडा था जिसकी आत्मा ने कई वर्ष पहले समुद्र, महाद्वीप और हज़ारो मील लाँघकर मुझे अपना दैवी सन्देश सुनाया था, जिसके विषय मे मैने हज़ारों नर-नारियों के सम्मुख उसकी कीर्ति गान की थी और जिसके

लेख मे 'यङ्ग-इण्डिया' मे बडे चाव से पढा करता था। उस महापुरुष के सामने आज मै उपस्थित होकर उसकी महान् आत्मा के प्रभाव से प्रभावित हो रहा था--वह प्रभाव जो अमिट होता है ।

यह पहला प्रभाव किस प्रकार का था? उसमे दूसरे प्रभावों की अपेक्षा क्या भेद था--वे सस्कार जो मुझ पर बाद की मुलाक़ातो मे पडे? मेरे लिए इस प्रश्न का उत्तर देने मे कोई कठिनाई नही । यह प्रभाव उस महापुरुष के सौन्दर्य्य का था, जिसने मेरे हृदय पर अपना अधिकार जमा लिया। लोग कहते है कि गाधी बडा बदसूरत है और छोटे बन्दर की तरह उसका शरीर है, उसके दाँत सब गिरे हुए है और वह महा भद्दा बौना आदमी है। मुझे अत्यन्त आश्चर्य है कि उन्हे ऐसा सस्कार कैसे पडा? यह सच है कि गाधीजी का शरीर और अग कृश है, तपस्या के कारण उनके शरीर पर फालतू मास नही, लेकिन गाधीजी की काया विशाल, आकृति सीधी तथा कद खासा लम्बा है । मैंने बहुत ऐसे भारतीयो को देखा है जो महात्मा गाधीजी की अपेक्षा बहुत छोटे कद के थे । यह भी सच है कि महात्मा गाधीजी की मुखरेखा आकर्षक नही। उनका सिर मुडा हुआ, बड़े-बड़े कान, मोटे होठ और दन्तरहित मुह, लेकिन उनका स्याह रग, सफेद खद्दर की शाल के पृष्ठ देश पर अत्यन्त भला लगता था। उनकी आँखे मोमबत्तियो की तरह रात को प्रकाश देती है और सबसे बढ़कर मुस्कराहट की वह ज्योति है जो प्रात काल के सूर्य की किरणो की तरह लावण्यमयी है । इस महापुरुष के बाह्य शारीरिक स्वरूप का इतना प्रभाव नही जितना कि उसकी आत्मा का प्रभाव दर्शक पर पडता है । फौरन आप पर उनकी सादगी, सच्चाई और सरलता का प्रभाव पडता है । वह बालक की तरह बिना किसी बनावट, लागलपेट और अस्वाभाविकता के आप से मिलता है । उसकी जगद्विख्यात महापुरुषता के बावजूद उसमे अहम्मन्यता का एक अणु भी नही। अपनी उच्चशिक्षा और वर्षों के कठिन अनुभव होने पर भी उसमे कुण्ठता, छल और लेशमात्र भी अभिमान नही है। आप फौरन इस बात को महसूस करेगे कि उसकी बाहर की आकृति का भद्दापन और उसके

विचित्र रहने के ढंगो मे किसी प्रकार का भी दम्भ अथवा कपट नही, बल्कि एक महापुरुष की सत्यता और निर्भयता के ज्वलन्त प्रमाण है। अतएव गाधीजी की शक्ल-सूरत का प्रभाव बिल्कुल गौण हो जाता है, मुख्य बात यह है कि वे कैसे आदमी है, उनका स्वभाव कैसा है। आप एक विकृत शरीर द्वारा साक्षात् सत्य की मूर्ति का दर्शन करते है। असल मे यही वस्तु है जो गान्धीजी को सुन्दर बनाती है। क्योकि यदि आप सचमुच किसी सुन्दर पदार्थ का दर्शन करना चाहते है तो सबसे पहले आपको यह जान लेना चाहिये कि वह सत्य है या असत्य। सुन्दर वही है जो सत्य और शिव है। कविवर कीट्स ने अपनी एक कविता मे इसी का समर्थन किया है। वह कहता है—'सत्य ही सुन्दर है और जो सुन्दर है वही सत्य है।' यही सिद्धान्त जानने योग्य है।

कुछ मिनटों के बाद हम लोग फोक्सटोन से चले। गाँधीजी के लिए सरकारी मोटरकार तैयार थी, जिस पर सशस्त्र पुलिस का पहरा था। मै रेलगाडी मे महात्मा गांधी के लडके देवीदास के साथ सवार हुआ। हमारे साथ मिस स्लेड भी थी, जिसका नाम अब मीराबाई प्रसिद्ध है। हम बहुत शीघ्र लन्दन पहुँच गये और कीचड और वर्षा के बीच क्वेकर लोगो की उस सभा मे पहुँचे जहाँ महात्मा गाँधी के स्वागत का प्रबन्ध किया गया था। वही पर सभा होने वाली थी। ज्यो ही गान्धीजी ने व्याख्यान-भवन मे प्रवेश किया, उस समय मेरे मन पर उनकी सुन्दरता का बडा भारी प्रभाव पडा और उनके ज़बर्दस्त व्यक्तित्व ने मेरे हृदय पर गहरी छाप डाली। किस तेजस्विता से वह प्लेटफार्म पर गये, किस गम्भीरता से उन्होने अपने सामने बैठी हुई अग्रेजी जनता का निरीक्षण किया और किस प्रभुता से उन्होने उन स्त्री-पुरुषो को वश मे कर लिया! समय और हालात से अनभिज्ञ, महात्मा गान्धी की महत्ता से नितान्त अपरिचित किसी दर्शक के लिए वह दृश्य हास्यास्पद हो सकता था। ब्रिटिश-साम्राज्य की राजधानी लन्दन मे, ईसा की इस बीसवी शताब्दी मे, वैज्ञानिक सभ्यता के प्रचण्ड युग में, यहाँ एक अजनबी हिन्दुस्तानी अपने नंगे पैरों, नंगी टाँगो के साथ घुटनो तक धोती पहने

हुए, जिसका शरीर खद्दर की चद्दर से ढका हुआ है, फैशनेबिल अंग्रेजी स्त्री पुरुषो के सामने भाषण देने के लिए आता है और अपनी जगह पर भगवान् बुद्ध की तरह शान्त और निश्चिन्त होकर बैठ जाता है । यह दृश्य अज्ञानी के लिए भले ही हास्यास्पद लगे, लेकिन मनुष्य-स्वभाव के निरीक्षक और मनोविज्ञान से परिचित व्यक्ति के लिए तो निस्सन्देह यह दैवी चित्र था। सम्मानसूचक वह चुप जो उस कमरे मे महात्मा गान्धी के प्रवेश करते ही व्याप्त होगई, उसे मे कभी नही भूलूगा । क्योकि अब प्रथम बार मुझे उस रहस्य का पता चला कि जिसके कारण गान्धीजी का अपने देश के करोडो जन-साधारण पर जादू का सा असर था। यदि गान्धीजी के स्थान पर कोई सम्राट् वहाँ उपस्थित होता तो उसके सामने हम मे महात्मा गान्धी से अधिक सम्मान की भावना उत्पन्न न होती। अकस्मात् ही मुझे अंग्रेजी पत्रकार मिस्टर कार्नेज का कथन स्मरण हो आया, जिसने मुझसे कहा था कि ज्योही आप महात्मा गान्धी के समीप जायेंगे त्योही आपको शाही वातावरण का भान होने लगेगा। इससे कुछ दिन पहले मेरी मुलाकात एक अत्यन्त सुन्दर, शाही ठाठ वाले व्यक्ति से हुई थी जो ३० वर्ष तक बादशाह रह चुका था। बावजूद उसके सारे राजसी ठाठ-बाठ के उसका प्रभाव मेरे हृदय पर गाँधीजी के मुकाबले मे कुछ भी न पडा था।

लेकिन महात्मा बादशाहो की तरह नही था। उसकी बोलचाल, उसके कपडे, उसका वदन और उसकी चाल-ढाल राजाओ जैसी हुकूमत चलाने वाली नही थी। उस दोपहर को उनके शब्द बडे कोमल लेकिन एक स्वर मे कहे गये थे। तो भी जैसे ही वे शब्द हमारे कानो मे पहुँचे, उनका प्रभाव शाही घोषणा की तरह हम पर पडा। गाँधीजी ने स्पष्ट तोर से तीन बाते बतलाई। सब से पहले, अपना कहने का अधिकार। क्यो वे इगलिस्तान आए ? वह एक व्यक्ति नही, बल्कि एक सस्था और राष्ट्र का प्रतिनिधि है। बिना किसी विरोध के वह कह सकता है कि वह भारतवर्ष के मूक, नगे और भूखे करोडो नर-नारियो का प्रतिनिधि है दूसरी बात गाँधीजी ने आज्ञापत्र के विषय मे कही--"वह ब्रिटिश पार्लिया

मेट के साथ किसी प्रकार का अपनी ओर से स्वतन्त्र समझौता करने के लिए नही आया, वल्कि काँग्रेस ने जो शर्त्ते पेश की है उन्हे वतलाने के लिए आया है। वह काँग्रेस के आज्ञापत्र के वाहर नही जा सकता। जो अमानत उसके हाथ मे उसके देश की राष्ट्रीय सभा ने दी है, वह उसके विरुद्ध नही कर सकता।" तीसरी वात उन्होने अपने आदर्श के विषय मे यह कही--"आज्ञापत्र क्या कहता है ? स्वाधीनता ! स्वाधीनता !! काँग्रेस भूखे, नगे और मूक भारतीयो के लिए शुद्ध स्वाधीनता चाहती है, इस आदर्श मे से रत्ती भर घटाया-वढाया नही जा सकता।" महात्मा गाँधी एक भविष्यवक्ता की तरह बोले और उन्होने एक शासक की नाई अपना सन्देश सुनाया।

मै वापिस न्यूयार्क आ गया। अपने पुस्तकालय मे कुर्सी पर बैठा हुआ खिडकी मे से देख रहा था। मेरे सामने यात्रा के दृश्य घूमने लगे। मैने ससार के सव से बडे महापुरुष के दर्शन किये। हजरत ईसा के विषय मे हम पुस्तको मे पढते है, भगवान् बुद्ध के महान् कार्य्यो की वावत हमे विस्मय-जनक वाते वतलाई जाती है, परन्तु वे ऐतिहासिक घटनाए है, जिनके विषय मे हमे दूसरो के कथनो पर निर्भर रहना पडता है, लेकिन यह महापुरुष, जिसके मैने दर्शन किये है, इस युग का पैगम्वर है। आने वाली सन्तान तो उसकी कथाए ही कहेगी, पर मैने तो उससे साक्षात्कार कर लिया है। सचमुच महापुरुष होने के लिए महान् गुणो की आवश्यकता है, वडी तपस्या की आवश्यकता है और वडे धैर्य्य की जरूरत है। महात्मा गाँधी अपने विरोधियो, गाली देने वालो और निन्दको मे द्वेष नही करते। डाक्टर अम्वेदकर ने किस प्रकार उनका अपमान किया, परन्तु तिस पर भी गाँधीजी के चेहरे पर जरा भी मैल नही आई। उनका हृदय कैसा निर्मल और कैसा विशाल है ! यह मेरा सौभाग्य है कि मुझे युग परिवर्तन करने वाले इस महापुरुष से भेट होगई। मैने अत्यन्त निकट बैठकर उसका अध्ययन कर लिया। इस प्रकार सोचते-सोचते मेरा हृदय गद्गद् होगया और मैने सिर झुकाकर प्रभु को धन्यवाद दिया कि जिसने

मुझे ऐसे अवसर पर उत्पन्न किया कि जब एक जगत्-श्रेष्ठ महापुरुष के दर्शन हो सके । भारतवर्ष धन्य है, उसकी संस्कृति धन्य है, उसका साहित्य धन्य है और उसकी उपनिषदें धन्य हैं, जिनके उपदेशों ने ऐसा महापुरुष संसार को दिया है ।

महापुरुष का लक्षण

वे नर पुँगव हैं महा, वही शाह सिरताज,
जो निज विमल चरित्र से, उन्नत करें समाज ।
उन्नत करें समाज, यथा चन्दन करता है,
चहुँ दिशि चारु सुगन्ध, तरुगण में भरता है ।
कहे 'देव' उत्थान हो जिनके सतसंग से,
जो भर दें सम भाव, महापुरुष हैं सत्य वे ।



छत्तीसवाँ पुष्प

परिव्राजक के अनुभव

दिन के बारह बज चुके थे। मैं पठानकोट के स्टेशन पर सेकण्ड क्लास के वेटिंग रूम के पास कुर्सी पर बैठा हुआ शीतल पवन का आनन्द ले रहा था। पहाड पर वर्षा आरम्भ हो चुकी थी, इस कारण हवा में ठंडक पड गई थी। अमृतसर जाने वाली गाडी प्लेटफार्म पर आकर लगी और उसका एक सेकण्ड क्लास का डिब्बा आया ठीक मेरे सामने। मैं खुश होगया, क्योंकि मुझे उसी में बैठना था। लेकिन मेरे देखते-देखते डलहौजी वाली बस से तीन फौजी गोरे उतरे और झट से आकर उसी डिब्बे की तीनों सीटों पर अपने बिस्तरे रखकर खुद पेट भरने के लिए 'भोजन-घर' में चले गए। मेरा कुली घबराया हुआ मेरे पास आया और बोला--"स्वामीजी, यह डिब्बा तो गोरों ने घेर लिया और अगला जो दूसरे दर्जे का डिब्बा है वह रिजर्व है। अब आप कहाँ बैठेंगे?"

मैंने हँसकर जवाब दिया--"अरे, वे तीन ही गोरे है न? वे सारा डिब्बा तो सँभालेंगे नहीं।"

खैर, मैंने सामान उठवाया। मेरे पास छ अदद थे--चार मेरे और दो मेरे विद्यार्थी के। अपना सामान उसी डिब्बे में रखवाकर मैं बीच की सीट पर बैठ गया। मेरे सिर पर बिजली का पंखा था। एक भलामानस आकर उसे ठीक मेरे अनुकूल कर गया और मैं उसकी हवा के झोंके लेने लगा। एक प्रेमी महाशय मेरे लिए भोजन ले आए। भोजनोपरान्त मैंने टिकट खरीदा। देहली तक २४) पड गए। अब मैं लगा गाडी के चलने की इन्तजारी करने।

स्टेशन पर के लोग कुछ विस्मित से थे, क्योंकि उन्होंने मुझे गोरों की गाडी में बैठे हुए देखा। कुली भी बार-बार आकर झाँक जाते थे। गाडी

के चलने के कुछ ही मिनट पहले वे तीनो गोरे सिपाही आगए । एक तो एक सीट पर बैठ गया और दो दूसरी सीट पर । बीच की सीट उन्होने मेरे लिए ही रहने दी, यद्यपि आधी जगह पर एक बिस्तर रक्खा हुआ था । बाते होने लगी । अनुभव ने मुझे बतलाया है कि फौज के सिपाही अल्हड बच्चो की तरह होते है, केवल उन्हे वश मे करने की विधि जाननी चाहिए । अंग्रेजी भाषा मे जिन शब्दो को slang अर्थात् अश्लील कहते है, फौजी सिपाही परस्पर के वार्तालाप मे उनका बहुधा व्यवहार करते है । कारण इसका यह होता है कि अधिकाश रंगरूट समाज के उस समुदाय से से भर्त्ती किए जाते है जिसे हम नीच समझते है, और जो अच्छे खानदान के लडके जाते भी है वे भी उसी समाज मे रहने के कारण अपशब्दो का व्यवहार करने लगते है । फौजियो मे खूब दिल्लगी चल रही थी और उनका अट्टहास मुझे प्रसन्न करता था । एक ने जरा गम्भीर लहजे मे अपने साथियो से कहा--"हिन्दुस्तान मे बहुत जल्द बडी मारकाट होने वाली है ।"

शायद यह वाक्य उसके मुह से बिना सोचे-समझे ही निकल गया, क्योकि उसके दो साथियो ने इस विषय को बदल कर और ही बाते शुरू कर दी । यह पैसेजर ट्रेन थी, इस कारण सभी स्टेशनो का परिचय देती जा रही थी । जब वे बाते करते-करते थक गए, तो उनमे से एक ने ऊपर की सीट पर अपना बिस्तरा जमाया और उसके दोनो साथी नीचे की सीटो पर लम्बे होगये । रह गया मै, सो मेरे लिए सोने को काफी जगह नही थी । थोडी देर के बाद मेरे दाहिने हाथ की सीट पर लेटा हुआ नवयुवक उठा और बडे मीठे शब्दो मे मुझ से कहने लगा--

"इस मेरे बिस्तरे से आपको कष्ट होता है ; लीजिये , मै इसे उठा लेता हूँ । आप भी लेट रहे ।"

मैने उसे बहुत धन्यवाद दिया और अपने पैर पसार लिये । देखते देखते वह सो गया । अब मुझे बहुत अच्छा मौका उसे निरीक्षण करने का मिला । वह सुन्दर नवयुवक था--कोई बाईस वर्ष का होगा, पर था इकहरे बदन का । साफ, दाढी मूछ चट । उसका चेहरा मुझे बहुत प्यारा लगा और

मै कुछ विचारो मे निमग्न होगया। मै सोचने लगा--"कैसे अच्छे स्वभाव का यह लडका है! इसने फौरन मेरे कष्ट को अनुभव कर लिया। ब्रिटिश जाति का यह शिष्टाचार इगलैड मे तो बहुत देखने को आता है, लेकिन भारतवर्ष मे प्राय ये लोग अपने उन सौजन्य के गुणो को भूल जाते है, तो भी इस लडके की तरह मिष्ट स्वभाव रखने वाले अग्रेज मुझे इस देश मे भी बहुत मिले है। कल को यही नवयुवक जब कही ड्यूटी पर चला जाएगा, तो अपने अफसर के हुक्म से हमारी अबोध जनता पर फौरन गोली चला देगा। उस समय इसमे कितना परिवर्तन हो जाता है! यही अल्हड नौजवान हिंसक जन्तुओ की तरह आदमियो का खून कर देता है। समाज की यह क्या व्यवस्था है जो इस प्रकार मनुष्यो को हिंसक बना देती है?"

मै इस प्रकार के विचारो मे डूबा हुआ ही था कि वह जाग उठा और हम दोनो में बाते होने लगी। उसका जन्म लदन मे हुआ था और जब मैने उसे अपनी लन्दन-यात्रा की बाते बताई तो उसका हृदय पुलकित हो उठा। उसे अपनी प्यारी जन्मभूमि याद आगई और अब हम दोनो मे कुछ घनिष्ठता बढी। वह बम्बू की तरफ जा रहा था और एक महीने की छुट्टी पर डलहौजी की सैर करने आया था। हम लोग बाते कर ही रहे थे कि स्टेशन आ गया। स्टेशन पर एक आदमी आडू बेच रहा था, छोटे बच्चो की तरह ये तीनो सिपाही आडू वाले को बुलाने लगे और उससे आध-आध सेर आडू खरीद लिये। उन कच्चे आडुओ को पाकर वे अत्यन्त खुश होगये और अपना-अपना चाकू निकाल कर लगे खाने। वह सुन्दर नवयुवक कहने लगा --"इतने आडू लन्दन मे आधे शिलिग मे भी न मिलेगे। यहाँ इण्डिया मे तो बडी मौज है।"

मै गौर से उन्हे देख रहा था और सोचता था कि ये लोग हिन्दुस्तान मे किस लिए आए है। सात हजार मील के फासले से ये लोग यहाँ आकर इस देश पर फौजी शासन करते है। क्यो? इतने मे दो और मुसाफिर उसी डिब्बे मे चढे। वे बैठ गए। गाडी चलने लगी। मै अपने सकल्प-

विकल्पो मे ही डूबा हुआ था । जो मुसाफिर मेरे पास बैठा था उसने मुझ से पूछा--

"आपका शरीर बडा सुन्दर और सुडौल है। यह आपने कैसे बनाया ?"

मेरा ध्यान भग हुआ और मैने प्रश्नकर्त्ता की ओर देखा। मैने साधारण-सा उत्तर देकर इस विषय को खत्म करना चाहा, पर वे दोनो मुसाफिर मानो किसी उद्देश्यवश मुझसे बाते करने के अत्यन्त इच्छुक थे। उसके दूसरे साथी ने मुझे सम्बोधित कर कहा--

"क्या आपने कभी मजहब के विषय मे भी कुछ सोचा है ?"

मैने उत्तर दिया--"हाँ, खूब सोचा है।"

वह बडे गम्भीर भाव से बोला--"तो आप हमारे इस्लाम को कैसा समझते है ?"

इस प्रश्न ने मेरी चकौटी काट ली और मै चौक पडा। मैने जान लिया कि मेरे सामने दो दीवाने कादियानी बैठे हुए है, जिनके सिर पर यह खब्त सवार है कि मिर्जा गुलाम अहमद कादियानी इस जमाने का आखिरी पैगम्बर है और यह दीवाने मुझे मुसलमान बनाने की फिक्र मे है। मैने एक ठण्डी साँस भरी और चित्त मे कहा--"इन दोनो मे तो यह तीन गोरे फौजी लाख दर्जे अच्छे है। इन गोरो के सिर पर मजहब का भूत सवार नही, इस कारण ये इन्सानी नाते से मेरे साथी हो सकते है, पर यह मजहबी दीवाने, दूसरे मजहबो की बुराइयाँ ढूढने, दूसरे महापुरुषो के दोष तलाश करने और अपने मजहब को सबसे बडा, अपने पैगम्बर को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने मे अपनी सारी ताकत लगा रहे है। यदि मैने इनके साथ थोडी देर भी बात की तो झगडा हो जायगा और यात्रा का मजा भी किरकिरा होगा। यही तो सबब है कि सात हजार मील के फासले से आकर ये अगरेज इस देश पर शासन करते है। हमारे आदमी अभी तक साम्प्रदायिक गोरखधन्धो मे बुरी तरह उलझे हुए है। वे बैल की तरह खूटे से बँधे हुए है और उसी के गिर्द घूम-घूम कर सार। खुदाई ज्ञान पाने की इच्छा रखते है। ये इन्सान भी नही रहे, बल्कि मजहब के नाम पर हिसक

जन्तुओ की तरह एक दूसरे का गला काट देते है। इनसे तो ये फौजी गोरे लाख दर्जे अच्छे है।"

जब उन कादियानियो ने मुझ से बार-बार वही सवाल किया तो मैंने थोड़े मे उनकी तसल्ली कर दी। वे अवाक् से रह गए। मैंने उनसे कहा—"मै कोई इल्हामी किताब नही मानता और न किसी महापुरुष को पैगम्बर समझता हूँ। बडे आदमी अपने काल के निर्माता होते है, तीनो युगो के नही। मै अनन्त ज्ञान की खोज मे इस विशाल सडक पर जा रहा हूँ और जहाँ भी जो अच्छी बात मिलती है, ले लेता हूँ। मेरा काम छिद्रान्वेषण नही, बल्कि ज्ञान-सचय करना है। सभी सम्प्रदायो मे केवल मजहबी दुकानदारी है। जब तक मानव-समाज मजहब के मायाजाल से नही निकलेगा, तब तक उसे खुदा का रास्ता नही मिल सकता।"

अमृतसर का स्टेशन आगया। उन दो मुसाफिरो ने मुझसे बडे प्रेम से विदा ली और बोले—"आपके ख्याल सुनकर हम लोग बडे मशकूर हुए। ऐसे ख्यालात के लोग मुल्क मे बहुत कम है।"

मै कुछ नही बोला। मेरी गाडी चार घण्टे बाद जाती थी, इस कारण मै प्लेटफार्म पर पडी हुई बेच पर आकर बैठ गया। जब सब सामान ठीक-ठीक रख लिया गया और मैंने कुछ खा भी लिया तो मुझे व्यायाम करने की सूझी। प्लेटफार्म पर ही मै लगा व्यायाम करने। वहाँ एक तमाशा-सा लग गया। लोग बडे हैरान थे। पन्द्रह-बीस मिनट तक मैंने व्यायाम किया, तत्पश्चात् मस्त होकर बेच पर बैठ गया।

घडी ने आठ बजा दिए। अभी मेरी गाडी के चलने मे सवा दो घण्टे की देर थी। जब हरिद्वार-पेसजर निकल गया और कलकत्ता-मेल ने भी पूर्व की राह ली, तो मेरी बेच पर दो और मुसाफिर आकर बैठ गये। उस समय मेरा विद्यार्थी मुझे अग्रेजी 'ट्रिब्यून' सुना रहा था। मै सुन तो रहा था ट्रिब्यून, लेकिन मेरे कान लग थे उन मुसाफिरो की बातो मे। वे बाते पजाब का भविष्य बतला रही थी, इसलिए मै उनमे अनुरक्त होगया। लीजिये, सुनिये उनकी बाते। उनमे से एक था जवान मजदूर और दूसरा

था अच्छा पढ़ा-लिखा अधेड उम्र का आदमी। बातचीत अधेड ने शुरू की और इस प्रकार रहस्य खुले--

"अच्छा, तो आप कादियाँ से आते है ?"

"जी हाँ, मै वहाँ पर ज्यारत के लिए गया था।"

"आप कब से इस मत मे आये है ?"

"मुझे डेढ वर्ष मिर्जा जी का भक्त बने हुआ, लेकिन मैंने इसके लिए बडी तकलीफे भोगी है।"

"तकलीफे ? ये क्यो ?"

"जनाब, अव्वल तो सारी मुन्नी जमायत मिर्जइयो की दुश्मन बनी हुई है। वे इन्हे नेस्तनाबूद कर देना चाहते है, लेकिन सच्चाई आखिर सच्चाई है। मै एक वहाबी के यहाँ काम सीखता था। जब मेरे उस्ताद को यह मालूम हुआ कि मै कादियानी होगया हूँ, तो वह मुझ से खफा हो गया और आखिर झूठी चोरी लगाकर मुझे निकाल बाहर किया।"

"यह तो मै अच्छी तरह से जानता हूँ कि पजाब मे मिर्जइयो के दुश्मन दिनबदिन बढ रहे है और यहाँ तक नौबत आगई है कि एक तरफ मिर्जई फिरका है और दूसरी तरफ बाकी सारा इस्लाम है।"

"लेकिन खुदा मिर्जइयो के साथ है और जिधर खुदा है उधर ही हक है।"

प्रश्नकर्त्ता कुछ देर के लिए चुप हो गया; फिर कुछ सोचकर कहने लगा--"क्या आपने मिर्जइयो की सब किताबे देखी है ?"

"जी नही, मै ऐसा पढा-लिखा नही।"

"मैंने उनकी सभी किताबे छान डाली है। मै अभी डेढ़ वर्ष वहाँ रह कर आया हूँ। उनकी लायब्रेरी की पुरानी और नई सभी किताबो का मैंने मुतालह (अध्ययन) किया है।"

इतने मे उस जवान मजदूर की घटी की टन्‌न्‌न् हुई और वह प्रश्न-कर्त्ता से विदा माँगकर जल्दी-जल्दी गाडी की तरफ चला। अब रह गया मै और वह अधेड उम्र का मुसलमान सज्जन। मेरी उत्सुकता बहुत

थी और मैं उस विद्वान् व्यक्ति से कई बातें पूछना चाहता था। मैंने उस सज्जन से प्रश्न किया--

"अच्छा जनाब, तो आपने कादियाँ में जाकर क्या सीखा और देखा ?"

वह मनुष्य गौर से मुझे देखने लगा और फिर गम्भीर होकर बोला--

"आप तो फकीर हैं। आपसे सच्ची-सच्ची बातें कह डालनी चाहिएं। यह जो मजदूर बैठा था, बेचारा बड़ा सीधा और सच्चा आदमी है। ऐसे ही जाहिलों को अपने जाल में फंसाकर मिर्जाई लोग उन्हें ठग रहे हैं। मैंने अपनी आँखों से कादियाँ में नए पैगम्बर साहब के घर की औरतों को ऊंची एड़ी के बूट और क्लिप लगाए हुए देखा है। वे मोटर में बैठ कर घूमने जाती हैं। इस तरह गरीब मुसलमानों का पैसा हथिया कर मोटर पर सैर की जाती है। क्या हमारे पैगम्बर साहब मोटरों पर चढ़ा करते थे ? क्या उनकी बेगमें फैशनेबल बूट पहना करती थीं ? यह तो केवल दूकानदारी है। गरीब आदमी ही खुदा का प्यारा हो सकता है और वही पैगम्बर बन सकता है। अगर खुदा का पैगम्बर ही ऐसा अमीर हुआ तो बेचारे गरीबों की क्या हालत होगी, क्योंकि उसके पास तो पैसे वाले ही पहुंच सकेंगे, वही मोटी रकमें दे सकते हैं। सरकार की तरह यह मिर्जाई लोग अपने चेलों से टैक्स वसूल करते हैं और जो नहीं देते उन्हें निकाल बाहर करते हैं। कादियाँ में इनकी बड़ी भारी जमींदारी है और नए मकान बनते जा रहे हैं। कादियाँ के पैगम्बर साहब हमेशा बीमार रहते हैं और जहाँ जाते हैं, डाक्टर उनके साथ रहता है। लेकिन दुनिया ऐसी अन्धी है कि वह आखें बन्द कर अपनी हजामत कराती जाती है।

मैं अत्यन्त चिन्ता में डूब गया। इसी प्रकार आगाखाँ भी लोगों से टैक्स वसूल करते हैं और पेरिस में जाकर मौज उड़ाते हैं। यह दुनिया सचमुच बेवकूफों से भरी हुई है। मैंने फिर सवाल किया--"क्या सचमुच मुसलमानों के इन फिरकों में ऐसी सख्त दुश्मनी है ?"

उसने जवाब दिया—"कुछ न पूछिये। इस्लाम की अन्दर की कमजो-रियाँ दुनिया नहीं जानती। हमारे फिरकों में गहरी फूट है। जब यह फिरकेदाराना न्यावत (पृथक् प्रतिनिधित्व) का गुल खिलेगा और जुदा-गाना चुनाव (पृथक् निर्वाचन) होंगे, तो उस समय आप देखेंगे कि मुसल-मानों के अन्दर कैसी पोल भरी है। रोज इनमें लडाई दंगे हुआ करेंगे और ऐसी दुश्मनी पड जाएगी जो हमारी औलाद (सन्तान) तक चली जायगी।"

मैं खडा होगया। उसकी बातों ने मेरे सामने भविष्य का खौफनाक दृश्य खडा कर दिया। पृथक् निर्वाचन मुसलमानों की कैसी दुर्गति करेगा, इसका पूरा फोटो मेरे सामने आगया। मैंने एक ठण्डी साँस ली और मन में कहा—"भावी के खेल न्यारे हैं।"



सैंतीसवाँ पुष्प

कला सम्बन्धी कुछ स्वतन्त्र विचार

यह सन् १९२५ की बात है । हिन्दी के एक प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र के सम्पादक के घर मे मै ठहरा हुआ था। क्रान्तिकारियो की बाते होने लगी। बाते करते हुए वे मुस्करा कर कहने लगे--

"मै क्रान्तिकारियों मे था । बम फेकने और गोली-बारूद इकट्ठा करने मे मेरा भी हाथ था, परन्तु मैने पुलिस को ऐसा चकमा दिया कि वह मुझे बिलकुल निरपराध समझती रही । फलस्वरूप मै बच गया।"

मेरा कौतूहल जाग उठा और मैने बडे उत्सुकतापूर्ण शब्दो मे पूछा-- "क्यो सी० आई० डी० के इन्स्पेक्टर ने आपको तग नही किया ?"

सम्पादक महोदय हँसकर बोले--"मैने ऐसा मुह बनाया और भोलेपन का ऐसा स्वाँग रचा कि टिकटिकी महाशय ने मेरा सोलहो आने विश्वास कर लिया। पहले तो कई घटे तक वे मुझे धमकाते-डराते रहे, बाद मे खुशामद और चापलूसी भी की, लेकिन मै झूठ बोलने की कला मे पुराना सिद्धहस्त था, भला उनके हथकण्डो मे कैसे आ सकता था !"

'कला' का शब्द सुनकर मै चौक पडा। कला ! क्या झूठ बोलने मे मे भी कोई कला है ? यह प्रश्न मेरे दिमाग मे रह-रह कर उठने लगा। मैने अपने मित्र सम्पादक जी से हैरानी मे पूछा-- "तो क्या झूठ बोलने की भी कोई कला होती है ?"

सम्पादक जी खिलखिला उठे और कहने लगे--"सच तो बडे बुद्धू भी बोल सकते है, उसमे कौन सी अक्लमन्दी है । झूठ बोलने मे ही बडी कला है--ऐसा झूठ जो दूसरे को बेवकूफ बना दे और उस पर सत्य का रग चढा दे । बडा बुद्धिमान्, बडा चालाक तथा अतिकुशल व्यक्ति ही

अपनी प्रतिभा से झूठ को सच करके दिखला सकता है। वकील लोग यही करते है। यह उनकी कला है।"

कला का यह स्वरूप अभी तक मेरे मस्तिष्क मे नही आया था। मै तो यह समझता था कि शिल्प-कला, चित्र-कला, नृत्य-कला, स्थापत्य-कला आदि कलाओ का ही 'कला' के अर्थ मे व्यवहार किया जाता है, पर अब मुझे पता लगा कि झूठ बोलना भी एक बडी भारी कला है। ऐसे ही जब कोई लडका किसी जेब कतरने वाले की कहानी पढता है और उसकी सफाई के करिश्मे देखता है, तब वह उसे भी एक कला समझकर स्वय उसका अनुभव जान लेने के लिए घर से निकल जाता है। ऐसे कई मुकदमे अदालतो मे आये है जहाँ छोटी उम्र के लडको ने अपना अपराध स्वीकार करते हुए इस बात को न्यायालय के सामने माना है कि जेब कतरने वालो की फुर्ती और उनके हाथो की सफाई को ऊँचे दर्जे की कला समझकर ही उन्होने ऐसा काम करने का सकल्प किया था।

तो कला क्या वस्तु है? मैने जब बम्बई के एक प्रसिद्ध पुस्तक-विक्रेता से कलासम्बन्धी पुस्तको की लिस्ट माँगी, तब उसने मुझे एक पुस्तिका दे दी। उसपर मोटे अक्षरो मे लिखा था—'Art' अर्थात् कला। जब मैने उसमे पुस्तकों के नाम देखे, तब वे सब शिल्प, फोटोग्राफी, चित्रकारी तथा भ्रमण सम्बन्धी वृत्तान्तो से सम्बन्ध रखते थे। एक भी पुस्तक मुझे ऐसी न मिली जिसका साहित्य अथवा सगीत के साथ कोई सम्बन्ध होता। मुझे इससे पता लगा कि पुराने सस्कृत-साहित्याचार्यो के मतानुसार साहित्य, सगीत और कला, ये तीन अलग चीजे है और आधुनिक ग्रन्थकारो ने भी इन्हे वैसा ही माना है।

तो फिर साहित्य और कला का यह नया झगडा हिन्दी वालो ने कैसा उठाया है? इनके जो लेख कला पर निकलते है वे प्राय ऐसे कि जिनके सिर न पैर, भ्रम से भरे हुए, कोई बात स्पष्ट व्यक्त नही करते, क्योकि वे अन्धेरे मे टटोल रहे है। उन्होने अनन्त ज्ञान, विश्व का व्यक्तित्व, सत्य, सुन्दर और शिव आदि ऐसे शब्द रटे हुए है जिन्हे कहकर वे अपने

पाठको को भूलभुलैयाँ मे डाल अपनी विद्वत्ता का परिचय देते है। यूनानी कलाविदो ने जिस वस्तु को कला माना है वह वही है जिसे आज योरुप की विद्वन्मण्डली मानती है। पर मै यहाँ केवल इस बात पर विचार कर रहा हूँ कि साहित्य मे जो वस्तु कला मानी जाती है और जिसकी आज दुहाई दी जाती है वह है क्या बला। आज कहानी-कला पर ही लेख लिखे जा रहे है। सक्षेप मे, जो भी कोई उठता है वह कला की आड मे अपना रोब जमाना चाहता है।

देखिए। हमे शब्दो के जगल मे मत ले जाइए और न ऐसे क्षेत्र मे पाव रखिए जिसके विषय मे आपको कुछ मालूम नही। साहित्य-सम्बन्धी बातो पर विचार करते समय भी हमारे मस्तिष्क मे वैज्ञानिक ढग ही रहना चाहिए ––वह ढग जो वस्तु की खाल खीच लेता है और उसके अंगो को काटकर स्पष्ट दिखला देता है। गोल-मोल बाते करने से हम कभी अपनी प्रतिभा की छाप नही डाल सकते। कुछ समय के लिए लोग भले ही बहक जायँ, परन्तु अन्त मे एक समय ऐसा आता है जब मायाजाल की पोल खुल जाती है।

असल मे कला का प्रारम्भिक स्वरूप है––किसी काम को सफाई से कर लेना। उर्दू मे इसे हुनर कहते है। यह कला शब्द का व्यापक व्यवहार है। आप किसी कहानी को ऐसी सफाई से कहते है कि सुनने वाला उसे बिलकुल सत्य समझकर मन्त्रमुग्ध होकर आपकी बात मान लेता है और उसके दिल मे यह जम जाता है कि वह कहानी सच्ची है। डेनियल डीफो के राबिन्सन क्रूसो के पढनेवाले लाखो पाठक उसे अक्षरश सत्य समझते है। वह लिखी ही ऐसे ढग से गई है कि पढने वाला सत्य माने बिना नही रह सकता। यह एक कला है। इस कला का सम्बन्ध केवल कहानी कहने के ढंग के साथ है, अर्थात् उसकी उस खूबी को प्रकट करती है जिसके बल पर एक कल्पनात्मक घटना बिलकुल सच्ची जान पडती है। कहानी मे कोई शिक्षा है या नही, उसमे कोई उद्देश्य छिपा हुआ है या वह बिना उद्देश्य के ही है––ये बातें उस कला के साथ कोई सम्बन्ध नही रखती। कला का

क्षेत्र इस अश मे इतना ही है कि कहानी इस ढग मे कही जाय कि वह वस्तुस्थिति का जीवित चित्र खीच दे और शिक्षित या अशिक्षित दोनो प्रकार के पाठको के हृदय पर अपना प्रभाव डाले। कई कहानियाँ ऐसी होती है कि बालक उन्हे मन्त्र-मुग्ध होकर सुनते है, लेकिन कलाविद् पुरुष को वे बडी भौडी और कलाशून्य जान पडती है। तो कला का शब्द भी सापेक्ष है और इसका व्यवहार उसी के अनुसार किया जाना चाहिए। शेक्सपियर के जिन नाटको ने अग्रेजी-साहित्य का मस्तक ऊँचा कर दिया, कलाविद् टाल्सटाय की दृष्टि मे वे जँचे ही नही। क्योकि ऋषि टाल्सटाय जिस चीज को कला समझते थे उसको उन्होने उन रचनाओ मे नही पाया। ऐसा क्यो हुआ ? इसका उत्तर यह है कि टाल्सटाय ने कला के साथ किसी दूसरी और वस्तु का समावेश कर लिया। जैसे एक मनुष्य दिल बहलाने के लिए ताश के पत्तो का हुनर--अपने हाथ की सफाई--इस ढग से दिखलाता है कि देखनेवाले दातो तले उँगली दबाने लगते है, वे आश्चर्य मे डूब जाते है, उनका मन बहलता है। थिएटरो मे कई प्रकार के ऐसे हुनर--ऐसे तमाशे--दिखलाये जाते है जिनकी कला को देखकर दर्शक अत्यन्त प्रसन्न होते है और समझते है कि उनके टिकट का दाम कीमत से अधिक वसूल होगया। परन्तु महात्मा गाँधी और स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे आदर्शवादियो को मन बहलाने वाले उन नाटको, खेल-तमाशो और ताश-शतरज की चालो मे कोई कला नही दिखलाई देती। वे उनमे मानवसमाज का उत्थान करनेवाली कोई शिक्षा नही पाते। इसीलिए वे उनका विरोध करते है और ऐसे खेलो मे मन बहलाना समय का व्यर्थ खोना मानते है। आदर्शवादियो की जीवनचर्या मे कला के मन बहलानेवाले ऐसे स्वरूप के लिए कोई स्थान नही। यहाँ तक तो कला का सम्बन्ध किसी काम को सफाई अथवा परिष्कृत रूप मे करने के साथ है, इसीलिए मानव-समाज के संगठन के समय से ही काम को अत्यन्त कौशल से करनेवाले लोग कुशल कारीगर कहे जाने लगे। वे अपने-अपने विभाग मे साधारण काम करनेवाले की अपेक्षा अपने हाथ

के हुनर को बड़ी चतुराई से दिखलाते थे--वे उसी कला के विशेषज्ञ माने जाते थे। जैसे तलवार चलाने की कला, कुशल अश्वारोहण, खनिज पदार्थों पर भिन्न-भिन्न प्रकार की मीनाकारी, बर्त्तन बनाने की कारीगरी, रुई अथवा ऊनी कपडों पर सुई का विस्मयजनक काम, इत्यादि, ये सब हुनर 'कला' के अन्तर्गत है। इनमे सच्चरित्रता, शिक्षा, भावुकता अथवा ऊँचे दर्जे के उपदेश के लिए कोई गुजाइश नही। यह केवल हाथ की सफाई, कारीगरी और व्यावहारिक कुशलता से सम्बन्ध रखने वाले हुनर है। कला का यही प्रारम्भिक स्वरूप है। प्राकृतिक वस्तुओ को देखकर तथा जीवन-सग्राम मे विजय की लालसा के हेतु जिस चतुराई और बुद्धिमत्ता का मनुष्य ने प्रयोग किया है, उसी गुण ने अपने विकास मे कला का रूप धारण कर लिया है।

परन्तु जब मानव-समाज मे ज्ञान की अधिक उन्नति हुई, जब मनुष्य ने अपने मस्तिष्क को साहित्य और सगीत से परिष्कृत किया, तब वह भी शिल्पियो की तरह कला को अपने क्षेत्र मे स्थान देने लगा और उसने अपनी कला को परिष्कृत कला कहकर पुकारा। अब तक कला के व्यवहार मे भावुकता, धर्म-दीक्षा और आदर्शवाद के लिए कोई स्थान न था। उसमे सत्य और शिव का कोई पचडा न था। वह केवल सौन्दर्य और व्यावहारिक चतुराई की वस्तु थी। पर जब विद्वान् वर्ग ने कला को अपनाया, तब उन्होने अपने भाई कलाकार शिल्पियो की अपेक्षा उसे दूसरा ही रूप देने का प्रयत्न किया। इसीलिए आज इस वैज्ञानिक युग मे कला के सम्बन्ध मे बडी गडबड मची हुई है। जो काम शिल्पियो और व्यवहार-कुशल पुरुषो के लिए सरल था, विद्वद्वर्ग के लिए वह झगडे की चीज बन गया है। ऐसा क्यो हुआ?

सत्य बात यह है कि आज आदर्शवादी पूर्व से व्यवहार-कुशल पश्चिम का मिलन प्रारम्भ हुआ है। पूर्वी ढग का मस्तिष्क रखने वाले पाश्चात्य विद्वान् भी कला के स्वाभाविक विकास मे आदर्शवाद का रग चढाना चाहते है इसीलिए कला के क्षेत्र मे इस प्रकार का मतभेद देखने

मे आता है और एक नई समस्या कला के क्षेत्र मे खडी होगई है। पुराना पेशेवर कलाकार कभी उपदेशक नही था, न उसने कभी ऊँचे दर्जे के आदर्श और विश्वबन्धुता के सिद्धान्तों का ही प्रचार किया। कला के क्षेत्र मे साहित्य और सगीत के प्रवेश से मानो इसका उत्तरदायित्व बढ गया है। स्वाभाविक गति पर चलनेवाला कलाकार कहता है कि वह केवल कला के लिए ही जीता है, नैतिक उत्थान या पतन के साथ उस का कोई सम्बन्ध नही। इसी दल मे फ्रॉस के प्रसिद्ध साहित्य-सेवी कलाकार सम्मिलित है। वे कला को उसी मार्ग से ले जाना चाहते है जिससे वह हजारो वर्षो से चली आ रही है। जैसा प्रकृति का स्वरूप है, जैसा बुरा-भला सामाजिक जीवन है और जैसी समस्यायें मानव-समाज के सामने है, ठीक उनका वैसा ही रूप वे साहित्य द्वारा संसार के सामने रखना चाहते है। उनकी जिम्मेदारी केवल यह है कि चित्र हू-बहू हो, उसमे कोई त्रुटि न आने पावे। इसके विपरीत आदर्शवादी यह कहता है कि हमारा कर्त्तव्य समाज को उन्नत करना है, उसकी बुराइयो को दूर करना है और उसकी समस्याओ को हल करना है। साहित्य आदर्श की पूर्ति का एक साधन है। वह कला ही क्या जो लोगो को सुधारे ही नही! लोगो का मन बहलाइए, लेकिन उस मन-बहलाव मे उपदेश की सुरभि भरिए। बस यही समस्या है।

अब कला के साथ सुन्दर उपदेश को जोडना, यह एक नई समस्या कलाकार के सामने उपस्थित होगई है। कलाकार यह तो मान सकता है कि तमाशा अथवा कहानी या कविता ऐसी होनी चाहिएं जो व्यक्ति को समाज के लिए निकम्मा न बना दे, उसका विकास न रोक दे, परन्तु यह बात वह स्वीकार नही करता कि अवश्य ही कलाकार को धर्माचार्य भी होना चाहिये। उसका यह मत है कि धर्माचार्य का मस्तिष्क पक्षपातपूर्ण होता है, वह एकागी होता है, उसकी आगे बढने की शक्ति मारी जाती है, क्योंकि सच्चरित्रता और धर्म विकास की चीजें नही है जो देश काल के अनुसार आगे बढ़ सके, इसलिए इसके साथ कला को बाँधना

सर्वथा अनुचि कला का स्वरूप यह होना चाहिये कि जो शाब्दिक अथवा रँगीला चित्र खीचा जाये वह बिलकुल ठीक और स्वाभाविक हो। उसमें मनोविज्ञान की कोई त्रुटि न हो और मानवीय स्वभाव तथा सामाजिक जीवन का पूरा फोटो हो। यदि कलाकार को पहले से फर्ज़ की हुई कसौटिया अथवा आदर्शो के साथ जोड दे, तो वह कभी भी नई चीज़—कोई रचनात्मक कला—जगत् के सामने पेश नही कर सकता। उसकी दशा वही होगी जो किसी साम्प्रदायिक विद्वान् की होती है, जो अपने दिल मे पहले से जमे हुए सिद्धान्तो के अनुसार शास्त्रों की व्याख्या करने लगता है। कलाकार को यथाशक्ति अपने इर्द-गिर्द के मज़हबी अथवा आदर्शवाद के सिद्धान्तों से बिल्कुल स्वतन्त्र रहना चाहिये। तभी वह ससार के ज्ञान की वृद्धि कर सकता है।

इतना कथन करने के बाद अब मै कला की भिन्न-भिन्न विकसित अवस्थाओं को ब्योरेवार पाठकों के सामने रखता हूँ। पहली अवस्था कला की व्यावहारिक है। मानवसमाज की प्रारम्भावस्था से ही कला का जन्म हुआ, जब समाज भिन्न-भिन्न वर्गों में विभक्त था। अपने अपने वर्ग के चिन्ह लोगों ने निश्चित किये और उन्हे अपने तीरों, नावों और घरों पर बनाया। किसी ने मृग का रूप अपनाया तो किसी ने गिद्ध का, एक ने सिंह की शक्ल अपने डोंगे पर खीची तो दूसरे वर्ग ने हाथी को अपना प्यारा निशान माना। इस प्रकार पत्थर-युग से लेकर खनिज पदार्थों के विकसित युग तक मनुष्य धीरे-धीरे कला में उन्नति करता गया। ज्यो-ज्यों उनके सौन्दर्य का ज्ञान बढा, त्यों-त्यों भिन्न-भिन्न पेशेवर कलाकार अपना समुदाय बनाते गये। यह कला ही उनका धन्धा होगया। स्त्रीसौन्दर्य का केन्द्र है और मनुष्य उसकी खूबसूरती को बढाने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के यत्न करता है। उसी उद्योग मे उसने प्राकृतिक पदार्थों को सुई द्वारा कपडे पर चित्रित किया और उससे अपनी दुलहिन की पूजा की।

इसी युग मे वीर लोग उत्पन्न हुए, जिन्होने युद्ध की नई कला का अविष्कार किया और कलाकार वीरों को जितना सुन्दर, जितना अधिकरण-कुशल

और जितना योग्य बना सकते थे उतना बनाया। रोटी के संग्राम मे भिन्न-भिन्न प्रकार के हुनरो की ईजाद हुई और इस प्रकार व्यावहारिक कला का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत हुआ।

इसके बाद आया देवी-देवताओ का युग। इसे हम काल्पनिक युग कहते है। इस युग मे कला मे श्रद्धा, अन्धविश्वास और मनमानी कल्पना ने स्थान पाया। प्रत्येक सम्प्रदाय मे इसके कलाकारो की कल्पनाओ के चित्र आज हमारे सामने है। निश्चय ही इस युग मे कला ने बडी उन्नति की है और बड़े-बडे प्रसिद्ध कलाकार इस युग के प्रतिनिधि है, जिन्होने कला द्वारा अमरत्व-पद प्राप्त कर लिया है। ईसाई मजहब के रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय के पुराने गिर्जे इस कला के ज्वलन्त उदाहरण है। माता मरियम और ईसा मसीह के सैकडों भिन्न-भिन्न चित्र उनके भक्त कलाकारों के प्रगाढ प्रेम का प्रदर्शन करते है। इसी युग के हजारों गद्य और पद्य के ग्रन्थ भी कलाकार लेखको की कीर्त्ति को उज्ज्वल करते है। इसी प्रकार हिन्दू और बौद्ध कलाकारों की बनाई हुई मूर्त्तियाँ इस युग के उदाहरण है। यह हृदयप्रधान युग है, मस्तिष्क को इसमें कोई स्थान नही। भगवान् बुद्ध कैसे थे? हजरत ईसा मसीह का चेहरा बचपन में कैसा था? इन प्रश्नो का ठीक उत्तर कोई नही दे सकता। परन्तु कलाकारों ने ऊँची से ऊँची उडान भरकर उनके चित्र खीचे है—शब्दो मे, रगों द्वारा और पत्थरों पर। प्रसिद्ध वैज्ञानिक टिडल के शब्दो मे—"यदि बैल और घोडे को ईश्वर मानकर उसकी तसवीर खीचेगे, तो वे अच्छे से अच्छा बैल और अच्छे से अच्छा घोडा बनाकर रख देगे।" भगवान् बुद्ध की मूर्त्तियों को देखिये। चीनियो ने उनका स्वरूप मगोलियनों जैसा बनाया है और मध्य एशिया के लोगो ने अपने जैसा। जैसी जिसकी सूझ हुई, वैसी ही उसने अपने इष्टदेव की शक्ल बनाई। जिस काली की मूर्त्ति को मै देखना भी पसन्द नही करता, जिस जगन्नाथ जी की मूर्त्ति मुझे इतनी ही बीभत्स मालूम होती है, जिस गणेश जी के सिर पर हाथी का सिर देखकर मै लज्जा अनुभव करता हूँ, चित्र बनानेवाले कलाकारो ने इन्हे इसी रूप मे

देखा था। मस्तिष्क से शून्य कला की यही अवस्था होती है। इसमे सत्य के लिए कोई स्थान नही, मनमानी कल्पना और अन्धविश्वास ही इसके शस्त्र है। मै कला के इस युग का अधिक प्रशसक नही हूँ।

अब आता है तीसरा युग, जिसे मै बोध-जन्य युग कहता हूँ। पौराणिक युग की यह प्रतिक्रिया है। इस युग के प्रवर्तक मार्टिन लूथर और स्वामी दयानन्द जैसे सुधारक है। इन लोगो ने रोमन कैथोलिक, बौद्ध और पौराणिक मस्तिष्क-शून्य कला का विरोध किया। इन्होने यह कहा कि कला मे भी ज्ञान को स्थान मिलना चाहिये, जो मानव-समाज को उन्नत करे और उसे अध-विश्वासो से निकाले। इसी का विकसित स्वरूप कला का आदर्शवाद है। इस युग मे आदर्शवादी लेखक हुए, जो सच्चरित्रता और शिक्षा के विकट पक्षपाती थे। काल्पनिक युग की कला मानो उनके लिए विष थी। इसी कारण वे उस कला के अत्यन्त विरोधी हुए। ऐसे ही सुधारको को हम विशुद्धतावादी (Puritans) कहते है, जिन्होने काल्पनिक युग मे फैली हुई कला की बराइयो का घोर विरोध किया। वे अपनी छाप कला पर छोड गये और कला मे आदर्शवाद ने प्रवेश किया। ऋषि टाल्सटाय और महात्मा गाधी इसी शैली के प्रवर्तक है, जो कला मे अत्यन्त ऊँचे दर्जे की सच्चरित्रता को लाना चाहते है और मानव-समाज का उत्थान ही जिनका लक्ष्य है।

चौथा युग है प्रकृतिवादियो का, जो जैसी चीज़ है वैसी ही चित्रित करना चाहते है। ये प्रकृति के उपासक है और बिलकुल उसकी नकल करना चाहते है। मै इस कला को "Imitative Art' कहता हूँ और दूसरे लेखक 'Realistic Art' कहते है। मेरे विचार मे इस कला के उपासक प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रेमी है। उन्हे अन्धविश्वास से कोई मतलब नही, वे झूठी कल्पना नही करते और न बेसिर-पैर की उड़ाने भरते है। उनका कोई मज़हब नही; न वे देवी-देवताओ के भक्त है; पीर-पैग़म्बर उनके पास खड़े नही होने पाते और न वे समाज के माने हुए सच्चरित्रता के नियमो के पाबन्द है। वे कलाकार है। उनमे निरी-

क्षण की अद्‌भुत शक्ति है। प्रकृति ने उन्हे एक अलग इन्द्रिय दी है, जिसके द्वारा वे प्राकृतिक और मानव-समाज के फूलो को सूघ लेते है। उनका लक्ष्य है वस्तु का नगा चित्र खीचना, जैसी जो वस्तु है उसे वैसा ही दिखलाना। वे पहाडों पर घूमते है, नदी-तट पर जाते है, बाग-बगीचो की सैर करते है और सौन्दर्य की खोज मे ससार की खाक छानते है; जहाँ भी जो सुन्दर वस्तु उन्हे मिलती है उसे वे अपनी कविता अथवा रगो मे भर लेते है। स्त्री-पुरुषो की नगी तसवीरे खीचने मे उनको लज्जा नही, और न समाज की अश्लील बातो पर उपन्यास लिखने मे उन्हे कुछ सकोच ही है। समाज के उत्थान या पतन से उनका कोई सम्बन्ध नहीं। वे कलाकार है और कला के लिए ही जीते है।

कला का पाँचवाँ युग है रचनात्मक काल। इस युग का कलाकार अपने व्यक्तित्व को समझता है। वह इजील के खुदा की तरह अपनी शक्ल का आदम बनाना चाहता ह। वह ऐसी चीज चित्रित करने की इच्छा रखता है जो उसकी हो और ससार मे भिन्न हो—जिस पर कोई दूसरा कलाकार अपना हक न जमा सके। जैसे स्त्री और पुरुष मिलकर ऐसी सन्तान की रचना करते है जो उनकी है और ससार से भिन्न है। उस सतान पर उनके व्यक्तित्व की छाप है और कोई भी दूसरा उस पर अपना हक नही जमा सकता। ठीक इसी प्रकार इस युग का कलाकार यही धुन रखता है कि मै कुछ रचना करूँ, जो मेरी हो—बस मेरी ही। यह तभी हो सकता है जब उसे आत्मानुभूति हो और उसके व्यक्तित्व का स्वतन्त्र विकास हो। जिस स्त्री या पुरुष ने अपने आपको दूसरे के व्यक्तित्व मे मिला दिया, उसका व्यक्तित्व मिट गया। वह कभी भी नई चीज संसार को नही दे सकता। चौथे युग का कलाकार बेशक कलाकार है, लेकिन वह नकलची है; वह अभी उम्मीदवार है, कला करना सीखता है। वह कलाकार तभी हो सकेगा जब वह अपने आपको इस विश्व से पृथक् कर फिर विश्व का अध्ययन करना सीखेगा। उस दिन उसमे उसकी आत्मा की जागृति होगी और तभी वह नई रचना कर सकेगा

इसलिए रचनात्मक कला का प्रतिनिधि योरुप और एशिया के कलाकारों के विरुद्ध अपनी आवाज उठाता है । एशिया की कला अपने पौराणिक युग मे है, जिसकी व्याख्या करते हुए कवीन्द्र रवीन्द्र जैसे कलाकार उसका बचाव करते हुए कहते है --"एशिया की कला का सम्बन्ध हृदय की अनुभूति के साथ है, निरीक्षण के साथ नही।" इसका अर्थ यह है कि कोई भी व्यक्ति किसी वस्तु को अटपट पागलो की तरह अनुभव करने लगे और वह कैसी ही मूर्त्ति खीचकर रख दे, तो वह भी एक प्रकार की कला ही मानी जायगी। ऐसा ही हुआ भी है । आज भी बहुत से ऐसे मस्तिष्कशून्य देवी-देवताओ के चित्र, फ़रिश्तो की मूर्त्तियाँ और स्त्रियो के रंगीन चित्र है जिनका अस्तित्व मस्तिष्क कभी स्वीकार नही कर सकता। कलाकार भी पुराने पण्डितो की तरह विचित्र हृदय की अनुभूति द्वारा कला करनेवाले लोगो की कृतियो की व्याख्या करते हुए आपस मे लड मरेगे और जनसाधारण को अविद्यान्धकार मे ढकेल देगे । रचनात्मक कला का माननेवाला यह कहता है कि हृदय और मस्तिष्क का बराबर विकास हुए बिना सच्ची कला का प्रादुर्भाव नही हो सकता। जब मनुष्य विज्ञान की सहायता से मस्तिष्क को अन्धविश्वासो से अलग रक्खेगा, जब वह रोमन कैथोलिक, पौराणिक और बौद्धकालीन शिशु-कला को बच्चो का खेल समझ लेगा, जब उसके हृदय से मजहबी पक्षपात बिल्कुल निकल जायँगे और जब वह हृदय और मस्तिष्क की एकता कर अपने व्यक्तित्व की स्वतन्त्रता की स्थापना कर लेगा, तभी इस विश्व के पदार्थ उसे अपना सन्देश सुना सकेगे ।

निस्सन्देह दो प्रकार के जगत् है--बाह्य और आभ्यन्तरिक; किन्तु बाह्य जगत् के बिना आभ्यन्तरिक जगत् की रचना नही की जा सकती। जो बाह्य जगत् को बुद्धिपूर्वक अध्ययन कर सकता है, उसी का आभ्यन्तरिक जगत् भी निर्दोष हो सकता है। यह बात गलत है कि मिट्टी मे लथ-पथ रहने वाला, गन्दी से गन्दी चीज़ खा लेनेवाला और आवारा घूमनेवाला अघोरी आभ्यन्तरिक जगत् को भली प्रकार देख सकता है। समाज मे फैले हुए इन झूठे

सिद्धान्तो का मै घोर विरोधी हूँ। इसी कारण एशिया की उन्नति रुक गई और ऐसे ही भ्रांति-पूर्ण सिद्धान्तों के मानने से आज भारतवर्ष के लोग अपनी बेहूदा मूर्तियों का पीछा न छोड़ सके। मस्तिष्क-शून्य हृदय की अनुभूति एक ऐसी भ्रमात्मक उक्ति है जिसकी लीला भारत के बडे-बडे ग्रेजुएट और दिग्गज पण्डित भी आज तक नही जान सके। हृदय की अनुभूति के साथ मस्तिष्क का विकास लाज़िमी है। दोनो साथ-साथ चलने चाहिएँ, तभी निर्दोष कला का स्वरूप ससार के सामने आ सकेगा और सौन्दर्य की महिमा हम समझ सकेगे।

यह बात ठीक नही है कि पश्चिम की कला मे हृदय की ज्योति की झलक नही दिखलाई देती। राजनैतिक क्षेत्र को छोडकर बाकी सब विभागो मे पाश्चात्य देशो के विद्वान् बडी सचाई और ईमानदारी से सत्य की खोज करते है। जब उन्हे अपनी भूल स्पष्ट मालूम हो जाती है तब वे उसे बडी उदारता से स्वीकार कर आगे बढने के लिए कमर कसते है। उनकी उदारता का यह ज्वलन्त उदाहरण है कि उनके बडे-बडे लब्धप्रतिष्ठ धर्माचार्यों ने महात्मा गाँधीजी को एक दूसरा ईसा मसीह स्वीकार किया है। एशिया के लोगो मे ऐसी विशालहृदयता कहाँ! क्या हिन्दू लोग कभी किसी अच्छे से अच्छे योरुपीय को भगवान् कृष्णचन्द्र या मर्यादा-पुरुषोत्तम रामचन्द्र के समान मान लेगे? क्या मुसलमान किसी श्रेष्ठतम चरित्रवाले पाश्चात्य महापुरुष को हज़रत मुहम्मद जैसा मान सकते है? क्या बौद्ध लोग किसी भी पश्चिमी सच्चरित्र विद्वान् को भगवान् बुद्ध की तरह मानकर उसका आदर करने को तैयार है? कदापि नही। एशिया के लोगो मे इस सम्बन्ध मे विनय और उदारता की अत्यन्त कमी है, इसी-लिए ससार की दौड मे वे पीछे रह गये है। कला मे भी उनकी यही अवस्था है। अपनी भोडी कला को दोषयुक्त न मानकर वे 'हृदय की अनुभूति' की आड़ में उनकी उलटी-सीधी व्याख्या करने बैठ जाते है और अपनी कलाशून्य मूर्तियो तथा चित्रो मे कोई न कोई विशेषता निकालने की भरपूर कोशिश करते है। पश्चिम के चित्रकार अपने मनोविज्ञान की

सहायता से अपनी कला को बहुत आगे बढा रहे है और पूर्व अपनी पुरानी, दकियानूसी और भोडी कला की आध्यात्मिक व्याख्या करने मे लगा हुआ है । वह यह समझता है कि अपनी भूल मान लेने से शायद उसका गौरव कम हो जायगा। वह अपने अध्यात्मवाद के घमण्ड मे अपनी कला की स्पष्ट भूलो को भी देखना नही चाहता और पुराने पण्डितो की तरह वेद के मत्रो से ही सभी अच्छी-अच्छी बाते निकालकर अपनी कीर्ति स्थापित करना चाहता है । इसी बीमारी के कारण आज हम कला के यथार्थ स्वरूप को भी नही पहचान रहे है । विज्ञान ही ससार का भविष्य बनायगा ओर उसी का सहारा लेने से विश्व की कला के रहस्यो का उद्‌घाटन होगा। हमे अपनी आत्मा मे स्वतन्त्रता की दामिनी की स्थापना करनी चाहिए और अपने नेत्रो मे विज्ञान का प्रकाश लाना चाहिये । जब तक हम इन दो साधनो को नही अपनायेगे, हमे कदापि बाह्य और आभ्यन्तरिक जगत् के गूढ रहस्यो का पता नही लगेगा।



अठतीसवाँ पुष्प

प्राणिमात्र से मनुष्य की सगोत्रता

"A Sacred Kinship, I would not forego,
Binds me to all that breathes." —*Boyesen*

"समः सर्वेषु भूतेषु यः पश्यति स पण्डितः।"

एक दिन दोपहर को नदी के किनारे घास पर बैठे हुए मैंने एक गाय को अपने बछडे सहित चरते हुए देखा। जब कभी वह बछडा अपनी माँ से कुछ दूर कूदता हुआ चला जाता, तब किस प्रेम से उसकी माँ उसकी ओर देखती और अपनी ममता भरी आवाज से उसे बुलाती! उस समय यह प्रश्न मेरे हृदय मे उत्पन्न हुआ कि क्या मनुष्य कभी इस अवस्था मे न था? "मनुष्य भी एक पशु है", यह कथन तो मैंने बहुत-बार विद्वानो के मुह से सुना था, परन्तु मनुष्य पशु किस प्रकार है, इसका विचार मैंने कभी नही किया था। मनुष्य न देवता है, न पत्थर है, न वनस्पति है, बल्कि लाखो वर्ष की विकास-क्रियाओ (Evolutionary Processes) का परिणाम है। मनुष्य उन सब अवस्थाओ मे से होकर गुजरा है जिनमे हम अन्य जीवो को देखते है।

मनुष्य का शरीर कणिकाओ (Cells) का बना हुआ है। अन्य पशुओ के भी शरीर इसी प्रकार बने है। पशुओ के शरीर की कणिकायें भी मनुष्य शरीर ही की कणिकायो जैसी है। सब कणो की उत्पत्ति धातुबीजो (प्रोटोप्लाज्म) से है, जो कोयला (Carbon), जलजन (Hydrogen), नेत्रजन (Nitrogen) ओर अम्लजन (Oxygen) तत्वो से बनता है।

मनुष्य के शरीर का ढाचा दूसरे पशुओ ही की तरह अधिकाश चूने

(Lime) का बना हुआ है । इससे यह प्रतीत होता है है कि सृष्टि के आरम्भ मे कई शताब्दियों तक इसे समुद्र के अन्दर रहना पडा था और वही से अन्य प्राणियो की भाति धीरे-धीरे प्राकृतिक नियमो के अनुकूल इसकी उन्नति हुई है । यही नही, और प्राणियो की तरह मनुष्य भी अंडे से ही वृद्धि को प्राप्त होता है । मनुष्य, कुत्ता, मेडक, कीडा सभी अपनी गर्भवत प्रथमावस्था (Embryonic condition) के बाद, कुछ समय तक, एक से होते है । उस अवस्था मे यह जानना कठिन होता है कि इनमे से कौन कुत्ता, कौन मेडक, कौन मनुष्य का कलल अर्थात् गर्भ (Embryo) है ।

अन्य प्राणियो की तरह मनुष्य भी अम्लजन (Oxygen) अन्दर ले जाता और कार्बन-डि-आक्साइड (Carbon-Dioxide) नामक पदार्थ बाहर निकालता है । इन्द्रियाँ सब की भिन्न-भिन्न प्रकार की है, परन्तु काम वे एक सा देती है । इन बातो से मनुष्य का सम्बन्ध और प्राणियो से सिद्ध है । भेद केवल इतना है कि मनुष्य की इन्द्रियाँ उन्नत है । यदि मनुष्य के अंगो और उसके शरीर की बनावट की परीक्षा करके उनकी तुलना दूसरे प्राणियो के साथ की जाये तो साफ पता लगेगा कि मनुष्य यदि अपने को श्रेष्ठ समझ कर दूसरे प्राणियो से घृणा या उन पर अत्याचार करे तो यह उसकी भारी भूल है । शारीरिक सम्बन्ध मे, आरम्भ से लेकर आज तक, मनुष्य की समता छोटे-से-छोटे प्राणी से हो सकती है और इसका सबसे निकट कुटुम्बी, वनमानुष, इससे बहुत ही थोडा भेद रखता है ।

विद्वान् वैज्ञानिक हेक्सले (Huxley) ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "मैन्स प्लेस इन नेचर" (Man's Place in Nature) मे इस विषय की पूरी खोज की है । अन्त को आपने यह परिणाम निकाला है --

"The structural differences which separate man from the gorilla and chimpanzee are not so great as those which separate the gorilla from the lower apes."

अर्थात् मनुष्य की अपेक्षा गोरीला और चिम्पेजी बन्दरो के शरीर की बनावट मे उतना अधिक भेद नही है जितना कि गोरीला और दूसरे प्रकार के नीची जाति वाले बन्दरो मे है।

वानर और मनुष्य में शरीर सम्बन्धी जो भेद है वह मौलिक नही ; वह केवल भिन्न-भिन्न दर्जे का है । पश्चिम के विद्वान् वैज्ञानिको ने इस मनुष्य-मर्कट-सम्बन्ध का पता, लाखो वर्ष व्यतीत होने पर भी, लगाया है। एक-एक बात की पूरी तरह खोज की गई है । पृथ्वी के पृथक्-पृथक् भागो मे जॉच की गई है । समुद्र की तहो मे दबे हुए पिजरो को निकाल कर उनकी परीक्षा की गई है । हर बात जानने के लिए वर्षों परिश्रम किया गया है । इसका फल जो निकला है वह यह है कि सब प्राणी आपस मे, लाखो वर्ष एक दूसरे से जुदा होने पर भी, बन्धु है और सब एक ही परिवार के अंग है।

उदाहरण के लिए जब हम मनुष्य-गर्भ (Embryo) की वृद्धि की, पशु के गर्भ की भिन्न-भिन्न अवस्थाओ से तुलना करते है तब दोनो मे कोई भेद नहीं पाते । मनुष्य अपनी प्रारम्भिक अवस्था मे एक जीवकण (Protozoan) होता है, जिसका व्यास $\frac{१}{२५०}$ इच के करीब होता है। दूसरी अवस्था मे वह बिना रुधिर और नाड़ियो के एक छोटी थैली की शक्ल का कण-समूह बनता है । तीसरी अवस्था मे वह एक कृमि के रूप में आता है, जिसमे हृदय के स्थान पर सिर्फ एक नली रहती है । इस अवस्था मे सिर, गर्दन और जोड़ आदि नही होते। चौथी अवस्था मे वह सबसे साधारण पीठ की हड्डियो वाले प्राणियो की अवस्था मे आता है। इस प्रकार मनुष्य-गर्भ के कई अवस्थान्तर भेद होते है। ये भेद विना कारण के नही। ये उसकी पिछली अवस्थाओ का इतिहास बताते है। लाखो वर्ष के क्रमविकास मे उस पर क्या-क्या बीती है, सो सब वे प्रकट करते है। उसके सम्बन्धियो का पता बतलाते है। किस स्थान से कहाँ-कहाँ कालचक्र ने उसको घुमाया है, कहाँ-कहाँ रह कर उसने अपनी सब आदते सीखी है,

किन-किन के साथ उसने बालक्रीडा की है, इन सब छिपी हुई बातो का पता इन्ही भेदो से खुलता है ।

प्रकृति के इस सर्वव्यापक क्रम-विकासविषयक नियम का वर्णन यद्यपि प्राचीन भारतवर्ष के ऋषियो तथा यूनान के विद्वानो ने अपने ग्रन्थो मे हजारो वर्ष हुए किया था, परन्तु इसको सर्वसाधारण के सामने इस ढग से लाने का काम महात्मा डारविन ने किया है। इस नियम की सर्वव्यापकता के प्रमाण आजकल हम वैज्ञानिक, सामाजिक, दार्शनिक, मानसिक तथा अन्यान्य विद्याओ का परिशीलन करने मे पाते है।

डारविन के प्रतिपादित इस नियम के अनुसार खोज करते हुए शिकागो के विद्वान् अध्यापक मूअर साहब ने "सार्वलौकिक सगोत्रता" (The Universal Kinship) नामक पुस्तक लिखी है। उसमे उन्होने शारीरिक, मानसिक और धार्मिक, तीन प्रकार के प्रमाणो द्वारा यह सिद्ध किया है कि प्राणिमात्र आपस मे बन्धु है—वे सब सगोत्रीय है। शारीरिक सगोत्रता की बात थोडे मे कही जा चुकी है। अब मानसिक सगोत्रता की बात सुनिये।

मनुष्य का यह सिद्धान्त कि वह सब प्राणियों से श्रेष्ठ है और सब प्राणी केवल उसी के फायदे या आराम के लिए है, ठीक नही। मनुष्य भूल से अपने को बहुत बडा समझता है। मूर्खता से अपने से निर्बल प्राणियों को दुःख देता है। उसे अपनी पिछली अवस्था की खबर नही। सत्य तो यह है कि मनुष्य न तो ईश्वर के रूप मे उत्पन्न किया गया है, न स्वर्ग से गिरे हुए किसी देवता के रूप मे। मनुष्य बन्दर का सगोत्रीय है और उसी के रूप का भी है। उसके शरीर की बनावट बन्दर से खूब मिलती है। संसार के और प्राणी भी किसी-न-किसी अश मे उससे सम्बन्ध रखते है।

बहुधा लोग यह शका करते है कि मनुष्य की मानसिक अवस्था बहुत बढी-चढी है, अतएव उसका सम्बन्ध पशुओ से किसी प्रकार नही हो सकता। ऐसे आदमी केवल अपने आपको देख कर इस तरह का फैसला करते हैं। उन्हें भूमण्डल की भिन्न-भिन्न मानव-जातियों की मानसिक अवस्थाओं के

भेद की परीक्षा करनी चाहिये । उन्हे मानसिक शक्ति का परस्पर मुकाबला करके विचार करना चाहिये कि देश, काल आदि से सम्बन्ध रखने वाले किन नियमो के अनुसार ये भेद होते गये है । कितनी अधम अवस्था मे, ठीक बन्दरो की तरह, बहुत-सी मनुष्य जातियाँ अब भी दुनिया मे विद्यमान है। यदि पूरी तरह ध्यानपूर्वक देखा जाये तो पता लगेगा कि इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दु.ख आदि का ज्ञान रखने वाले जीवात्मा का प्रादुर्भाव प्राणियो के प्रारम्भिक शरीर मे भी पाया जाता है । समुद्र की तहो मे रहने वाले विचित्र प्राणियो मे भी ये चिन्ह किसी न किसी अश मे ––बहुत साधारण अवस्था में––पाये जाते है । जहाँ शारीरिक वृद्धि धीरे-धीरे होती रहती है वहाँ उत्तम साधनो के मिलने के कारण जीवात्मा भी अपनी शक्तियो को प्रकट करता जाता है । मानसिक वृद्धि भी उसी नियम का फल है । मानसिक उन्नति भी अगो की उन्नति के साथ होती है । 'मानसिक विकास' (Mental Evolution) के रचयिता विद्वान् रोमानेस (Romanes) अपनी पुस्तक की भूमिका मे लिखते है––

"I hold that if the doctrine of organic evolution is accepted, it carries with it, as a necessary corollary, the doctrine of mental evolution."

अर्थात् यदि शरीर-विकास का सिद्धान्त मान लिया जाये तो उसके साथ ही मानस विकास का सिद्धान्त भी सिद्ध समझना चाहिये ।

हम चाहे जिस प्रकार विचार करे, हमे मानना ही पड़ेगा कि शरीर के जिस भाग को हम मस्तिष्क (brain) कहते है, उसकी उन्नति विकास-नियम के अनुसार ही हुई है । शरीर के अवस्थान्तर भेद की परीक्षा करने में हम मनुष्य का सम्बन्ध प्राणिमात्र से पाते है । उसके शरीर के किसी न किसी भाग की समता हम छोटे कीटकों तक मे देखते है । जब हम मनुष्य की आदतों की जाँच करते है और उन्हें, किसी न किसी रूप में. अन्य प्राणियो मे भी पाते है––अपने-अपने दर्जे के अनुसार किसी

मे अधिक किसी मे कम---तब हमे मानना ही पड़ता है कि विकास का नियम सर्वव्यापक है । जो मनुष्य किसी समय पशुओं का सा स्वभाव रखता था, नही नही पशु ही था, आज वह विकास सिद्धान्त की बदौलत इस उन्नत अवस्था को पहुँच गया है ।

मनुष्य को छोड कर साधारण पशुओ मे कुत्ते को देखिए तो पता लगेगा कि उसके पुराने पूर्वज भेडिये का काम करते थे और गीदड भी उन्हीं के वशज है। पर कुत्ते ने अपने स्वभाव मे बहुत उन्नति की है। इसके पूर्वज तेज़ी, तुन्दी, खूख्वारी और धोखेबाजी के लिए कितने प्रसिद्ध थे और अब भी है ; पर इन सब दुर्गुणो को कुत्ते ने किस प्रकार दूर कर दिया है ! किस प्रकार मनुष्य के सग से उसने अपनी अवस्था को सुधारा है ! पृथ्वी पर शायद ही कोई दूसरा पशु इतना विश्वासपात्र, इतना प्यारा, इतना घरेलू होगा । इसी तरह शेर की मौसी बिल्ली को देखिये । इसकी कथा तो आपने बहुत सुनी होगी। इसके परिवार के लोग दूर-दूर पाये जाते है। उनके कितने ही दर्जे हैं। उनके स्वभावों की परीक्षा कीजिये तो पता लगेगा कि जैसे मंगोलियन जाति के लोग भिन्न-भिन्न देशो मे रहने और भिन्न-भिन्न जलवायु का संसर्ग होने के कारण आज अनेक अवान्तर भेदों में विभक्त है, परन्तु सबकी उत्पत्ति एक ही वंश से है, उसी प्रकार बिल्ली के परिवार की भी दशा हुई है । कारण यह है कि बिल्ली मनुष्यों के पास रहने लगी है, इसलिये इसने अपने पूर्वजों की बहुत-सी बातें छोड दी हैं और धीरे-धीरे अपनी उन्नति कर रही है ।

किसी भी सभ्य जाति के इतिहास को लीजिये। जो जाति आज कला-कौशल, विज्ञान, साहित्य, सगीत, सदाचार आदि के लिए प्रसिद्ध है, उसकी मानसिक उन्नति असभ्य अवस्था मे वन्य पुरुषो ही से हुई है । इस बात का प्रमाण पुराने इतिहास और पुरानी खोपड़ियो आदि की परीक्षा से मिलता है ।

जब हम किसी असभ्य जंगली आदमी की ओर देखते है, तब मनुष्य-समाजकी बाल्यावस्था का चित्र हमारे सामने आ जाता है । हजारो वर्षों

से असभ्य अवस्था मे रहने वाले आदमियो का इतिहास जाने बिना आजकल के सभ्य आदमियो की सामाजिक अवस्था का ज्ञान पूरी तरह नही हो सकता। गिलबराइथ (Gilbraith) साहब बहुत दिन तक उत्तरी अमरीका की सीओक्स नामक एक असभ्य जाति के बीच मे रहे थे। इस जाति की सामाजिक अवस्था के विषय मे वे कहते है —

"They are bigoted, barbarious and exceedingly superstitious. They regard most of the vices as virtues. Theft, arson, rape and murder are regarded by them as the means of distinction. The young Indian is taught from childhood to regard killing as the brightest of virtues. In their dances and at their feasts, the warriors recite their deeds of theft, pillage and slaughter as precious things."

मतलब यह कि चोरी, व्यभिचार और हत्या आदि को यह लोग पुण्य समझते है। लडकपन ही से इन लोगों को यह सिखलाया जाता है कि औरो को मार डालने से बढकर ससार मे और पुण्य नही। अपने नाचने, गाने आदि के उत्सवो मे ये लोग इस तरह के कामों की तारीफ बडे अभिमान से करते है।

बहुत सी बाते, जिन्हे हम लोग पाप समझते है, असभ्यो की दृष्टि मे पुण्यदायक है। जब फीजी-निवासी कुछ खाने को नही पाते, तब अपनी बूढी स्त्रियो को मार कर खा जाते है। वे कुत्तो को नही मारते; कहते है कि बूढी औरते किसी काम नही आतीं, कुत्ते तो शिकार में मदद देते है।

इन सब बातो का विचार करने और संसार की भिन्न-भिन्न जातियो के इतिहास के क्रम को पक्षपात-रहित होकर जांचने से यह साबित होता है कि मनुष्य-समाज की वर्तमान अवस्था सदा से ऐसी ही नही रही है। किन्तु दर्जे-ब-दर्जे देश-काल के अनुसार उन्नति होती गई है। जो जाति हज़ारों वर्ष हुए असभ्य दशा में थी, वह आज क्रम-विकास के सर्वव्यापक नियमों के अनुसार श्रेष्ठ अवस्था को पहुंची है। मनुष्य मे दया, करुणा, न्याय, धैर्य्य,

सत्यता, क्षमा, दम आदि गुणों की वृद्धि लाखों वर्षो के क्रम-विकास का फल है। मनुष्य यदि यह समझे कि ये गुण मैने शुरू से ही पाये है--मै कभी पशु, कीट आदि अवस्थाओ मे था ही नही--तो यह उसकी बहुत बडी अज्ञानता है। सब प्राणी दु.ख से निवृत्ति पाकर सुख की इच्छा करते हुए एक ही पथ की ओर जा रहे है।. यदि कोई इस यात्रा मे दो-चार कदम आगे या पीछे है, तो इससे यह सिद्ध नही होना कि दूसरे यात्रियो मे उसका कोई सम्बन्ध नही। पुरुषार्थ का लक्षण करते हुए साख्य के कर्त्ता महर्षि कपिल ने इस बात की पुष्टि की है। उन्होने पुरुषार्थ के नियम की सर्वव्यापकता संसार मे बहुत ही अच्छी तरह सिद्ध कर दिखाई है। क्या कीट, क्या पतग, क्या पशु, क्या पक्षी, क्या असभ्य, सभी दु:ख की अत्यन्त निवृत्ति चाहते है। ज्यों-ज्यो प्राकृतिक नियमो के अनुसार शारीरिक साधनो मे उन्हे सहायता मिलती जाती है, त्यो-त्यो वे "दु.ख की अत्यन्त निवृत्ति" के उद्देश्य पर अधिक ध्यान देते जाते है। ऐक्य, प्रेम, मित्रता आदि गुणो का अस्तित्व हम मनुष्य की पशुतुल्य अवस्था मे भी पाते है। यही गुण धीरे-धीरे वृद्धि को प्राप्त होकर उस उद्देश्य की सिद्धि मे अग्रसर होते है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह अपने पीछे आने वाले यात्रियो को प्रेम की दृष्टि से देखे और समझे कि ये भी उसी सुख-प्राप्ति के स्रोत की ओर आ रहे है। नैतिक विषय मे मनुष्य का पशुओ के साथ किस प्रकार सम्बन्ध है, अब इस पर भी थोडा सा सुन लीजिये।

"जिस तरह का व्यवहार तुम चाहते हो कि कोई तुम्हारे साथ न करे, उस तरह का व्यवहार तुम भी दूसरे के साथ न करो," अर्थात् "स्वस्य च प्रियमात्मन:" यह धर्म का एक व्यापक लक्षण है। धर्म्माध्यक्ष और उपदेशक लोग इस लक्षण के आधार पर हमेशा ही उपदेश दिया करते है; परन्तु सब लोग इसके अनुसार व्यवहार करने का यत्न नही करते। यदि हम बहुत बढकर कदम मारते है तो यह समझते है कि इस नियम का सम्बन्ध मनुष्य जाति तक ही है। पर यदि हम विचारपूर्वक देखते है तो मालूम होता है कि यह नियम सारे प्राणियो से सम्बन्ध रखता है। जिन प्राणियो को

हम समझते है कि उन्हे सुख-दुःख का अनुभव नही होता, जिनको काटते हुए हमे तनिक भी दया नही आती, जिन्हे हम जड पदार्थ की तरह चीरते फाडते है, जिन्हे हम समझते है कि ये हमारे ही खाने-पीने के लिए पैदा किये गये है, उनकी इन्द्रिया यद्यपि हमारी इन्द्रियो की तरह उन्नत दशा मे नही, तो भी वे सुख, दुःख और पीडा आदि का अनुभव करते है। वे दीन है, अनाथ है, इसीसे हम उनकी इस हीन अवस्था से लाभ उठाते है।

हम ऊचे-ऊचे आसनो पर खडे होकर चिल्लाते है कि हमारा उद्देश्य ससार मे सुख और शान्ति फैलाना है--एकमात्र यही हमारा उद्देश्य है--परन्तु क्या इस उद्देश्य की पूर्ति निरपराध जीवो को मारने और उन्हे अपना भक्ष्य बनाने से हो सकती है ? लाखो निरपराध और निर्बल पक्षी अपने परो के लिए मारे जाते है। इसलिए कि वे पुरुषो और स्त्रियो, दोनो की सुन्दरता बढाये। लाखो उनकी पोस्तीनो के लिए काटे जाते है। मनुष्य बडे घमण्ड से उस चमडी को पहन कर घूमता है और जरा भी लज्जित नही होता। वह नही सोचता कि मनुष्य कहला कर भी मै पशुओ के काम कर रहा हूँ। हम अपने आपको सभ्य कहते है, परन्तु क्या इसी का नाम सभ्यता है ? यदि अफ्रीका के जगली आदमी खाले पहिनते है, गले मे हड्डियो की मालाये डालते है, तो क्या हम उनसे कम है ? हम तो श्रेष्ठ नियमो को जानते हुए--नही नही उपदेश करते हुए भी--उनके विपरीत आचरण कर रहे है।

सच तो यह है कि मनुष्य इन धार्मिक नियमो को केवल अपने ही समाज के लिए समझता है। एक समाज के लोग जब दूसरे समाज वालो से लडते है, तब वे इतना भी भूल जाते है। तब वे इस तरह के उदार नियमो का अनुसरण केवल अपनी समाजसम्बन्धी बातो मे ही करते है। ऐसे ही लोग पशुओ को बिना जीव के समझते है और उनको दुःख देने मे तनिक भी दया नही दिखाते। जो अपने पेशे के मनुष्यो को ही अपने दायरे मे समझता है, वह उदाराशय नही। किसी एक समाज या एक जाति को ही अपना समझना बहुत बडी सकीर्णता है। ऐसी समझ उसी को हो सकती है

जो अपने देश के लोगो को मित्र और दूसरो को शत्रु समझता है । परन्तु उदार वही पुरुष है जो "वसुधैव कुटुम्बकम्" के सिद्धान्त का कायल है । जिन तत्वदर्शी विद्वानों के नेत्र खुल गये है उनका सिद्धान्त यह है--

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद् विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः ॥

ऐसे महापुरुष छोटे-से-छोटे कीट मे भी अपने सम्बन्ध का अनुभव करते है । वे जैसे अपनी माता के गर्भ से उत्पन्न हुए अपने भाई को देखते है, वैसे ही औरो को भी । "प्रेम ही परमेश्वर है" (God is Love), इस सत्यामृत को वही पान करते है । प्रत्येक प्राणी से वे प्रेम रखते है, उसके दु:ख को अपना दु.ख और सुख को अपना सुख समझते है । उनकी दृष्टि एक क्षण मे लाखो वर्षो के ऐतिहासिक दृश्य को देख जाती है । वे जानते है कि ये सब यात्री उन्ही के मार्ग से पीछे आ रहे है । इस प्रकार उन्हे एक ही गन्तव्य स्थान की ओर जाते देख उनको परमानन्द होता है । स्वतन्त्रता से विचरने वाले पक्षियो को वे वडे प्रेम से देखते है । जगल मे घास पर गुजारा करने वाले पशुओं को वे प्रेम का भाजन वनाते है । उनका आत्मा प्राणिमात्र मे अपने ही को देखता है । हमारे जितने बुरे काम है उनका असर जरूर बुरा होता है । यदि हम किसी पशु को काटते है तो उसके दु.ख से वायु में कम्पन (vibrations) पैदा हो जाते है । वही अशान्ति का कारण वनते है । उनसे हमारे सुख या शान्ति का भग हुए बिना नही रहता । जैसे पतित पुरुष के पास बैठने से उसके बुरे संस्कारो का असर हम पर पडता है और शुद्धाचरण पुरुष के पास बैठठे से शान्ति और आनन्द मिलता है, वैसे ही हमारे भले-बुरे कामो का भी फल हमे तदनुरूप ही मिलता है । अनाथो को सताना मना है । इस वात पर हमे विश्वास भी है । हम जानते है कि निरपराध को दु.ख देने से उसके रोने और आह भरने का बुरा असर पडता है; फिर भला निरपराध प्राणियो को दु:ख देने से हमारे सुख का विघात क्यो न होगा ? अतएव हमें उचित है कि हम सुख और शान्ति

के लिए अपने प्रत्येक विचार और कर्म मे उत्तम संस्कारो की वृद्धि करे, सब पर प्रेम और दया का भाव रक्खे, छोटे से छोटे प्राणी को भी न सतावे और अपने हृदय पर यह लिख ले--"प्राणिमात्र हमारे वन्धु है।"

Wilt thou draw near the nature of the gods ?
Draw near them, then, in being merciful;
Sweet mercy is nobility's true badge.



उन्तालीसवाँ पुष्प

सत्यज्ञान-विवेचना

लोग हमसे पूछते है कि हमने अपने आश्रम का नाम सत्यज्ञान-निकेतन क्यो रक्खा है ? निस्सन्देह प्रत्येक सार्थक नाम के पीछे कोई न कोई आदर्श रहता है और हमारे इस आश्रम के नाम के पीछे भी एक महान् आदर्श है । इस विषय को स्पष्ट तौर से व्यक्त करने के लिए हमने एक रात जागरण किया । तारागणो से सुशोभित सुन्दर रात्रि मे, अपने निकेतन के आम्र-कुजा मे आधी रात के समय घूम घूमकर मै इस विषय पर विचार करने लगा--"मनुष्य के जीवन का आदर्श क्या है ?" तब हमे जो उत्तर मिला उसे हमने कविता का रूप दिया और उसी रात्रि को निम्नलिखित छन्द प्रभाती के स्वर मे गा-गाकर अपना चित्त प्रसन्न करने लगे--

सत्य ज्ञान वे, सुन्दर पथ को, जीवन का आदर्श बना;
भूमण्डल के विद्वानों ने, लिया इसे दिल से अपना ।

ये पहली दो कडिया बना कर हमने गाना प्रारम्भ किया । हमे पता लगा कि जब से मनुष्य-समाज का सगठन हुआ है तब से बराबर ससार भर के विद्वानो ने मानव-जीवन का आदर्श सत्य ज्ञान को ही माना है । यह पथ हजारो वर्षो से धीमान् लोगो ने अपनाया है और सदा इसे प्रशस्त करने मे उन्होने अपनी शक्ति खर्च की है ।

ऐसा क्यो किया ? केवल इस लिए क्योकि इस शरीर को छोडते समय हमारे साथ कोई वस्तु नही जाती । भाई-बन्धु, कुटुम्ब-कबीला और विशाल भवन सब यही रह जाते है । केवल हमारा अच्छा-बुरा ज्ञान ही हमारे साथ जाता है और उसी के अनुसार हमे भावी शरीर मिलता है । यही कारण है कि एक ही मां-बाप के बच्चो मे भिन्न-भिन्न शक्तियाँ

और स्वभाव होते है। एक ही जैसे रज-वीर्य से बने हुए उनके शरीरो मे आत्मा के पिछले सस्कारो के कारण--उसके भले-बुरे ज्ञान की वजह से--आकाश-पाताल का अन्तर पड जाता है। इससे पता लगता है कि इस जीवन का अन्तिम साथी धर्म नही बल्कि भला-बुरा ज्ञान है। हाँ, जीवन को उन्नत अवस्था मे ले जानेवाला, उसे आनन्द-मार्ग पर चलानेवाला अन्तिम साथी सत्यज्ञान ही है। यदि आप उसे धर्म के नाम से पुकारे तो कोई हर्ज नही पडता। हमारा झगडा नाम मे नही, हमे तो भाव से मतलब है, इसीलिये हमने उस रात्रि को यह बात भली प्रकार समझ ली कि सत्यज्ञान ही जीवन का असली तथ्य है और यह जो हमारे सामने प्रभु का रचा हुआ ब्रह्माण्ड है इसका अन्वेषण ही हमारा परम पुरुषार्थ है। वे ही सच्चे यात्री कहे जा सकते है कि जो इस आदर्श मे पग बढाते है, या पग बढाने में सहायक बनते है। विचार करते-करते हमारे सामने उन महर्षियो के पवित्र नाम अंकित होगये कि जिन्होने अपनी जीवनियाँ बलिदान कर सत्यज्ञान का सन्देश दिया। तब हमने कहा --

कपिल व्यास पतञ्जलि गौतम, विश्वामित्र वसिष्ठ ऋषि,
जीवन की आहुतियाँ देकर, गये ज्ञान-सन्देश सुना।
दयानन्द ने इसी खोज में, अपने घर को त्यागा था,
बुद्धदेव ने महल छोड़ कर, बौद्ध-धर्म की की रचना।
बाल ब्रह्मचारी शंकर ने, यह मारग अपनाया था,
यूनानी सुकरात सन्त ने, पिया प्याला ज़हर सना।

जब हमने इन पदो को बार-बार गाया, तो हमारा हृदय गद्‌गद् हो गया। उन पुराने ऋषि-महर्षियो ने सब प्रकार के भेदो को त्याग कर मानव-जाति को यह सुन्दर सन्देश दिया कि सत्य ज्ञान ही हमारी सच्ची सम्पत्ति है। कोई महापुरुष या स्त्री भी किसी देश मे उत्पन्न हो, उसका किसी भी राष्ट्र से सम्बन्ध हो, परन्तु यदि वह सत्य ज्ञान का सन्देश दे तो उसका

नाता विश्व से हो जाता है और यही यथार्थ मे मनुष्य-जीवन का लक्ष्य है। सयुक्त राज्य अमरीका के किसी विशाल नगर के वैज्ञानिक भवन मे बैठा हुआ अमरीकन यात्री भगवान् बुद्ध के उपदेशो को बडे प्रेम से पढता है और हृदय से लगाता है। देश-भेद की दीवारे सत्यज्ञान-सदेश के सामने चकनाचूर हो जाती है और मनुष्य अपने आपको ज्ञान के उद्यान मे विचरता हुआ देखता है।

भला सोचिये तो सही कि यूनान की राजधानी एथन्स मे सग-तराशी (पत्थर को घडना) करने वाले परमज्ञानी सुकरात के साथ हमारा क्या सम्बन्ध है? उन्हे पैदा हुए आज लगभग २४०० वर्ष होगए। उनका जन्म ईसा से ४७० वर्ष पहले हुआ था और मृत्यु ३९९ वर्ष पहले। उस घटना को आज शताब्दियाँ बीत गई। लेकिन हम श्रीगगाजी की इस घाटी में बैठे हुए आधी रात के समय आज भी उस संत का गुणानुवाद गा रहे है—केवल इसलिये न कि उस महापुरुष ने मानव-जाति के उपकारार्थ सत्यज्ञान के अन्वेषण के लिए हँसते-हँसते विष का प्याला पी लिया था। उन्होने यह बतला दिया कि हमारे जीवन का एक ही उद्देश्य है—सत्य ज्ञान की खोज। प्रभु के इस अनन्त ज्ञान सागर मे कैसे बहुमूल्य हीरे-मोती भरे पडे है, जिनके विषय मे हम कुछ नही जानते! विद्वान्-प्रवर सर एज़क न्यूटन ने अपनी सारी आयु ज्ञान-सग्रह करने के बाद यही कहा था कि वह अनन्त ज्ञान-सागर के किनारे खडा हुआ केवल घोंघे चुन रहा है। उपनिषदों ने भी अध्यात्म-सागर मे गोते लगाने के बाद यही नतीजा निकाला—

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः।

अर्थात् जो कहता है कि मै नही जानता हूँ वही जानता है और जो कहता है मै जानता हूँ वह कुछ नही जानता। परमात्मा की अद्भुत सृष्टि पर विचार करते हुए और हिमालय के उन कठिन गिरि-शृगो का स्मरण करते हुए हमने ये पक्तियाँ गाई—

चढ़े हिमालय के शिखरों पर, कर्मवीर निर्भय होकर,
सिखलाया सिद्धान्त अटल यह, सत्य-ज्ञान पर मर मिटना।
'देव' सफल जीवन-यात्रा यह, उनकी मानी जाती है,
जो करते बलिदान ज्ञान पर, तन-मन-धन सब कुछ अपना।

गिलगित के पास, सिन्धु नदी के किनारे, गगनचुम्बी उस नगा पर्वत के शिखर पर कौन सी अद्‌भुत वस्तु रक्खी है जिसकी तलाश के लिए परम प्यारे जर्मनी को छोडकर देशभक्त नीरोग जर्मन नवयुवक भारतवर्ष मे आते है और उस नगा पर्वत पर चढने का प्रयत्न करने मे अपने प्राण न्योछावर कर देते है! इस वर्ष जब इन वीरो के समाधिस्थ होने की खबर जर्मनी मे पहुची तो उनके देशबन्धु फ़ौरन हवाई जहाज पर चढकर हिदुस्तान आए और जी-जान लडाकर उन ज्ञान-प्रेमियो की लाशो की खोज करने लगे। बीस हज़ार फीट ऊँची चट्टान पर कई सौ फीट लम्बी हिमशिला को बड़ी कठिनाई से खोदने के बाद इन जर्मन यात्रियो ने अपने प्यारे देशबन्धुओ को बर्फ के नीचे शान्ति की नीद सोते हुए पाया। उन्होने बडी श्रद्धा से उसी स्थान पर कब्र खोद कर उन्हे समाधि दे दी और संसार को यह बतला दिया कि जर्मन जाति के बच्चे सत्य ज्ञान को ही अपना जीवनादर्श समझते है। वे डरेगे नही, अपने अन्वेषण से हटेगे नही, बल्कि दूसरे वीर अपना दल बना कर उस खोज को आगे बढायेगे और इन शहीदो के जय-जयकार गाते हुए नगा पर्वत पर विजय प्राप्त करेगे। ये है सच्चे रहस्यवादी, जो अपनी जान की बाजी लगाकर प्रकृति के रहस्यो का उद्‌घाटन करने का प्रयत्न करते है। रग-बिरगे शब्द गाकर नही, झूठी-सच्ची बाते मिलाकर नही, अपना स्वार्थ बढाकर नही, अपनी कीर्त्ति फैलाकर नही, बल्कि विनय से इस अद्‌भुत लीला की रचना करने वाले उस प्रभु को नमस्कार कर बाधाओं के साथ कुश्ती लडते है और भावी अन्वेषको के लिए मैदान साफ करते है।

इस प्रकार उस आधी रात को सत्य ज्ञान के विषय मे विवेचना करते हुए यह कविता मेरे हाथ लग गई। मैने उसे शिरोधार्य किया, बार-बार गाया

और मन मे निश्चय कर लिया कि अब अपनी शेष आयु इसी पथ पर चलने का प्रयत्न किया जायगा। कोई भी मनुष्य यह नही कह सकता कि उसने सब कुछ जान लिया है। हमे बडे धैर्य्य से इस मार्ग पर बढते जाना चाहिये और ज्ञान-भण्डार मे सदा कुछ न कुछ भरते जाना चाहिये, तभी हमारा जीवन सफल कहा जा सकेगा।



चालीसवाँ पुष्प

आम्र वृक्ष के नीचे

यह ऋतु वर्षा का है । श्रावण का महीना खत्म होगया और भादो का आरम्भ होता है । श्रावण के महीने मे श्री गगाजी की इस घाटी मे हज़ारो नर-नारी उषाकाल से ही गगा-स्नान के लिए घर से निकल पडते है। मेरे निकेतन की सामने की सड़क पर स्त्री-पुरुषो की टोलियाँ गाती हुई और राधाकृष्ण का नाम उच्चारण करती हुई नित्यप्रति जाह्नवी-स्नान के लिए जाया करती थी ओर मै अपनी कुटी की छत पर बैठा हुआ सोचा करता था—

"हजारो वर्षो से भारतीय जनता इसी प्रकार इस पवित्र नदी मे स्नान करती चली आ रही है । यहाँ पर अफगानो और मुगलो का राज्य रहा, चोर-उचक्के यात्रियो को लूटते-खसूटते रहे, चारो ओर विद्रोह का राज्य रहा और अग्रेजी शासन भी अपने दिन पूरे कर मृत्यु की ओर चला गया। लेकिन भारतीय जनता सहस्रो सालो से जैसी चली आती थी, वैसे ही आज भी चली जा रही है । ससार की दूसरी जातियो ने नदी-नालो के विषय मे, अग्नि-आकाश की बाबत और वायु-जल के सम्बन्ध मे कितना अधिक ज्ञान प्राप्त कर लिया है और कितना सदुपयोग वे उस ज्ञान का कर रही है, परन्तु इस देश के लोग अभी तक अपने पुराने मार्ग से टस से मस नही हुए। क्या इनमे दूसरी जातियो से धार्मिक जीवन की मात्रा अधिक है ? अनुभव इसका उत्तर "नही" मे देता है । दूसरे देशो मे लोग एक दूसरे के अधिकारो का आदर करते है, स्त्रियो को कोई अश्लील शब्द नही कह सकता। गली-कूचो मे कोई लडता-झगडता दिखाई नही देता, सब एक दूसरे के साथ शिष्टाचार से वर्त्तते है और अपने नित्य के जीवन मे पब्लिक सफाई का बडा ख्याल करते है । इसके विपरीत मेरी यह भोली-भाली जनता अविद्यान्धकार मे कैसी डूबी हुई है ! पवित्र नदियो

के किनारे यह गन्दगी फैलाती है, आपस की बोलचाल मे अश्लील मजाक करती है, स्त्रियो का आदर करना नही जानती, दुकानदारी मे कैसा झूठा सौदा करती है और अपने बर्ताव मे ईमानदारी का चलन करना जानती ही नही --तिस पर श्रावण के स्नान, "मुख से राधाकृष्ण बोल, तेरा क्या लगेगा मोल" के गीत गाना और एकादशी के व्रत रखकर अपना पेट जलाना --इन सबसे लाभ क्या ! शायद मेरे ये अबोध देशबन्धु ऐसा समझते है कि नित्य के व्यवहार मे धर्म की कोई आवश्यकता नही, धर्म केवल स्नानो, व्रतो और पूजा-पाठ मे ही निहित रहता है, तभी तो इन्हे जीवन की पवित्रता की ओर कुछ भी ध्यान नही और बाहर के आडम्बरो के लिए ये सब योजनाये ! ऐसी जनता को सत्यमार्ग पर कैसे लाया जाये ?

मेरा कर्त्तव्य क्या है ? मुझे अपने देशवासियो के सामने सच्ची-सच्ची बाते रखनी ही होगी। जिन देवी-देवताओ और पीर-पैगम्बरो को किसी भी अवस्था मे देवी-देवता अथवा पीर-पैगम्बर नही कहा जा सकता, जिनके आचरण देवी-देवताओ जैसे नही है, उनकी पूजा सर्वथा निन्दनीय है। आज बुद्धिवाद के इस युग मे इन्हे स्पष्ट तौर से सच्ची-सच्ची बाते बतलानी ही होगी। मुसलमानो को मुर्दो की पूजा से हटाकर एक ईश्वर की ओर लाना पडेगा और हिन्दू-मुस्लिम दोनो को जीवन की पवित्रता की महत्ता समझानी होगी। हज़ारो वर्षो से गलत मार्ग पर चलनेवाली इस हिन्दू-जनता को अब ज्ञान-प्रकाश दिखलाने का समय आगया है। ये रहना नही जानते, खाना नही जानते, शिष्टाचार नही जानते और न जानते है जीवनानन्द को--ऐसी अवस्था मे भला ये स्वराज्य का सुख भी क्या ले सकेगे ! यदि गगाजी की इसी घाटी मे दस हजार जर्मन बस जायें तो वे इसे स्वर्ग बना दे। नहर के दोनो किनारो पर सुन्दर सडके और पार्क बन जाये; बिजली की गाडियाँ पाँच-पाँच मिनट के बाद यात्रियो को ऋषिकेश, लछमनझूला पहुँचाया करे और इर्द-गिर्द के ग्रामो का सम्बन्ध हरिद्वार से जोड दे; मलेरिया का नाम न रहे, स्थान-स्थान पर नीरोग भोजनालय हो; किसी प्रकार की दुर्गन्ध और बदबू न रहे; व्यभिचार

और भाट के बाजार बन्द हो जाये; छोटे-छोटे पुस्तकालय पचपुरी मे स्थापित हो जाये और श्रीगगा जी की नैसर्गिक छटा का ऐसा रमणीक दृश्य बने कि दूर-दूर देशो के लोग इसका दर्शन करने यहाँ आवे और भागीरथी के किनारे पर बने हुए साफ सुथरे स्नानागारो मे स्नान कर अपने को धन्य-धन्य समझे। परन्तु हा! हमारे लोग तो मरे जाते है कथाओ के लिए, भीड-भडक्को के लिए, मेले-ठेलो के लिए और उन निस्सार बातों के लिए जिनके कारण इनकी दुर्दशा सैकडो वर्षो से हो रही है।

मै किस प्रकार अपनी जाति के बच्चो मे पुराने ऋषियो का बल-वीर्य और तेज ला सकता हूँ? किस प्रकार उनका परम पुरुषार्थ नये सिरे से जगाया जा सकता है? किस प्रकार इस गिरी हुई भारत-जाति को प्रभु के ज्ञानोद्यान का दर्शन हो सकता है? मनुष्य का धर्म है--धैर्य्य से उद्योग करते जाना। 'ज्ञान के उद्यान मे' अपनी इस पुस्तक मे मैने ऐसे ही प्रश्नो का उत्तर देकर देश की सोयी हुई आत्मा को जगाने का प्रयास किया है। प्रभु से मेरी सविनय प्रार्थना है कि वे इस शुभ कार्य मे मेरी सहायता करे और सरस्वती माता मुझे ऐसा सन्देश दे कि जिसे मै अपने देशवासियो को सुनाकर अपनी जीवन-यात्रा सफल बना सकूँ।

॥ इति शुभम् भूयात् ॥

समाप्तम्

दो महापुरुषों का जीवनादर्श एक—जनता की भलाई

लेकिन

दोनों के मार्ग भिन्न-भिन्न—एक हिंसावादी, दूसरा अहिंसावादी

किन्तु दोनों अपने मार्ग पर अटल

रूसी डिक्टटर लेनिन तथा भारतीय संत महात्मा गांधी

की जीवनियों की

सर्वांगपूर्ण दृष्टि से तुलना के साथ-साथ

महात्मा गांधी को एक हिन्दू ने क्यों मारा ?

इस प्रश्न के कारणों को जानना चाहते हैं तो अवश्य पढ़िए

स्वतन्त्रता की खोज में

अर्थात्

मेरी आत्मकथा

मूल्य केवल चार रुपये

लेखक—स्वामी सत्यदेव परिव्राजक

इसके साथ-साथ लेखक पन्द्रह रुपये लेकर अमरीका कैसे गए, उनका स्वावलम्बी जीवन, दो हजार तीन सौ मील की पैदल यात्रा, भारतीय स्वाधीनता संग्राम की रोमांचकारी कहानी, तथा कैलाश, जर्मनी, फ्रांस आदि देशों की यात्राएं आपके ज्ञान की वृद्धि करेंगी।

मिलने का पता

स्वामी सत्यदेव परिव्राजक

स त्य ज्ञा न प्र का श न

ज्वालापुर (उत्तर प्रदेश)

लखनऊ के 'नेशनल हेरल्ड'

तथा

बम्बई के 'ब्लिट्ज़'

के आक्षेपों का करारा उत्तर इस पुस्तक में पढ़िए

विचार-स्वातन्त्र्य के प्रांगण में

लेखक—स्वामी सत्यदेव परिव्राजक

मूल्य एक रुपया बारह आने

बड़ी मनोरंजक तथा शिक्षाप्रद सामग्री से भरी हुई,
राष्ट्रपति जी तथा प्रधानमन्त्री जी के पत्र तथा
उनके यथोचित उत्तर के साथ-साथ सभ्यता
और संस्कृति का शुद्ध स्वरूप,
बुद्धिवाद का प्रशस्त मार्ग
आदि लेखों सहित
प्रगति की ज्वलन्त
प्रतिमा अवश्य
पढ़िये

●

मिलने का पता—

स्वामी सत्यदेव परिव्राजक

स त्य ज्ञा न प्र का श न

ज्वालापुर (उत्तर प्रदेश)

संजीवनी बूटी



ब्रह्मचर्य के विषय में हमारे पास सदा पत्र आते रहते हैं और लोग वीर्य-रक्षा के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न प्रश्न पूछते रहते हैं।

स्कूलों के विद्यार्थी हस्तमैथुन द्वारा अपने वीर्य को खोकर नाना प्रकार की व्याधियों से ग्रसित हो जाते हैं। यह पुस्तक पहले सन् १६१५ में लिखी गई थी। इसके बहुत से संस्करण हो चुके हैं और इसकी हज़ारों प्रतियों का प्रचार देश में हुआ है। अब इसके दोनों भागों को इकट्ठा कर भोजन, व्यायाम, गृहस्थी कैसे ब्रह्मचारी रह सकते हैं, तम्बाकू की बुराइयाँ, आनन्दमय जीवन आदि अत्यन्त उपयोगी निबन्ध इसमें मिलाकर मुखपृष्ठ पर व्यायाम करते हुए लेखक का चित्र दिया गया है।

यह पुस्तक प्रत्येक गृहस्थ के यहाँ रहनी चाहिए, जिससे घर के सभी लोग इसके द्वारा लाभ उठा सकें।

मूल्य : केवल दो रुपये

●

मिलने का पता

स्वामी सत्यदेव परिव्राजक

स त्य ज्ञा न प्र का श न

ज्वालापुर (उत्तर प्रदेश)

पाकिस्तान—एक मृगतृष्णा

आजकल पाकिस्तान की बड़ी चर्चा है और वहां के अधिकारी अखबारों और रेडियो पर बढ़-बढ़ कर बातें करते हैं। यदि पाकिस्तान की पोल और उसका थोथापन अच्छी तरह से जानना हो तो इस पुस्तक को मँगा कर पढ़िए तथा अपने मित्र-प्रेमियों में इसका प्रचार करिए।

भारत संघ का काश्मीर के साथ क्या सम्बन्ध है, भारतीय मुसलमानों की कोई अलग संस्कृति वा साहित्य नहीं, उनकी कोई अलग कौम नहीं, वे हिन्दुओं से ही निकले हुए विदेशी मजहब के मानने वाले भारतीय हैं, मजहब व्यक्ति की निज की सम्पत्ति है—आदि महत्वपूर्ण विषयों पर इस पुस्तक में न्यायशील दृष्टि से विवेचना की गई है।

मूल्य : केवल एक रुपया

लहसुन बादशाह

स्वामी सत्यदेव परिव्राजक द्वारा लिखित यह पुस्तक किसी भी कथा-पुस्तक या उपन्यास से कम मनोरजक नही है। आप इसे एक बार प्रारम्भ करके समाप्त किये बिना नही छोडेगे।

इसमे स्वामीजी ने लहसुन के प्रयोग सम्बन्धी अपने परीक्षणो और अनुभवो का निचोड दिया है। न केवल हमारे आयुर्वेदशास्त्र मे लहसुन की महिमा वर्णित है अपितु आधुनिक काल मे महात्मा गाधी सरीखे महापुरुष इसकी विलक्षण शक्ति से आकृष्ट हुए और नियमपूर्वक इसका सेवन करते रहे। स्वामीजी गाधीजी के सम्पर्क मे बराबर रहे है, और उन्होने व्यक्तिगत रूप से उनकी लहसुन-भक्ति को देखा था।

देश का दुर्भाग्य था कि किसी समय अज्ञानवश हिन्दुओ ने लहसुन का सेवन छोड दिया। इसके गुणो और चमत्कार का सजीव वर्णन आपको स्वामीजी की इस पुस्तक मे मिलेगा। मूल्य : डेढ़ रुपया

मिलने का पता

स्वामी सत्यदेव परिव्राजक

स त्य ज्ञा न प्र का श न

ज्वालापुर (उत्तर प्रदेश)

अध्यात्मवाद के प्रेमियों तथा विद्यार्थियों के लिए

शुभ संवाद

●

अनन्त की ओर

पृष्ठ संख्या २७२

मूल्य—तीन रुपया

इकट्ठी मंगवाने वालों को इस पुस्तक में बहुत रियायत दी जाती है। अध्यात्मवाद की इस विश्वविख्यात पुस्तक का प्रचार करने वालों के लिए दाम मे रियायत की जाती है।

●

इसी प्रकार विद्यार्थियों के लाभ के लिए मेरी प्रसिद्ध पुस्तक

अमरीका के निर्धन विद्यार्थी

का मूल्य आठ आने है। इकट्ठी पुस्तके मंगवाने वालों को यह पुस्तक भी रियायत मे दी जाती है।

पुस्तक मिलने का पता

स्वामी सत्यदेव परिव्राजक

स त्य ज्ञा न प्र का श न

ज्वालापुर (उत्तर प्रदेश)

स्वामी सत्यदेव परिव्राजक के नवीन प्रकाशन

●

१. आत्मकथा—स्वतंत्रता की खोज में	४)
२ In Search of Freedom (English Translation of Auto-Biography)	५)
३. विचार-स्वातंत्र्य के प्रांगण में	१॥)
४. पाकिस्तान—एक मृगतृष्णा	१)
५. लहसुन बादशाह	१॥)

संशोधित संस्करण

६. संजीवनी बूटी	२)
७. ज्ञान के उद्यान में	३)

पुराने स्टाक की निम्नलिखित पुस्तकें रियायती मूल्य पर मिल सकती हैं :—

८. अनन्त की ओर	२)
९. अमरीका के निर्धन किंतु धनी	॥)

●

प्रेमी पाठकों के आग्रह पर स्वामीजी के अन्य सब ग्रन्थों के पुनः प्रकाशन का शीघ्र प्रबन्ध किया जा रहा है।

●

पुस्तकें मिलने का पता

स्वामी सत्यदेव परिव्राजक

सत्यज्ञान प्रकाशन

ज्वालापुर (उत्तर प्रदेश)